TEXT FLY
WITHIN THE
BOOK ONLY

UNIVERSAL
LIBRARY
OU_182563
UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. 11804 852 A Accession No H2613

Author

Title

This book should be returned on or before the date last marked below

आधुनिक हिन्दी-काव्य में नारी-भावना

[प्रयाग विश्वविद्यालय-द्वारा डी० फ़िल्० के लिए स्वीकृत प्रबंध]

शैलकुमारी

एम० ए०, डी० फ़िल्० (प्रयाग)

हिन्दी विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ.
प्राक्कथन	१—४
भूमिका	१—१२
पूर्वपीठिका	१३—१६
अध्याय १ : आधुनिक हिन्दी काव्य की नारी-भावना में परिवर्तन : कारण और प्रेरणा के स्रोत :	२०—४२
१. प्राचीन के प्रति नवजाग्रत आकर्षण	२०
२. पश्चिमी विचारों और साहित्य का प्रभाव	२२
३. भक्तियुग और रीतियुग की नारी भावना के प्रति विद्रोह	२७
४. रवीन्द्रनाथ ठाकुर का प्रभाव	३५
५. समाज-सुधार की लहर का प्रभाव	३८
६. स्त्री आन्दोलन का प्रभाव	४०
७. इंडियन नेशनल कांग्रेस और राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रभाव	४१
अध्याय २ : सक्रान्ति युग (१६००—१६२०)	४३—६४
अध्याय ३ : परिवर्तन युग (१६२०—१६३७)	६५—७५
युग की प्रमुख भावधाराएँ ।	६५
अध्याय ४ : परिवर्तन युग मे नारी का सत् रूप	७६—१०२
अध्याय ५ : विविध सबधों में सत् रूप का विकास	१०३—१४१
१. प्रेयसी और प्रणयिनी रूप	१०३
२. पत्नी रूप	११७
३. मातृ रूप	१३१
अध्याय ६ : परिवर्तन युग मे नारी का असत् रूप	१४२—१४६
अध्याय ७ : परिवर्तन युग मे राष्ट्रीयता तथा समाज सुधार से प्रेरित नारी भावना :	१५०—१७५
१. राष्ट्रीय भावना (नारी का वीर रूप)	१५०
२. समाज-सुधार की भावना (मानवीरूप)	१६०
अध्याय ८ : रूपकात्मक (प्रतीकात्मक) भावना	१७६—१८६
अध्याय ६ : परिवर्तन युग मे मध्ययुगीय नारी भावना की परपरा	१८७—१६४

अध्याय १० : प्रगति युग (१९३७—१९४५) १९५—२०१

अध्याय ११ : प्रगति युग की समाज तथा क्रांतिवादी नारी भावना५ २०२—२२०

१. समाजवादी नारी भावना २०२

२. क्रान्तिवादी नारी भावना २१३

अध्याय १२ : प्रगति युग मे मनोविश्लेषणवादी तथा ह्रयीरोमासवादी नारी भावना : २२१ २५४

१. मनोविश्लेषणवादी नारी भावना : २२१

क. विरोध या विद्वेषमयी २२२

ख. अतीव वासनात्मक २३०

ग. सतुलित यथार्थवादी २३६

घ. प्रकृतिवादी उदासीन २४४

२. ह्रयीरोमासवादी नारी भावना २४७

उपसंहार २५५

सदर्भ-ग्रंथ २५७

प्राक्कथन

बीसवीं शताब्दी की अन्य महत्वपूर्ण समस्याओं में एक विशेष रूप से महत्वपूर्ण समस्या रही है—नारी। जब से जीवन मे आध्यात्मिक लाभों से अधिक महत्व वैज्ञानिक उन्नति तथा राष्ट्रीयता को दिया जाने लगा, जब से स्त्रियों ने अपने अधिकारों के लिए युद्ध प्रारभ किया, जाग्रत होकर देश की उन्नति के मार्ग मे अपना मूल्य प्रमाणित किया, तथा विभिन्न कार्यक्षेत्रों में प्रवेश करके अपनी सामर्थ्य को सिद्ध किया, तब से समाज और साहित्यकार एक नवीन दृष्टि से उसे देखने लगा। नर्क का द्वार अथवा रूप की पुतली मात्र के रूप मे उसे देखते रहना अब असभव हो गया। व्यक्ति और समाज की इकाई के रूप में वह अब सामने आई। फलतः नारी का इतिहास, उसके जीवन की समस्यायें, आदिकाल से समाज में उसकी अवस्था में विकास, सास्कृतिक विकास में उसका मूल्य आदि इस शताब्दी के विचार क्षेत्र के प्रमुख विषय हो गए। अंग्रेज़ी में अनेक पुस्तकें इन विषयो पर लिखी गई। भारतीय विद्वानों ने भी प्राचीन भारत तथा सस्कृत साहित्य को लेकर अंग्रेज़ी में ही इस ढङ्ग की कुछ पुस्तकें लिखी। किन्तु हिन्दी मे ऐसे प्रयास बहुत कम हुए हैं, जो हैं भी वे वैज्ञानिक रीति के कम हैं।

नारी सम्बन्धी युगीय दृष्टिकोण काव्य मे कवि की नारी भावना के रूप में अवतरित होता है। किसी कवि की नारी भावना से तात्पर्य यही है कि वह नारी मात्र के सम्बन्ध मे किस प्रकार के विचारों को आश्रय देता है, तथा क्या धारणायें स्थिर करता है।

नारी भावना के दृष्टिकोण से हिन्दी मे २० वीं शताब्दी के काव्य का विशेष महत्व है। वह अपनी अभूतपूर्व विशेषताओं को लिए हुए हिन्दी काव्य में आधुनिकता का द्योतक है। यों तो हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल का प्रारम्भ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (१८५०-१८८५) या उससे भी पहले से माना जाता है, किन्तु सत्य तो यह है कि, गद्य में चाहे जो कुछ भी हुआ हो, काव्य में आधुनिकता का प्रवेश १९०० से पहले नहीं हुआ था। २० वी शताब्दी के काव्य में पश्चिमी साहित्य तथा सभ्यता के प्रभाव के कारण वैयक्तिकता, मानवतावाद, स्वच्छन्दतावाद आदि की प्रवृत्तियों के साथ ससार, जीवन, धर्म, प्रेम, प्रकृति, राष्ट्र तथा व्यक्ति आदि के सम्बन्ध में जिन नवीन दृष्टिकोणों का विकास हुआ, उन्हे ही हम आधुनिकता की विशेषता मान सकते हैं। मध्ययुगीय साहित्यिक रूढियों और परिपाटियों तथा पिष्टपेषित निरर्थक विचार धाराओं के प्रति विद्रोह का युग यही है। मध्य-युगीय नारी भावना का परित्याग इसी युग में हुआ है। इस कारण २० वीं शताब्दी को ही खोज काल रखा गया है। किन्तु १९४५ आधुनिक काल के अन्त की द्योतक तिथि नहीं समझी जानी चाहिए। आलोचना को अद्यावधि बनाने के लिए ही वह तिथि निश्चित की गई थी, किन्तु अब तो वह भी पुरानी हो गई!

१६००--१६४५ तक के युग को तीन भागों में विभाजित किया गया है। संक्रांति युग (१६००-१६२०), परिवर्तन युग (१६२०-१६३७), और प्रगति युग (१६३७-१६४५)। यह युग-विभाजन नारी भावना के विकास के दृष्टिकोण से ही किया गया है, किन्तु, क्योंकि नारी भावना काव्यगत व्यापक विचारधाराओं के साथ ही विकसित और परिवर्तित होती है, इसलिए यह युग-विभाजन आधुनिक हिन्दी काव्य के विभाजन से मिलता जुलता ही है। आधुनिक हिन्दी काव्य मे लगभग १६२० तक वह काल माना गया है जब अधिकाशतः इतिवृत्तात्मक काव्य की रचना होती रही, १६२० के बाद छायावादी और रहस्यवादी काव्य की रचना हुई, और १६३७ प्रगतिशील लेखक सघ की प्रथम बैठक की तिथि होने के नाते प्रगतिवादी काव्य के प्रारम्भ होने का समय माना जाता है।

नारी भावना के विकास में यद्यपि विभाजन रेखाएँ बनाने का प्रयत्न किया गया है, किन्तु ये रेखायें पत्थर की लकीरें नहीं कही जा सकती। पुस्तकों की प्रकाशन तिथि पर यदि दृष्टि डालें (देखिए संदर्भ ग्रन्थ १) तो अनेक रचनायें इन सीमाओं का अतिक्रमण करती हुई दिखाई देंगी। इसका कारण यह है कि कभी भी कोई विचारधारा किसी निश्चित तिथि पर अत या प्रारम्भ नहीं हो जाती। किन्तु जिस युग मे उस विचारधारा का प्राधान्य रहता है वह युग तत्सम्बन्धित युग कहा जाता है। यहीं पर एक और समस्या पर भी प्रकाश डाल देना अनुचित न होगा। हम देखेंगे कि एक ही कवि का नाम एक से अधिक युगों मे जाता है। इसका कारण यह है कि आधुनिक कवि विकासशील रहा है। आदर्श प्राप्ति मे प्रयत्नवान् नवजाग्रत देश की गतिशील और परिवर्तनशील दशा में ऐसा होना स्वाभाविक ही है।

इस प्रबन्ध में खोज काल के लगभग सभी प्रमुख कवियो की काव्य रचनाओ के अध्ययन के आधार पर नारी भावना का विश्लेषण किया गया है। खोज काल मे अनेक कवितायें रीतिकालीन परपरा की भी लिखी गई जैसे—"मोहन विनोद" (१६३५), "सुदरी शृगार" (१६२४), "सौरभ" (१६२७), अयोध्यासिंह उपाध्याय अथवा गोपालशरण सिह की अनेक कवितायें आदि। किन्तु वे इस थीसिस में ध्यान का केन्द्र नही है; इसलिए इस प्रकार की रचनाओं के आधार पर नारी भावना का विश्लेषण नहीं किया गया है। ध्यान का केन्द्र तो वे नवीन भावनायें ही हैं जो आधुनिक युग की उपज हैं। सक्रान्ति कालीन नारी भावना का विश्लेषण करते हुए यह दिखाने के लिए कि किस प्रकार प्राचीन भावना से आधुनिक भावना का विच्छेद हुआ तथा प्राचीन और नवीन नारी भावना मे कितना अन्तर हो गया, उस युग के परम्परागत प्रणाली के काव्य की नारी भावना का संक्षिप्त दिग्दर्शन कराया गया है।

नारी भावना का विश्लेषण करने का सबसे अधिक महत्वपूर्ण साधन तो वे कवितायें रही हैं जिन में कवि ने स्पष्ट रूप से नारी के सम्बन्ध में कुछ कहा है। आधुनिक युग में जब नारी ही सुधार भावना या मानवतावादी दृष्टिकोण का प्रमुख केन्द्र रही है, इस प्रकार की कविताओं की सख्या कम नहीं है। इसके अतिरिक्त महत्वपूर्ण साधन वे प्रबंध काव्य हैं जिनमें कवि ने अपनी भावना के ढाँचे में नारी पात्रों, चाहे वे ऐतिहासिक

पौराणिक हों अथवा काल्पनिक, को ढाला है। कवि अपनी रचना की किसी भी वस्तु से असंलग्न नहीं हो सकता, इसलिए उसके नारी पात्र भी उसी के मस्तिष्क की नारी का प्रतिबिम्ब होंगे यह निश्चित है। यही प्रतिबिम्ब-सिद्धान्त वहाँ भी लागू होता है जहाँ कवि प्रकृति आदि उपकरणों मे नारीत्व का आरोप करता है। फलतः हम रूपकात्मक रीति से नारी भावना की अभिव्यंजना पाते हैं।

छायावादी काव्य आत्माभिव्यजक काव्य है और अपनी भावाभिव्यजना की शैली मे प्राचीन काव्य से बहुत भिन्न है। इसमे नारी का स्थूल वर्णन न होकर अधिकांशतः प्रेम भाव से समन्वित कवि के निजी भावो की लाक्षणिक अभिव्यक्ति है। इसके मध्य जहा भी कवि परोक्ष या अपरोक्ष रूप से प्रेयसी के सबन्ध मे कुछ कह गया है वह उसकी नारी भावना के निर्माण मे सहायक होता है।

प्रस्तुत प्रबन्ध मे नारी भावना का विश्लेषण करते हुए विशेष ध्यान उन परिस्थितियों तथा कारणों पर रखा गया है जो युग-विशेष की विशिष्ट नारी भावना का निर्माण करते हैं। वास्तव मे सभ्यता के विकास की पृष्ठभूमि मे होने वाले मानसिक परिवर्तन ही नारी भावना मे विकास का कारण होते हैं, और सभ्यता का इतिहास राजनैतिक सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक परिस्थितियों से बनता है। फलतः युग विशेष की नारी भावना को समझने से पूर्व उ राजनैतिक आदि परिस्थितियो को समझ लेना अनिवार्य हो जाता है जो कवि की विचारधारा का निर्माण करती है। राजनैतिक आदि परिस्थितियो के अतिरिक्त साहित्यिक विचारधारा अन्य साहित्य के भावो से भी प्रभावित होती है, जैसे हमारे अध्ययन क्षेत्र मे छायावादी कवि अग्रेजी रोमाटिक काव्य, प्रगतिवादी कवि मार्क्सवादी साहित्य से प्रभावित हुए। इस प्रकार के कारणों को भी भली भाँति समझने का प्रयत्न किया गया है। इसके अतिरिक्त आधुनिक हिन्दी काल की नारी भावना को एक गतिशील विकास के रूप मे देखा गया है। समय समय पर विभिन्न कारणो के उपस्थित होने से जो परिवर्तन या नवीनतायें आधुनिक कवि की नारी भावना मे आई वे महत्वपूर्ण तुलनात्मक दृष्टिकोण को प्रोत्साहन देती हैं।

यह विशेषतायें इस प्रबन्ध की निजी हैं। इसके अतिरिक्त प्रगतिशील काव्य मे मनोविश्लेषण विज्ञान का प्रभाव देखते हुए उस आधार पर निर्मित नारी भावना की व्याख्या भी प्रबन्ध की मौलिकता है। इस प्रकार का कोई प्रयत्न अभी देखने में नहीं आया।

आधुनिक काव्य मे नारी भावना के विश्लेषण के जो थोडे बहुत प्रयत्न अभी तक हुए हैं वे अधिकाशतः कवि विशेष या रचना विशेष को लेकर हुए हैं, और उनमे से अधिकतर छायावाद युग के कवियों से ही सबधित हैं। प्रगति युग के कवियो मे पत और अचल को छोड़कर किसी कवि की नारी भावना की व्याख्या दृष्टिगोचर नहीं हुई। अस्तु, अपनी शैली तथा नारी भावना के विश्लेषण की सूक्ष्मता और व्यापकता को लेकर यह प्रबन्ध एक नवीन प्रयास है। इस खोज के अत मे सम्यक् रूप से जो परिणाम निकाले गए हैं वे भी एक नवीन दृष्टिकोण को उपस्थित करते हैं।

इस शिशु प्रयास को सफल बनाने का श्रेय गुरुवर डा० धीरेन्द्र वर्मा को है जिन्होंने प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रीति से मुझे बहुत कुछ सिखाया है। किन्तु गुरुदक्षिणा के समय कठिनाई यह उपस्थित होती है कि हम् कलियुगी शिष्यों के पास अकिंचन धन्यवाद के अतिरिक्त और है ही क्या? पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा डा० दीनदयाल गुप्त ने प्रबंध की परीक्षा की तथा अनेक नवीन सुझाव दिए। मैं उन दोनों की अत्यन्त आभारी हूँ। प्रो० सतीश चंद्र देव तथा श्री प्रकाशचंद्र गुप्त की अत्यन्त कृतज्ञ हूँ जिन्होंने समय समय पर बहुमूल्य सहायता की। डा० रामकुमार वर्मा की आभारी हूँ जो अपने सहानुभूतिपूर्ण शब्दों से सदैव प्रोत्साहित करते रहे। विशेष धन्यवाद के पात्र डा० रामानंद तिवारी हैं जिन्होंने सतत सहयोग और निरंतर प्रोत्साहन देकर इस कार्य को संभव बनाया।

शैलकुमारी

इलाहाबाद
जुलाई १९५०

भूमिका

किसान और नागरिक के बिना काव्य का काम चल सकता है, किन्तु उसमे से नारी को हटाते ही उसका जीवन नष्ट हो जाता है।[1] मेयर के इस महत्त्वपूर्ण कथन की सत्यता का ज्ञान तब होता है, जब हम देखते हैं कि लगभग सभी भाषाओं के काव्य में सभी युगों मे, नारी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बनाये रही है। विधाता की इस नर-नारीमय सृष्टि मे, जहाँ पुरुष नारी में तथा नारी पुरुष मे अपनी पूर्ति पाती है, प्रत्यक्ष जीवन के साथ ही किसी न किसी रूप मे, काल्पनिक जीवन मे भी द्वितीय की प्रतिष्ठा अनिवार्य है। कल्पना-जीवन की यथार्थताओं, आकाँक्षाओं तथा वासनाओं का ही प्रतिविम्ब होती है, अत स्वाभाविक है कि पुरुष कवियों द्वारा रचित काव्य मे हम नारी की प्रधानता पाते हैं; उसके प्रति अनुरागात्मक अथवा विरागात्मक दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति पाते हैं। कवि की नारी-सम्बन्धी अनुरागात्मक अथवा घृणात्मक भावना तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक परिस्थितियो के आधार पर बनती है; या यों कहना चाहिए कि राजनैतिक, धार्मिक और आर्थिक कारणो से समाज मे जो अवस्था नारी की होती है प्राय उसी का प्रतिविम्ब कवि की नारी-भावना होती है। विशेष-रूप से धर्म का नारी-भावना से घनिष्ठ-सम्बन्ध है, क्योंकि उसी के आधार पर मनुष्य का संसार, जीवन और प्रेम-सम्बन्धी दृष्टिकोण निर्मित होता है। जिस काल मे समाज धर्म (आध्यात्मिकता) की ओर अधिक झुक जाता है, उस काल मे वह नारी को घृणा की दृष्टि से देखने लगता है, क्योंकि लगभग सभी धर्मों ने नारी को, काम का प्रतीक होने के कारण, आध्यात्मिक मार्ग की बाधा माना है। जैसे योरोप मे ईसाई-धर्म के प्रसार ने नारी को "नर्क का द्वार" सिद्ध कर दिया था। भारतीय संस्कृति का इतिहास भी समाज मे स्त्रियों की परिवर्तनशील अवस्था का परिचायक है।

वैदिक-काल मे वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था करनेवाले आर्य दार्शनिक और चिन्तनशील होते हुए भी भौतिक-जीवन से विमुख नहीं थे। चार आश्रमों की व्यवस्था करते हुए उन्होंने गृहस्थाश्रम को, जो अन्य तीनों आश्रमों का पोषक माना गया, विशेष महत्त्व दिया। गृहस्थ-जीवन का केन्द्र स्त्री है, जिसकी सृजन और पालन शक्तियों के कारण उसे प्रचुर आदर प्रदान किया गया। साथ ही उसके रूप की पूजा भी की गई। "वास्तव मे नारी का सौन्दर्य और व्यक्तित्व वेदकालीन मस्तिष्क को अनिवार्यत आकर्षित करता है। उसके चरित्र के गुणगान के पश्चात् उसके रूपानुराग की ओर बढ़ते हुए हम देखते हैं कि वैदिक वेदी का ढाँचा भी स्त्री के रूप पर ही ढाला गया था।" वेदी पश्चिम मे चौड़ी हो,

---

[1] Poetry can do without the husbandman and the burgher, but take away woman and you cut its very life away

मेयर—सेकसुअल लाइफ इन ऐनसियट इन्डिया, प्रथम पोथी, पृ० ६

[2] अल्टेकर ने वैदिक-काल २५०० ई० पू० से १५०० ई० पू० तक माना है।

मुस्लिमों ने भारत की राजनैतिक और सामाजिक-व्यवस्था मे एक विशृंखलता उत्पन्न कर दी साथ ही हिन्दू-धर्म का एक विदेशी धर्म से अभूतपूर्व संघर्ष हुआ। पुरोहितो ने अपने धर्म की रक्षा के लिए अनेक नियमों के रूप में किले बनाये। स्त्रियों की विवाह की आयु ८ वर्ष सर्वोत्तम मानी जाने लगी, विधवा-विवाह बिल्कुल बद हो गए, सती-प्रथा अत्यन्त प्रचलित हो गई। पर्दे का भी प्रचार होने लगा। बहु-विवाह खूब प्रचलित था।

स्त्रियाँ शूद्रों से समानता पाने लगीं। मुसलमानों के भय के कारण कन्या अवांछनीय मानी जाने लगी और शिशु-हत्या की प्रथा का प्रारम्भ हो गया। स्त्रियाँ भी स्वय अशिक्षित और ज्ञान हीन होने के कारण अंधविश्वासों आदि का घर हो गईं, पर्दे ने उन्हें बाहरी दुनिया से सर्वथा अंधा कर दिया। समाज की स्त्रियों के प्रति असहिष्णुता और अनुदारता का कारण यह भी था कि स्वय पुरुषों मे भी शिक्षा और ज्ञान की मात्रा कम हो रही थी। शिक्षा और ज्ञान का सबसे महत्त्वपूर्ण साधन धर्म-ग्रंथ ही समझे जाने लगे थे। मुद्रण-कला तो थी नहीं, लोग 'कथक' या 'पौराणिक' से सुनकर ही पौराणिक-कथाओं का ज्ञान प्राप्त करते थे। इस प्रकार पुरुषो का भी ज्ञान और दृष्टिकोण सीमित हो गया था।

ऐसी परिस्थितियों मे हिन्दी-काव्य का जन्म हुआ। हिन्दी का प्रारम्भिक काव्य वीर-गाथाओं और धार्मिक उपदेशों के रूप मे मिलता है। वीर-गाथाओं की रचना राजस्थान मे हुई, जहाँ यवन आक्रमण-कारियों से युद्ध करने के अतिरिक्त घरेलू युद्ध भी प्रतिदिन की वस्तु थे। चारणों-द्वारा रचित वीर-गाथाओं मे सबसे पहली बात तो हम यह देखते हैं कि देश और जाति की रक्षा के समय मे भी नारी मे किसी प्रकार की जाग्रति नही दिखाई पड़ती। वह वीर-माता, या वीर-पत्नी के रूप मे नहीं आती। इसके विपरीत पुरुष की धन-सपत्ति और भोग्या के रूप मे आती है। अधिकाश काव्य किसी राजकुमारी के बलात् हरण या विवाह की कथा को लेकर चलते हैं, प्राय युद्ध का कारण भी यही होता है। इनमे राजकुमारी के शारीरिक सौन्दर्य-वर्णन और नख-शिख का ही प्राधान्य पाया जाता है। राजा एक राजकुमारी से सन्तुष्ट होते नही देखे जाते, दूत से प्रत्येक आनेवाली परिणीता के रूप का वर्णन वे ताजे उत्साह से सुनते हैं।[1] पत्नी केवल भोग का साधन मात्र रहती है, वह अपने वीर पति के कार्य्यों मे भाग लेती नही देखी जाती। भोग्या के रूप मे आकर वह पुरुष की पाँव की बेड़ी भी सिद्ध होती है। 'बारह बरस की गोरड़ी' नहीं जानती कि वह किस प्रकार अपने पति को प्रसन्न रखे। उसने यदि जाना है तो एक ही साधन—रति। फलत रति को छोड़कर अन्य क्षेत्रो मे वह पति के सहयोग की कल्पना भी नही कर पाती और इसलिए वह उसे अपने पास बाँधकर रखने के लिए अनेक चरित्र करती है।[2] वह रूप और सौन्दर्य के द्वारा पुरुष को बाँधनेवाली शृंखला के समान हो जाती है, जो स्वत सकुचित क्षेत्र में रहती हुई उसे भी पुरुषोचित कर्त्तव्य से विमुख करना चाहती है।

ऐसी अवस्था मे प्रकृति से ही महत्त्वाकांक्षी पुरुष का नारी को उपेक्षा करना स्वा-

---

[1] पृथ्वीराज रासो—१४वां समय—७१२, १६वां समय ४-६ आदि।

[2] बीसलदेव रासो—२ खंड, पृ० ३८।

भाविक हो है। फल यह होता है कि स्त्री उस निजी धन[1] के समान हो जाती है, जिसकी रक्षा का भार पुरुष पर है—वह स्वत आत्म-रक्षा की शक्ति नहीं रखती, जिसका एकात उपभोग पुरुष करता है और जिसे वह विरक्त होने पर मूल्य-हीन वस्तु के समान त्याग भी देता है। नारी-भावना मे हम ऐन्द्रिकता का प्राधान्य पाते हैं।

इस काल का धार्मिक-काव्य सिद्धो और जैन-आचार्यों द्वारा रचित है। यह काव्य विरक्ति प्रधान है, और ऐसे काव्य मे नारी के परित्याग का उपदेश और उसकी निन्दा स्वाभाविक है।

गोरखनाथ ने कहा है —

"पास बैठी सोभे नही साथ रमाई भुडि।
गोरख कहे असतरी कहा सलई कहै मुडि॥"

बामे अगे सोहबा जमचा
भोग बा सगे न पीणा पाणी।

किन्तु वाममार्गी सिद्धो ने पचमकारा को महत्व देते हुए "महासुखवाद" का प्रति पादन किया, जिसमे सिद्धि के लिए शक्ति, योगिनी या महामुद्रा; जो लौकिक डोमिन, चमारिन या धोबिन ही होती थी, का योग अनिवार्य माना।

जैन-काव्य मे भी,

"एड जम्मु नग्गहु गिड भडसिरि खग्गु न भग्गु।
तिक्खां तुरियें न माणियां गोरी गले न लग्गु॥" (मेरुतुंग)

जैसे दोहे मिल जाते हैं। दोनो ही प्रकार की नारी-भावना निन्दात्मक और उपभोगा-त्मक – यद्यपि देखने मे पृथक्-पृथक् लगती है, किन्तु दोनों के मूल मे एक ही भाव है - नारी को योनि मात्र समझना। सन्यासी नारी का कोई अन्य मूल्य न समझकर उससे दूर भागते हैं और विलासी उसका मूल्य केवल शारीरिक उपभोग मे ही गिनते हैं।

यद्यपि आदिकाल मे विरक्ति अथवा विलास से प्रेरित निन्दात्मक अथवा उपभोगा-त्मक नारी-भावना की प्रधानता पाई जाती है, फिर भी कवि के मस्तिष्क मे ऐसी नारी का सर्वथा अभाव नही है जो युद्ध-क्षेत्र मे पति की वीरगति का समाचार सुनकर कह सके –

"भज्जा हुआ जु मारिया बहिणी महारा कतु।
लज्जे जन्तु वयसिअहु जइ भग्गा घरु एतु॥' (हेमचन्द्र)

इसी युग मे दरबारी वातावरण मे पले हुए अमीर खुसरो ने साहित्य को जीवन के सघर्षों और नियमों से मुक्तकर स्वतत्र आनन्द और विनोद का वातारण प्रदान किया जिसने प्रत्येक वस्तु को हल्का रूप दे दिया। प्रेम और स्त्री भी सस्ते रूप मे उपस्थित हुए।

इस प्रकार भक्ति काल और रीतिकाल मे पनपनेवाली विरक्ति और विलास-जनित नारी भावना का बीज हमे आदि-कालीन काव्य मे मिल जाता है। वास्तव में दोनों भाव-नायें विरोधी होते हुए भी सदैव साथ-साथ चलती हैं, परिस्थितियो का सहारा पाकर किसी युग में एक, तो किसी मे दूसरी प्रबल हो उठती है। मनुष्य मे काम-प्रवृत्ति अत्यन्त शक्ति-

---

[1] धन शब्द स्त्री के पर्यायवाची के रूप में भी प्रयुक्त हुआ है।

शाली है। इस लोक से परे किसी सुख की कल्पना में लीन पुरुष उस प्रवृत्ति का दमन करना चाहता है। काम के दमन से नारी के प्रति विरक्ति की भावना और उसकी अस्वस्थ प्रबलता से भोग की भावना का जन्म होता है। भक्ति-काल और रीति-काल मे हम क्रमश इन दोनों का विकास देखते हैं।

भक्तिकाल में, जैसा कि उसके नाम ही से प्रकट है, अधिकाशत धार्मिक काव्य की रचना हुई। प्राय ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग का अनिवार्य सम्बन्ध इह लोक से वैराग्य से माना जाता रहा है, तथा काम और उसके साधन स्त्री से घृणा या पलायन उसका अनिवार्य फल रहा है। ऐसा भारत मे ही नहीं, सभी देशों मे हुआ है। योरोप मे ईसाई-धर्म के प्रसार ने नारी को अत्यन्त हीन बना दिया था, "ईसाई-धर्म मे शरीर ही दोषो का मूल माना गया, जो भौतिक आकर्षणो से मनुष्य को भ्रष्ट करता है। सतो का आदर्श तो ऐन्द्रिक सुखों का पूर्ण परित्याग था। इस मार्ग मे स्त्री सबसे बड़ी बाधा मानी गई। फलत स्त्री को निन्दनीय माना जाने लगा, उसे नर्क का द्वार कहा जाने लगा।"[१] भारत मे वासनाओं के दमन के लिए सर्व-प्रथम काम का दमन अनिवार्य माना गया (काम, क्रोध, मद-लोभ, मोह)। काम की लक्ष्य स्त्री से दूर रहने के लिए सतो ने स्त्री की निन्दा की।[२] लगभग २०० ई० पू० से ही इस भावना का प्रसार हो रहा था और पारिवारिक जीवन, जिसका केन्द्र स्त्री है, हेय समझा जाने लगा था।[३] अनुकूल परिस्थितियाँ पाकर ईसा की १४वी - १६वीं शताब्दी मे यह भावना ख़ूब फली-फूली। इस समय तक मुसलमान भारत को विजय कर चुके थे और उनके राज्य का प्रसार हो गया था। पराजय के कारण अवसाद भारतवासियों पर छा गया था, और देशी राजाओ की तलवार को कुठित देखकर वे भगवान् का आश्रय ग्रहण कर रहे थे। जनता की प्रवृत्ति निराशावादी और विरक्त हो उठी थी। साथ ही एक और भी महत्त्वपूर्ण बात थी, राजाओं के लिए राज्य और भूमि की रक्षा महत्त्वपूर्ण होती है, किन्तु जनता के लिए धर्म सबसे अधिक महत्त्व रखता है। मुसलमानों के द्वारा हिन्दू-धर्म पर आघात होते देखकर हिन्दू जनता विचलित हो उठी। उसी समय दक्षिण से आई भक्ति की धारा का सहारा उन्हें मिला और तपश्चर्या की ओर झुकी हुई जनता की वाणी कबीर तुलसी और सूर-आदि के शब्दो में फूट पड़ी।

अस्तु, भक्तिकाल मे हमे चार धाराये मिलती हैं। (१) निर्गुणोपासक सतो की जिनमें कबीर, दादू आदि आते हैं, (२) रामोपासक भक्तों की जिसके प्रतिनिधि कवि तुलसी हैं,

---

[१] वाह एम रीग हिदर बुमन, अध्याय ३।

[२] लछिमन देखहु काम अनीका। रहहि धीर तिन्ह के जग लीका॥
एहि के एक परम बल नारी। तेहिं उबर सुभट सोइ भारी॥
(तुलसी-रामचरित मानस, तृतीय सोपान, दोहा ६८)।

[३] यस्य स्त्री तस्य भोगेच्छा निस्त्रीकस्य कुत्र भोग भू.
स्त्रिय त्यक्त्वा जगत्यक्तं जगत् त्यक्त्वा सुखी भवेत्॥
(योग-वाशिष्ठ, १, २१, ६५।)

(३) कृष्णोपासक भक्तों की, जिसके प्रमुख कवि सूर हैं और (४) प्रेममार्गियों की, जिसके प्रमुख कवि जायसी हैं। साम्प्रदायिक-दृष्टि से इन चारों में चाहे जो भी भेद रहा हो; किन्तु नारी के सम्बन्ध में इन सबका दृष्टिकोण एक ही है।

भक्ति-युग की सभी धाराओं में नारी के दो रूप दिखाई पड़ते हैं; सामान्य तथा विशेष। प्रथम रूप लौकिक तथा यथार्थ है और द्वितीय काल्पनिक, पारलौकिक तथा आदर्श। प्रथम रूप में नारी निन्दनीय है, दुर्गुणों की खान है, माया का प्रतीक है, और द्वितीय रूप में वह ग्राह्य तथा आदरणीय है।

नारी के सामान्य या यथार्थ रूप के सम्बन्ध में सभी भक्त-कवि एक स्वर से घृणात्मक-भावना का अभिव्यंजना करते हैं। यह भावना क्रोध और हिंसा से भरी हुई है। भक्त-कवियों ने नारी को आध्यात्मिक मार्ग की बाधा के रूप में देखा है।[१] इसीलिए उसे भ्रष्ट करनेवाली माया का ही साक्षात् रूप माना है।[२] उसमें तीव्र आकर्षण है, किन्तु सन्त को उससे दूर रहने के लिए इन कवियों ने बार-बार चेतावनी दी है।[३] फलतः भक्त कवियों ने नारी को 'सर्पिणी', 'बाघिनी', 'पैनी छुरी', 'विष की बेलि' आदि विशेषण दिए हैं। भक्त-कवियों का विश्वास है कि स्त्री में काम-प्रवृत्ति अत्यन्त प्रबल होती है,[४] इसलिए वृद्धा तथा जननी पर भी विश्वास करना वे उचित नहीं समझते[५] और छोटी-मोटी कामिनी सब ही को विष की बेलि कहते हैं।[६] प्रेम के क्षेत्र में भी नारी को अस्थिर तथा छलपूर्ण माना गया है।[७] भक्त-कवि नारी को अत्यन्त नीच तथा कपटी मानते हैं, जो अपनी नीच इच्छाओं की पूर्ति के लिए सब कुछ कर सकती है।[८] यहाँ उसकी शक्तियाँ अदम्य हैं, पुरुष उसको समझ पाने में असमर्थ रहता है।[९] नारी को इतना दुर्गुणों से युक्त और अविश्वसनीय मानते हुए कवि ढोल-गँवार और पशु तक से उसकी तुलना कर देता है और ताड़ना का सहज अधिकारी बता देता है।[१०]

---

[१] सूरदास—सूरसुधा "काम क्रोध ·· और" पद १७, पृ० ८।
वही—'बौरेमन ····बौराना" पद १०२, पृ० ३१।
कबीर—'चलौ-चलौ ····दोय," स० बा० सं० भाग १, दोहा १, पृ० ५८।
वही—'नारी-नपावै··कोय", दोहा ८ पृ० ५८।

[२] तुलसी—रामचरित मानस, तृतीय सोपान दोहा ७६-७७ पृ० ३२०।

[३] वही—दोहा ८० पृ० ३२१।

[४] वही—"भ्राता··· ··विलोकी", दोहा २९, पृ० २९९।

[५] तुलसी—सं० बा० सं० भाग १ दोहा १-२, पृ० २२३।

[६] कबीर—सं० बा० सं० भाग १, दोहा १४ पृ० ५९।

[७] सूरदास—सूरसागर, नवम स्कंध, पद ४४६।

[८] तुलसी—रामचरित मानस, द्वितीय सोपान, दोहा ४८, पृ० १७६।

[९] वही—"यद्यपि···प्रवगाहू" दोहा २८, पृ० १६८।

[१०] वही—पाँचवाँ सोपान, पृ० ३६६।

भक्त कवियों की इस प्रकार की नारी-भावना का कारण यह है कि उन्होंने नारी क केवल 'कामिनी' रूप में देखा है। इसका फल यह हुआ है कि कवि नारी में प्रेम औ कर्त्तव्य का सामजस्य न देख सके। नारी को विलास के ही क्षेत्र में देखते हुए कर्त्तव्य-पू क्रियाशीलता का संयोग न हो सका। इसी कारण 'पद्मावत' में देखते हैं कि बादल व पत्नी अपने रणोद्यत पति को रति-विलास का लालच दिखाकर कर्त्तव्यच्युत करना चाहत है।[१] नारी के गृहिणी रूप और मातृ-रूप का भी आदर भक्त कवियों ने नहीं किया। रु के जननात्मक कार्य को भी, जिसका भारत में प्राचीन-काल से बहुत आदर रहा था, सन्त ने महत्त्व की दृष्टि से नहीं देखा। इसके विपरीत दुख और ताप से पूर्ण ससार में ला वाली माता की वे निन्दा ही करते हैं। माता का यदि कुछ मूल्य है तो इसी में कि उसक पुत्र धार्मिक हो।[२] गृहिणी भी धर्म के आगे त्याज्य है।[3]

वैराग्यमूलक इस प्रकार की नारी-भावना का सहज फल है नारी का अनादर औ उपेक्षा। राम का "नारि हानि विशेष छति नाहीं"[४] और रतनसेन का 'तुम्ह तिरिया मा हीन तुम्हारी'[५] आदि कहना इसी भाव का द्योतक है। स्वय नारी में भी कोई आत्म-विश्वा और आत्म-गौरव की भावना नहीं दिखाई पड़ती, इसके विपरीत आत्म-दैन्य की सीमा ह मानस की अहल्या,[६] शबरी,[७] अनुसूया,[८] के शब्दों से ध्वनित होती है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि भक्त-कवि नारी के सामा य रूप को अनादर की दृष्टि देखते थे। उनकी भावना पर स्मृतियो तथा पुराणों के शब्दों का स्पष्ट प्रभाव है। भक्त का विशिष्ट नारी रूप कबीर की 'पतिव्रता-विरहिणी', सूर की गोपियो, तुलसी की सीत पार्वती तथा कौशल्या तथा जायसी की पद्मावती आदि में मिलता है। विशिष्ट रू लौकिक न होकर अलौकिक है और आध्यात्मिक मार्ग की वस्तु है। आध्यात्मिक प्रेम के क्षेत्र परमात्मा और आत्मा का प्रेमी-प्रेमिका या पति-पत्नी का सम्बन्ध व्यक्त किया गया है आध्यात्मिक रति का यह सिद्धान्त सभी धर्मों में स्वीकार किया गया है और भारत में इ आदर्श का समस्त भक्ति सम्प्रदायों में आदर हुआ। इसका आधार यह है 'तद्यथा प्रियय स्त्रिया सपरिष्वक्तो न वाह्य किंचन वेद नातरमेव मेवाय पुरुष प्राज्ञेनात्मा सपरिष्वक्त न वाह्य किंचन वेद नान्तरम्।[९] इस आदर्श को लेकर कबीर ने आत्म

---

[१] जायसी—पद्मावत . गोरा बादल युद्ध यात्रा खंड पृ० ३२१, ३२२।

[२] जिहि कुल पुत्र न ज्ञान बिचारी ,
ता की विधवा बांझ न गई महतारी। (कबीर)

[3] धरनीदास जी—प० बा० सं० भाग १, दोहा २, पृ० ११६।

[४] तुलसी—रामचरित मानस षष्ठ सोपान पृ० ३६८।

[५] जायसी पद्मावत. गोरा खण्ड पृ० ६२।

[६] "मै नारी अपावन" (तुलसी-रामचरित मानस, प्रथम सोपान, पृ० ९२।

[७] "अधम तें अधम, अधम अतिनारी" (वही, तृतीय सोपान पृ० ३१५)

[८] "सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभ गति लहै" वही, तृतीय सोपान पृ २८९

[९] बृहदारण्यक उपनिषद् ४ ३, २१।

को विरह-विह्वला पतिव्रता के रूप मे उपस्थित किया सूर ने प्रेममयी गोपियों के गीत गाये तथा जायसी ने पद्मावती की प्रशसा के पुल बाँधे।

रामभक्त तुलसी माधुर्य-भाव को छोड़ सेव्य-सेवक भाव की भक्ति को लेकर चले थे। इसलिए उन्होंने अपने राम की माता कौशल्या, पत्नी सीता तथा भक्त-पत्नी पार्वती को आदर्श नारियों के रूप मे उपस्थित किया है। उनकी यह विशिष्ट नारी भावना सामान्य नारी-भावना से बिल्कुल मेल नहीं खाती। जो कवि क्रिया के सम्बन्ध मे इतने असहिष्णु हो वही अपनी आध्यात्मिक अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए नारी को साधन स्वरूप बनाये, यह विचित्र तो है ही, साथ ही उन कवियों की दुर्बलता भी कही जायगी। लौकिक भूमि पर नारी-आकर्षण को रुद्ध करने के ही कारण सभवत आध्यात्मिक-क्षेत्र मे भक्त कवियों की नारी-कल्पना तीव्रतर हो गई। इससे उनकी नारी भावना मे दुरंगापन उत्पन्न हो गया है। वे सामान्य और विशिष्ट नारी-रूपों मे सामजस्य न स्थापित कर पाये, यथार्थ और आदर्श को एक न कर पाये।

मुग़ल काल मे भारत की परिस्थितियों मे एक परिवर्तन हुआ। अन्य मुस्लिम शासकों की अपेक्षा मुग़ल अधिक उदार और सहिष्णु थे। उनके राज्य काल मे शांति का वातावरण छा गया और उनकी कला-प्रियता तथा विलास प्रियता ने अनेक देशी राजाओं को भी प्रभावित किया। धीरे धीरे कविता जनता की वस्तु न रह कर दरबारों की चीज़ हो गई। राजाओं के आश्रय मे रहनेवाले कवियों ने अपने आश्रयदाता की तथा निजी विलासी प्रकृति की तृप्ति के लिए शृंगार-काव्य की रचना की। नाट्य शास्त्र के नायिका-भेद का पुनरावर्तन बड़े विस्तार के साथ हुआ। अस्तु, नारी कविता का केन्द्र-बिन्दु हो गई। भक्ति-युग के निवृत्तिमार्गी दृष्टिकोण के विपरीत रीतिकालीन कवियों का दृष्टिकोण प्रवृत्तिपरक हो गया। "जोग हू ते कठिन सजोग पर नारी को" देखने और प्राप्त करने का प्रयत्न महानतम हो गया। साहित्य शास्त्र के सिद्धान्तों की विवेचना के बहाने कवियों ने काम-शास्त्र की सूक्ष्म व्याख्या की और अपने दुस्साहस को छिपाने के लिए आड़ ले ली राधा-गोविंद की। पुष्टिमार्गी तथा राधावल्लभी सम्प्रदाय के कृष्ण भक्त कवियों ने भी राधाकृष्ण की शृंगारमयी लीलाओं का चित्रण किया था। उन्हीं की और भी सूक्ष्म और भेद-विभेदमयी व्याख्या रीतिकालीन कवियों ने की। किन्तु अन्तर छिपा न रहा, भक्त कवियों का दृष्टिकोण दार्शनिक था और इन दरबारी कवियों का घोर लौकिक। इनकी नायिका राधा नाम रखकर भी भक्त-कवियों की राधा के गूढ़ गम्भीर प्रेम, एकान्त निष्ठा, पूर्ण आत्म-समर्पण और शील तथा सकोच से हीन है। यह रूप का स्वांग अवश्य है, किन्तु उस रूप मे हृदय की विशालता और भाव की स्वच्छता की सुगंध नहीं, वासना की दुर्गन्ध है। जब रीतिकालीन कवियों मे होड़ लगने लगी थी, जब वृद्ध भी बालिकाओं मे बाबा

"नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहिं विकास इहि काल।
अली कली ही सों बिंध्यो आगे कौन हवाल॥ (बिहारी)

नहीं सुनना चाहते थे[1], जब समाज की काम-प्रेरणा इस सीमा पर पहुँच गई थी, तब तत्कालीन काव्य के अंतर्गत नारी की ऐसी रूप रेखा मिलना स्वाभाविक ही है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से भक्तियुग के काम-दमन (Suex-Spnression) की प्रतिक्रिया रीतिकालीन अति काम था। रीति-काल की नारी भावना भक्ति-काल के यौन नियमों की कठोरता के विरुद्ध विद्रोह थी। इसके अतिरिक्त युद्ध और जागृति के अभाव में जब समाज पर अपरिवर्तनशील जड़ता छा जाती है तो समाज स्त्रैण हो जाता है, स्त्री भोग का साधन हो जाती है। उसके शारीरिक सौन्दर्य तक ही कवियों की दृष्टि जाती है। यही रीतिकाल में हुआ। हम देखते हैं कि रीतिकालीन काव्य में स्त्री केलिगृह की सीमा में आबद्ध है। उसके बाहर उसका कार्यक्षेत्र नहीं देखा जाता। मतिराम ग्रन्थावली की भूमिका में कृष्णबिहारी शुक्ल लिखते हैं "यथासंभव नायक के समान गुणवाली रमणी नायिका कहलाती है। ऊपर दिए गए नायक के अन्य सभी गुण (त्यागी, वृती, कुलीन, समृद्धिमान्, रूप यौवनोत्माही, दक्ष, लोकरंजक, तेजस्वी, विदग्ध और सुशील) में समान होते हुए भी उसमें उत्साह, दक्षता, तेज आदि कई गुणों के मानने में आचार्यों को झिझक है इसी कारण उसके लक्षण में यथासंभव शब्द को स्थान मिला है।"[2] इससे स्पष्ट है कि एकमात्र शृंगार के क्षेत्र में नारी को देखनेवाले इन कवियों की दृष्टि नारी के गुण आदि के सम्बन्ध में संकुचित है। "रीतिकालीन कवियों ने नायिका भेद द्वारा स्त्री के विचारों भावों एवं इच्छाओं का विश्लेषण करने का प्रयत्न किया था, किन्तु वह विश्लेषण बाह्यतम भावनाओं, विलास-वासनाओं और शारीरिक सौन्दर्य तथा हाव-भाव तक ही सीमित रह गया था। अन्तरतम में बसने वाले हृदय को वे कवि कभी भी पूर्णतया नहीं छू सके। उन कवियों के लिए नारी-हृदय एक खिलवाड़ तथा मनोविनोद की वस्तु थी"।[3] इसके अतिरिक्त रीतिकालीन कवियों ने नारी को विशिष्ट रूपों (types) की परिभाषाओं में आबद्ध करके देखा। "वासक सज्जा," "अभिसारिका", "प्रोषितपतिका" आदि आठ दस नामों की सीमाओं में उन्होंने नारी को बाँध दिया। यह शास्त्रीय सीमायें कवि के व्यक्तिगत दृष्टिकोण के विकास के लिए अवकाश नहीं छोड़ती शृंगार-रस के क्षेत्र में विविध नायिकाओं के हाव-भावों में ही तृप्ति पाने वाले इन कवियों ने इन सीमाओं से बाहर जाने की चिन्ता भी न की। रीतिकालीन नारी भावना की संकुचितता[1] का अनुमान तो वहाँ होता है, जहाँ वीर-रस पूर्ण काव्य में भी नारी को कोई स्थान नहीं मिलता। भूषण, जैसे उत्साहपूर्ण कवि भी नारी भावना में कोई नवीनता न उत्पन्न कर सके। शिवाजी के आश्रय में रहकर भी उनकी दृष्टि शिवा जी के निर्माण की मूल कारण माता जीजाबाई के उत्तेजना भरे उपदेशों पर न गई। भूषण ने शत्रु-पक्ष की स्त्रियों का उपहास तो किया, पर यह न बता सके कि मरहठों

---

[1] केशव केसनि असि करी बैरिहु जसि न कराहिं।
चंद्रवदनि मृगलोचनि बाबा कहि-कहि जाहिं॥ (केशव)

[2] मतिराम ग्रंथावलि : भूमिका पृ० ४८।

[3] गोपालशरणसिंह मानवी : प्राक्कथन पृ० २।

की विजयों में कितना सहयोग उनकी स्त्रियों का था। एक स्थान पर मीना बाजार का वर्णन करते हुए भी वे उस वीर राजपूतानी को भूल गए जिससे शाहशाह अकबर को भी प्राणों की भीख मागनी पड़ी थी।[1] वे भी अधिक से अधिक "रति सागर" मे नारी की वीरता देख सके।[2]

रीतिकाल मे नीति काव्य की भी रचना हुई। इस काव्य के अन्तर्गत नारी भावना इसी ढग की है जैसी हम भक्तिकाल के धार्मिक काव्य म देख चुके हैं। नीति की दृष्टि से रहीम लिखते हैं –

"उरग तुरग, नारी नृपति, नीच जाति हथियार।
रहिमन इन्हे सभारिए, पलटत लगे न बार॥"[3]

भक्तिकालीन-वैराग्य मूलक भावना भी इस युग मे बनी रही। आश्चर्य तो तब होता है जब बिहारी जैसे कामिनी रूपासक्त शृगारी कवि को कहते हुए सुनते हैं

"या भवसागर को उलघि पार को जाइ।
तिय छवि छाया ग्राहिनी ग्रहे बीच ही आइ॥"[4]

यह भाव विपर्यय यही स्पष्ट करता है कि रीतिकालीन कवियों के नारी रूपानुराग मे सच्चापन नहीं था। उन्होने नारी को खिलौने मात्र के रूप मे देखा जिसका वास्तविक मूल्य कुछ भी नहीं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मध्य युग मे नारी भावना की एक सीमा भक्तिकाल के वैराग्य काव्य मे मिलती है तथा दूसरी रीतिकाल के विलासमय काव्य मे। प्रथम का आधार प्रमुखत स्मृतियों और पुराणों के वे वाक्य हैं जो प्राय. नारी की निंदा करते हैं, तथा द्वितीय का सस्कृत काव्य-शास्त्र। अगर गहन दृष्टि से देखे तो ज्ञात होता है कि दोनो विरोधी सीमायें होने पर भी केन्द्र मे एक ही हैं। गौरवमयी नारी भावना का दोनो मे अभाव है। एक ओर सत कवि काम को त्याज्य मानकर स्त्री से दूर भागते हैं तो दूसरी ओर शृगारी कवि काम के प्रति एक लीला और विनोद का भाव लिए हुए स्त्री को सस्ता खिलौना बना लेते हैं। गभीर और विवेचनात्मक दृष्टिकोण का दोनो ही मे अभाव है। पुरुष के ऐन्द्रिक जीवन के अतिरिक्त मानसिक जीवन मे नारी का क्या स्थान है, नारी का निजी व्यक्तित्व क्या है, देश और जाति के जीवन मे नारी का क्या मूल्य है, यह सब देखने का प्रयत्न मध्ययुगीय कवियों ने नही किया। उनका दृष्टिकोण सकुचित रहा।

१६ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में परिस्थितियों म परिवर्तन हुआ। लगभग पूरे भारत पर अँग्रेज़ी शासन स्थापित हो चुका था। ईस्टइंडिया कपनी अंग्रेज़ी क़ानून और अँग्रेज़ी शिक्षा का प्रचार करने का प्रयत्न कर रही थी। किन्तु भारतीय और यूरोपीय

---

[1] भूषण ग्रथावली फुटकर पद, २८ पृ० ३८७।
[2] वही, ५७, पृ० ४१८—४१६।
[3] रहीम रत्नावली : दोहावली, १४, पृ० २।
[4] बिहारी रत्नाकार : ४३३, पृ० १७८।

सभ्यता में कोई साम्य न होने के कारण जनता मे नए शासन के प्रति अविश्वास बना रहा जो सन् १८५७ के ग़दर के रूप में फूट पड़ा। यों तो ग़दर न तो सगठित राष्ट्रीय भावना से प्रेरित था और न सफल हुआ, किन्तु वह भारत में नव जागृति के प्रभात की सूचना थी। यद्यपि उसके बाद ही सम्पूर्ण भारत अँग्रेज़ों के हाथों मे चला गया और उसने दासता की नई बेड़ियाँ पहनी; किन्तु शिक्षा के प्रसार (जिसका श्रेय अँग्रेज़ी शासन को है) तथा विदेशी साहित्य और सभ्यता के प्रभाव से वह तभी अपने को पहचानने मे प्रयत्नशील हुआ और युग-युग से छाई जड़ता को दूर करने के लिए सजग हुआ।

साथ ही अँग्रेज़ी शासन ने राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों मे भी उथल-पुथल कर दी। शताब्दियों से चले आते हुए सामंतवादी शासन का स्थान प्रजा तन्त्रवादी व्यवस्था ने लिया जिसमे भारतवासियों मे नए दृष्टिकोण बनने प्रारभ हुए। अँग्रेज़ों की आर्थिक नीति ने भारत की औद्योगिक सम्पन्नता को नष्ट करके बेकारी बढ़ा दी जिसने असतोष को जन्म दिया। अँग्रेज़ी क़ानून ने भारतवासियों के धार्मिक विश्वासों तथा धर्मसूत्रों की भावनाओं पर प्रचण्ड आघात करके मानसिक द्वन्द्व का सूत्रपात किया।

इस प्रकार की उथल-पुथल के मध्य भारतीय साहित्यकार अपनी गतिहीन स्थिरता त्यागने लगा। १९ वीं शताब्दी में गद्य-साहित्य का विशेष विकास हुआ और काव्य मे अनेक प्रकार के विषयों का समावेश होने लगा। नारी को लेकर सुधार भावना से प्रेरित होकर कुछ कवियों ने उनकी शिक्षा आदि की आवश्यकता की ओर लक्ष्य किया[1]। किन्तु नारी सबन्धी उदार भाव इस युग मे कम ही मिलते हैं क्योंकि पुरानी विचार धारा समाज मे तथा काव्य में अब भी प्रबल थी। विधवा विवाह और पर्दा खंडन के विरुद्ध अनेक व्यंगपूर्ण कवितायें हम पाते हैं[2], तथा रीतिकालीन परंपरा के काव्य की रचना प्रचुर रूप से होती रही। नारी को विशिष्ट रूपों मे देखने की आदत से कवि छुटकारा न पा सके।

२० वीं शताब्दी नारी भावना में नवयुग का संदेश लेकर आई। इस युग में नारी भावना मे परिवर्तन की गति स्पष्ट दिखाई पड़ने लगी। कुछ विशिष्ट कारणों से जिनका विवेचन प्रथम अध्याय मे किया जायगा, काव्य ने अपनी परिपाटी को छोड़कर नवीन भावनायें, नवीन दृष्टिकोण और अभूत पूर्व विचार विकसित किए, और नए विचारों ने नारी भावना में भी नवीनता उत्पन्न की।

---

[1] जो हरि सोई राधिका, जो शिव सोई शक्ति।
जो नारी सोई पुरुष, या मैं कछु न विभक्ति॥
सीता अनुसूया सती, अरु धती अनुहारि।
शील लाज विद्यादि गुण, लहौ सकल जग नारि॥
वीर प्रसविनी बुध वधू, होइ दीनता खोय।
नारि नर अरधंग की, साँचेहि स्वामिनि होय॥
भारतेन्दु हरिश्चंद्र : बाला बोधिनी।

[2] बालमुकुन्द गुप्त—स्फुट कविता पृ० ११०, पृ० ११४।

*

पूर्व पीठिका

जैसा कि पहले भूमिका में संकेत किया जा चुका है, साहित्य की नारी-भावना का विकास नारी की समाजगत अवस्था पर निर्भर रहता है, नारी की सामाजिक दशा देश की राजनैतिक, आर्थिक तथा धार्मिक परिस्थितियों के आधार पर बनती है। फलतः खोजकाल के काव्य में नारी-भावना किन प्रमुख कारणों से मध्ययुगीय नारी-भावना से संबंध तोड़ बैठी, यह देखने से पूर्व इन परिस्थितियों का अध्ययन करना अनिवार्य है, जो उन कारणों की भूमिका बनाती हैं।

२० वीं शताब्दी के उदय के समय भारत की राजनैतिक परिस्थिति पूर्णतः बदली हुई थी। न तो अब आपस में लड़ने वाले देशी राज्य रह गए थे, और न मुग़ल बादशाहत ही बची थी; संपूर्ण देश ब्रिटिश राज्याधिकार में पहुँच गया था। सन् १७४० और १८५७ के मध्य अंग्रेज़ों ने चातुरी और बल के प्रयोग से भारत की समस्त बिखरी हुई राजनैतिक शक्तियों को कुचल कर या निगल कर, अंत कर दिया था; जो कुछ देशी राज्य बचे भी उनकी अपनी स्वतंत्र सत्ता बहुत कम थी। अंग्रेज़ों की भारत-विजय अन्य पूर्ववर्ती विजयों से सर्वथा भिन्न थी। मुसलमान तथा अन्य आक्रमणकारी या तो भारत के कुछ अंशों पर आक्रमण करके धन आदि लूटकर चले गए थे या भारत में ही आकर बस गए थे और अपने राज्य का विस्तार करते रहे। इस प्रकार विजयों ने देश की शासन-विधि में कोई अंतर न किया था। अंग्रेज़ी शासन से पूर्व प्राचीन काल तक भारत राजाओं तथा बादशाहों से शासित होता चला आया था। किन्तु अंग्रेज़ी शासन-व्यवस्था उस व्यवस्था से सर्वथा भिन्न थी। ब्रिटेन एक प्रजातंत्रवादी राष्ट्र था और सामंतशाही का अंत बहुत पहले कर चुका था। अंग्रेज़ों के द्वारा भारत में भी प्रजातंत्र वादी शासन व्यवस्था की स्थापना ने शताब्दियों से चली आती हुई सामंतशाही का अंत कर दिया। ब्रिटिश राज्य ने भारत में शासन-व्यवस्था का एक सर्वथा नवीन रूप विकसित किया और राजनीति को एक वैज्ञानिक तथा व्यवस्थित रूप दिया। देश में अब छोटे-छोटे राज्यों और जागीरों के स्थान पर केन्द्रीय तथा प्रांतीय सरकारों का निर्माण हुआ, न्याय, मालगुज़ारी आदि के नये सिद्धान्त प्रचलित हुए।

राजनैतिक परिस्थिति के साथ देश की आर्थिक परिस्थिति भी बदली हुई थी। पूर्ववर्ती आक्रमणकारियों ने भारत की आत्म निर्भर ग्राम-व्यवस्था को नहीं तोड़ा था, इसलिए भारत की सम्पन्नता तथा संतोष पर विशेष आघात नहीं हुआ था। किन्तु अंग्रेज़ों की नीति आर्थिक शोषण की थी। फलतः आत्म निर्भर ग्राम-व्यवस्था ध्वस्त हो चुकी थी। हस्त-कलाओं और देशी उद्योगों को नष्ट कर दिया गया था। लगभग समस्त बड़े-बड़े उद्योगों और व्यापारों के अधिकारी विदेशी थे, जो भारत में कमाया हुआ धन ले जाकर विलायत

मे खर्च करते थे। विदेशी माल के आने से देश का धन नदी की भाँति बाहर की ओर बह रहा था। बड़े-बड़े पदो पर मोटे वेतन पाने वाले अँग्रेज़ थे जो भारत को धन एकत्र करने का स्थान समझते थे और उसको ले जाकर विलायत मे बड़ी-बड़ी रियासते खरीदते थे। इन कारणो मे भारत की आर्थिक दशा निरन्तर गिरती जा रही थी। उसको समय-समय पर आने वाले अकालो तथा भूकपों ने और भी नीचे ढकेल दिया।

इस प्रकार भारत की नवीन रूप-रेखा उसके मध्ययुगीय स्वरूप से सर्वथा भिन्न हो गई थी। इन बदलती हुई राजनैतिक और आर्थिक परिस्थितियों मे भारतवासियो के मस्तिष्क की बनावट वही न रह सकी, जो मध्ययुग मे थी। एक ओर तो आर्थिक-सकट ने लोगो को जीवन की यथार्थताओं के प्रति आकर्षित किया और दूसरी ओर प्रजातन्त्रवादी शासन की स्थापना ने उनमे ऐक्य, राष्ट्रीयता, समाजोद्धार, व्यक्ति-स्वातन्त्र्य आदि की भावनाओ को उत्पन्न किया। वे अब व्यक्ति, समाज और देश को नई दृष्टि से देखने लगे, साथ ही भारत मे सामतवादी व्यवस्था नष्ट हो चुकी थी और अब पूँजीवादी व्यवस्था की स्थापना हो रही थी। विचारो की उदारता उदीयमान पूँजीवाद की प्रमुख विशेषता है। पूँजीवाद व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य तथा समानता को भी स्वीकार करता है। ये नये प्रभाव, तथा नए विचार भारतीय मस्तिष्क को मध्ययुगीय विचार धाराओं से मुक्त करने लगे, विचारो के परिवर्तन मे विशेष रूप से सहायक हुई अंग्रेज़ी शिक्षा जिसने २० वी शताब्दी में अपने निश्चित विकास को स्पष्ट किया।

अंग्रेज़ों के भारत मे आने से पूर्व पाठशालाओं और मक्तबो की शिक्षा सस्कृत और अरबी साहित्य के सकुचित क्षेत्र तक ही सीमित रहती थी। विज्ञान, राजनीति, इतिहास, अर्थशास्त्र आदि के लिए वहाँ कोई स्थान न था। चार्ल्स, ग्रांट जो १७७३—९० तक ईस्ट इन्डिया कम्पनी का सिविलियन रहा था, ने जनहितैषी भावो से प्रेरित होकर भारत के सामाजिक दोषो और कुप्रथाओं विशेष रूप से स्त्रियो की दशा तथा उनके दलित जीवन का वर्णन करते हुए अंग्रेज़ी सरकार का ध्यान अँग्रेजी शिक्षा की अनिवार्यता की ओर आकर्षित किया, जो उनके विचार मे, भारतवासियों के सम्मुख नवीन विचारों का भडार खोल देगी तथा उनके दोषो को दूर कर देगी। ग्रांट की कल्पना सार्थक होने मे काफी समय लगा क्योंकि अँग्रेज़ी सरकार ने १८३५ से पूर्व अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रसार पर विशेष ध्यान नहीं दिया। १८५४ मे सर चार्ल्स वुड ने शिक्षा-सबधी एक महत्त्वपूर्ण योजना बनाई जिसका पालन लगभग अबतक हो रहा है। इस योजना मे स्त्री शिक्षा पर विशेष बल दिया गया तथा उच्च शिक्षा के लिए विश्वविद्यालयों की स्थापना का निश्चय किया गया। फलत १८५७ और १८८७ के मध्य पाँच प्रमुख विश्वविद्यालयो—कलकत्ता बबई, मद्रास लाहौर और प्रयाग, की स्थापना हुई। २० वी शताब्दी के प्रत्यूष काल मे देश अँग्रेज़ी शिक्षा का ग्रहण करने के लिए प्रस्तुत हो गया था। ६ जनवरी १९१२ को जार्ज पचम ने कलकत्ते मे कहा "मेरी इच्छा है कि देश भर में स्कूल और कालिजो का जाल बिछ जाय, जिनमे राज्य भक्त पौरुषी, उपयोगी नागरिक निकले, जो अपने उद्योग-धधे कृषि तथा व्यवसायों को स्वय सँभाल सके। यह भी मेरी इच्छा है कि मेरी भारतीय प्रजा के घर, ज्ञान के प्रसार तथा उसके

फलों, उच्च विचार, सुख तथा स्वास्थ्य से, उज्ज्वल तथा मधुर हो जायें। मेरी इच्छा की पूर्ति शिक्षा प्रसार से ही होगी।" इसके अनन्तर २१ फर्वरी तथा २४ अप्रैल १९१३ को भारतीय सरकार ने शिक्षा के क्षेत्र का निरीक्षण और बादशाह द्वारा निर्धारित सिद्धान्तों के आधार पर शिक्षा-नीति को निश्चित करते हुए प्रस्ताव पास किये। इनके अनुसार शिक्षा का सामाजिक शक्ति बनाया गया स्वास्थ्य-विज्ञान, शारीरिक शिक्षा, तथा चरित्र-निर्माण शिक्षा के प्रथम ध्येय निश्चित किए गए, धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा का महत्त्व स्वीकार किया गया, शिक्षा-प्रसार का कार्यक्रम निश्चित किया गया तथा विश्वविद्यालयों में नवीन विचारों के विकास के लिए अवकाश दिया गया। अस्तु, २० वीं शताब्दी में अधिकाश भारतीय अपने रूढ़िबद्धता के कारण शिक्षा-विरोधी विचारों को छोड़ कर नवीन शिक्षा की ओर झुकने लगे। विद्यार्थियों की सख्या में आश्चर्यजनक वृद्धि तथा १९१६ १९२९ के मध्य १३ नए विश्वविद्यालयों की स्थापना इसका प्रमाण है।

भारत में अँग्रेज़ी-शिक्षा के प्रचार ने वास्तव में, ग्राट के शब्दों में, नवीन विचारों का भडार भारतीयों के सम्मुख खोल दिया। परम्परागत रूढ़ियों को तोड़कर ये नए विचार ग्रहण करने और उदार तथा सस्कृत दृष्टिकोण का निर्माण करने लगे। अन्य देशों के सपर्क में आने से उनके ज्ञान में अधिकाधिक वृद्धि हुई तथा अपने देश तथा समाज की पतित दशा का ज्ञान हुआ। फल यह हुआ कि भारतवासी अपने को उन्नत तथा शक्ति सपन्न बनाने में प्रत्नशील हुए।

भारतीय उन्नति के मार्ग में एक बड़ी बाधा थी नारी जो शताब्दियों से पर्दे के पीछे अपने दलित जीवन को व्यतीत करती हुई किसी क्रियाशील उपयोग की न रह गई थी। प्रत्येक देशी आदोलन ने स्त्रियों की सामाजिक अवस्था को सुधारने का प्रयत्न किया तथा सरकारी क़ानूनों द्वारा भी इस दिशा में प्रचुर प्रयत्न किए गए। इस प्रकार के प्रयत्नों का प्रारभ तो राजा राममोहन राय (१७७२-१८३३) से हो गया था किन्तु १९ वीं शताब्दी सुधारवादी आदोलनों का विशेष फल न देख सकी। भारतीय समाज अपनी परम्पराओं को छोड़ने में तनिक अनुदार रहा है, इसलिए, उन सुधारों को व्यावहारिक रूप लेने में समय लगा। २०वीं शताब्दी में जब स्त्रियों में शिक्षा का प्रसार हुआ तथा वे स्वय अपने अधिकारों और स्वतत्रता के प्रति सचेत हुईं, तभी देश की सामाजिक परिस्थितियों में निश्चित परिवर्तन हो सका।

२० वीं शताब्दी में स्त्री-शिक्षा का प्रसार तीव्रता से होने लगा। भारत में अंग्रेज़ों के आने से पूर्व स्त्रियों के लिए शिक्षा का कोई आकार न था तत्कालीन शिक्षा पद्धति की रिपोर्ट में विलियम आडम ने लिखा है कि स्त्रियों को पढाना उनके विधवा होने की भविष्य वाणी समझी जाती थी, तथा लोगों की धारणा थी कि स्त्रियों का स्वभावगत कपट लिपि ज्ञान से वृद्धि पाता है। १९ वीं शताब्दी तक अँग्रेज़ी सरकार ने भी स्त्री-शिक्षा की ओर ध्यान न दिया। मई, १८४२ में कलकत्ते में प्रथम बालिका-विद्यालय की स्थापना की गई। चार्ल्स वुड शिक्षा-योजना में इस ओर विशेष ध्यान दिया गया, किन्तु ग़दर के बाद लार्ड कैनिंग ने इस चिंता में कि भारतवासी यह न समझें कि सरकार उनकी समाज व्यवस्था में क्रान्ति

चाहती है, घोषणा कर दी कि कन्या-पाठशालायें व्यक्तिगत सहायता से ही चलें। लार्ड रिपन जो उदार दल के थे, के समय एज्यूकेशन कमिशन (Education Commission) (१८८२) ने सलाह दी कि स्त्री-शिक्षा को विशेष प्रोत्साहन देना चाहिए। तदनन्तर कन्या पाठशालाओं को सरकारी आर्थिक सहायता उदार ता के साथ दी जाने लगी। किन्तु भारत-वासियों मे नवीन विचारों का प्रसार धीरे-धीरे हो रहा था। पर्दा, बाल-विवाह, आदि अनेक कारण अधिकांश लड़कियों को शिक्षा से वंचित रखते थे। २० वीं शताब्दी मे कई कारणों से स्त्री-शिक्षा का विशेष प्रचार हुआ; प्रमुखतम कारण था राष्ट्रीय जागृति जो स्त्रियों को घर की संकुचित दीवारों से बाहर निकाल लाई। देशीय चेतना ने स्त्रियों को शिक्षा की ओर प्रेरित किया। फलत जब १९०० में शिक्षा ग्रहण करनेवाली लड़कियों की संख्या ४००००० थी, तो १९२५ मे १२३०६९८ और १० वर्ष बाद २८९०२४६। इन संख्याओं को देखकर अनुमान किया जा सकता है कि शिक्षा प्रचार कितनी तीव्रता से हो रहा था। २० वीं शताब्दी में सहशिक्षा भी प्रचुर रूप से प्रचलित हुई। स्त्रियों की शिक्षा-पद्धति ध्यान का प्रमुख विषय हो गया।

शिक्षा प्राप्त करके स्त्रियों ने एक नवीन दृष्टिकोण लेकर जीवन मे प्रवेश करना प्रारंभ किया। अब उनके जीवन का एक मात्र लक्ष्य जैसे तैसे विवाह करके यातना पूर्ण जीवन व्यतीत करना न रह गया। उन्होंने विविध व्यवसायों—डाक्टरी, वकालत अध्यापन आदि को अपनाना प्रारंभ कर दिया। उनके ऐसा करने में तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था के प्रति विद्रोह तो था ही साथ ही स्त्रियों की सामर्थ्य तथा बुद्धि का प्रमाण भी था। इतना ही नहीं स्त्रियाँ सार्वजनिक कार्य क्षेत्र मे भी उत्साह के साथ उतरीं। प्रारंभ में तो स्त्रियों की निजी समस्यायें पर्दा, विवाह आदि शिक्षित स्त्रियों के ध्यान का केन्द्र रहीं, किन्तु शीघ्र ही देश कार्य उनका प्रमुख ध्येय हो गया। २० वीं शताब्दी की अत्यन्त महत्त्व पूर्ण घटना है स्त्रियों का राजनैतिक क्षेत्र मे अवतरण। मिसिज़ ऐनी बेसेंट के भारत में जागृति फूकने के समय (१९१४) से तथा उनके कांग्रेस की सभापति होने (१९१७) से भारतीय स्त्रियों में राजनैतिक चेतना जाग्रत हुई। १९१७ की कलकत्ता कांग्रेस में ३ स्त्रियाँ-मिसिज़ एनी बेसेंट, सरोजनी नायडू तथा बेगम अम्मन बीबी महत्त्व पूर्ण पदो पर स्थित थीं। भारत के सामाजिक तथा राजनैतिक इतिहास मे ये तीन नारियां नव युग के प्रारम्भ की सूचना थीं। इसके बाद भारतीय नारी मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिए पुरुष के साथ परिश्रम करने को निकल आई, १९२१-२३ के असहयोग आंदोलन में हज़ारों स्त्रियाँ वोट देने तथा आंदोलन में भाग लेने के लिए आईं। १९२६ से स्त्रियां व्यवस्थापक मंडल (Legislative Council) की सदस्य होने लगीं। डा० मुथु लक्ष्मी रेड्डी ऐसी प्रथम महिला थीं। लगभग इसी समय स्त्रियां म्युनिसिपल कौंसिल (Municipal Council) की भी सदस्य होने लगीं। १९३१-३२ के सविनय अवज्ञा आंदोलन के दिनों मे भारतीय स्त्रियों में राजनैतिक चेतना और जागृति अत्यंत व्यापक रीति से फैली। देश की ३ हज़ार से अधिक स्त्रियाँ ने पुरुषों के साथ जलूसों मे गईं, शराब और विदेशी माल की दुकानों पर पिकेट बनीं, लाठी प्रहार सहीं, न्यायालयों मे खड़ी हुईं, जेल की कड़ी सजायें भुगतीं तथा धार्मिक और जाति संबधी बंधनों को तोड़ कर देश के चरणों

पर बलि हुई। देश-सेवा के लक्ष्य के सम्मुख तथा गांधी के नेतृत्व में समस्त बाधा-बंधन नष्ट हो गए। इस युग की प्रमुख नारियाँ थीं—सरोजिनी नायडू, कमला देवी चट्टोपाध्याय, रुक्मनी लक्ष्मीपति, हंसा मेहता, कस्तूरबा गांधी, मीरा बेन, नेली सेनगुप्त, सत्यवती देवी, तथा जाफर अली आदि। उस समय गांधी के आह्वान को सुनकर गर्भवती मातायें, देवदासियाँ, श्वेत केशोंवाली मातामही तथा रूढिवादिनी ब्राह्मणियाँ भारत को स्वतन्त्रता के लिए जेल की यातनायें सहने को प्रस्तुत हो गईं। इस आंदोलन के पश्चात् १९३६ के चुनावों के लिए स्त्रियों में बहुत उत्साह था। लगभग ५० लाख स्त्रियाँ वोट देने आईं। वे अपने मताधिकार तथा उत्तरदायित्व के प्रति सचेत थीं। इन चुनावों में व्यवस्थापक-मण्डल की सदस्यता के लिए अनेक स्त्रियाँ भी खड़ी हुईं। जिन स्थानों में स्त्री पुरुष की प्रतिद्वन्द्विता थी वहाँ स्त्री ही सफल हुई। ८० स्त्रियाँ भारतीय व्यवस्थापक-मण्डल में स्थान पा सकीं। १९४१ में राजनैतिक क्षेत्र में स्त्रियों के स्थान की दृष्टि से भारत का स्थान तीसरा था। प्रथम अमरीका का तथा द्वितीय रूस का। १९४२ के आंदोलन में स्त्रियों का सहयोग पहिले से भी अधिक था। और आज भारत की स्त्रियाँ न केवल राष्ट्रीय राजनीति में भाग ले रही हैं, वरन् अंतर्राष्ट्रीय राजनीति की प्रमुख स्तंभ हैं।

शिक्षा के प्रचार तथा स्त्रियों की इस उन्नति में विशेष रूप से सहायक हुआ विवाह आयु का बढ जाना। २० वीं शताब्दी के प्रारंभ में प्लेग के भयंकर आर्थिक फलों के कारण लड़कियों की विवाह-वयस १२, १३ वर्ष हो गई। शहरों में तो आर्थिक कारणों से ही १६, १७ पर पहुँच गई। १९३० के शारदा एक्ट के द्वारा सरकार ने लड़कियों की लघुतम विवाह वयस १४ निश्चित कर दी। इस एक्ट का व्यावहारिक क्षेत्र में काफी प्रभाव पड़ा। शिक्षा के प्रसार ने उसको और भी बढ़ा दिया। साथ ही शिक्षा के प्रसार से जब लड़कियाँ विविध व्यवसायों के मार्ग खुले पाने लगीं, तो वे आर्थिक दृष्टि से भी स्वतंत्र तथा स्वावलंबी होने लगीं। भारत में बाल-विवाह के कारण स्त्रियों की आर्थिक परतंत्रता उनकी दुर्दशा का एक प्रमुख कारण रही थी। आधुनिक युग में स्त्री को व्यक्तिगत आर्थिक अधिकार देने के प्रयत्न हुए हैं तथा हो रहे हैं। १९३६ में डा० देशमुख के प्रयत्न से केन्द्रीय व्यवस्थापक-मण्डल में कन्या तथा विधवा के उत्तराधिकार को लेकर एक प्रस्ताव रक्खा गया। किन्तु अत्यधिक विरोध के कारण वह पास न हो सका। १९३७ के हिन्दू विमेन्स राइट टु प्रापर्टी एक्ट (Hindu Womens, Right to Property Act) के अनुसार दायभाग के नियम को प्रचलित किया गया जो अभी तक केवल बंगाल में ही माना जाता था। इस प्रकार समाज स्त्रियों के संपत्ति-संबन्धी अधिकारों के प्रति अधिक उदार हो रहा है।

उल्लिखित कारणों से समाज में स्त्रियों की अवस्था में उन्नति होने लगी। इन सब कारणों से अधिक महत्त्वपूर्ण कारण था भारतीय पुरुषों का शिक्षित होना तथा विविध उन्नति देशों के संपर्क में आकर उनके दृष्टिकोण का विकास। पहले भूमिका में हम लिख चुके हैं कि मध्ययुग में पुरुषवर्ग का ज्ञान भी बहुत संकुचित रह गया था, किन्तु जब भारत में शिक्षा-प्रसार हुआ और भारतीय पुरुष इंगलैंड आदि देशों के संपर्क में आये, जहाँ स्त्रियों को भारतीय स्त्रियों से अधिक स्वतंत्रता थी, तो उनका ध्यान अपने देश की स्त्रियों की अव-

स्था में भी परिवर्तन करने की ओर आकर्षित हुआ। साथ ही शिक्षित युवक पत्नी को घर की दासी नहीं वरन् सहयोगिनी के रूप मे चाहने लगा। भारतीयों के एक वर्ग ने तो पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित होकर नारी के प्रति दृष्टिकोण उदार बनाये। दूसरे वर्ग ने देश-भक्ति और प्राचीन भारत की सभ्यता के अभिमान से प्रेरित होकर वैदिक-कालीन अवस्था का पुनरावर्तन चाहते हुए स्त्रियों की दशा को सुधारा।

यहाँ भारत की वर्तमान धार्मिक परिस्थितियों का उल्लेख कर देना अनुचित न होगा। हम देश की राजनैतिक और आर्थिक परिस्थितियाँ देख चुके हैं, जो नारी की सामाजिक अवस्था के परिवर्तन मे सहायक हुईं। ज्यों-ज्यों भारत में अँग्रेज़ी शिक्षा का प्रचार हुआ और लोग रूढ़ियों को छोड़ने लगे, त्यों-त्यों देश की धार्मिक परिस्थिति भी बदलती गई, लोगों के परम्परागत धार्मिक विश्वास टूटने लगे। १९ वीं शताब्दी मे कई महत्त्वपूर्ण धार्मिक आन्दोलनों का सूत्रपात हुआ था। ये आन्दोलन धार्मिक होने पर भी अपने विश्वासों और प्रक्रियाओं मे मध्ययुगीय धार्मिक आन्दोलन से बहुत भिन्न थे। इसकी सबसे बड़ी विशेषता तो यह थी कि ये व्यावहारिक-जीवन को न भूलकर धार्मिक-सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते थे, और इन सभी का लक्ष्य वैदिक धर्म-व्यवस्था का पुनरावर्तन था। साथ ही इन आन्दोलनों का दृष्टिकोण साम्प्रदायिक और सकुचित न था। जाति और वर्ण की दीवारों को तोड़ कर एक विश्व-धर्म का निर्माण ही इनका प्रमुख ध्येय था। ये आन्दोलन न केवल धार्मिक थे, वरन् सामाजिक भी थे। देश की सामाजिक दशा मे सुधार उनका प्रमुख ध्येय रहा था। इसके अतिरिक्त इन आन्दोलनों में देशीय चेतना प्रबल थी, जिसके फल-स्वरूप अनेक देवी-देवताओं का सामजस्य मातृ-भूमि मे कर दिया गया। इस प्रकार के धार्मिक आन्दोलनों ने भारतीय धार्मिक दृष्टिकोण मे परिवर्तन करना प्रारम्भ कर दिया था। २० वीं शताब्दी के पदार्पण के समय समाज की धार्मिक परिस्थिति मे परिवर्तन होने लगा था। अँग्रेज़ी शिक्षा के प्रचार ने उसकी गति तीव्र कर दी, क्योंकि शिक्षित नवयुवकों के लिए परम्परागत धार्मिक विश्वासों को सँभालना असभव हो गया। अब आध्यात्मिकता से अधिक मानवतावाद भारतीयों को आकर्षित करने लगा, साथ ही जीवन की व्यस्तता के बढ़ने से लोगों का ध्यान-केन्द्र मोक्ष आदि की चिंता से हटने लगा। भौतिक चिन्तायें, जिसमे राष्ट्र की चिंता भी आ जाती है, भारतवासियों के ध्यान की केन्द्र हो गई।

फलत राजनैतिक, आर्थिक और धार्मिक परिस्थितियों में नवीन परिवर्तन होने से भारत की सामाजिक दशा मे भी परिवर्तन हुआ तथा विचार-धारा ने नवीन मार्ग ग्रहण किया। इसके फलस्वरूप देश के समाज मे स्त्रियों की दशा वह न रह सकी, जो मध्ययुग मे थी और १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक रही थी। नारी अब स्वतत्र है निजी व्यक्तित्व रखती है। जीवन-मार्ग के चुनाव का अधिकार रखती है घर के बाहर के क्षेत्रों में भी कार्य्य करने की सामर्थ्य रखती है।

किन्तु यह परिस्थिति अभी एक वर्ग तक ही सीमित है ग्रामों मे तथा शहरों के निम्नमध्यवर्ग में अधिकांश स्त्रियाँ अब भी अशिक्षिता हैं और अन्धविश्वासों का घर हैं। अब भी उनका भाग्य गृह की दीवारों मे बद रहकर पति की क्रूरताओं को मूक भाव से सहन

करना तथा यत्र की तरह शिशुओ को जन्म देना है। अब भी अनेक पुरुष उन्हें हीन समझते हैं तथा उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं।

किन्तु इसमे परिवर्तन चाहे वह व्यापक न हो, का मूल्य कम नहीं होता। अस्तु, जब देश की राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियो मे अंतर हुआ तो कवि के मस्तिष्क ने भी नवीन मार्ग को अपनाया। समाज मे जब स्त्रियो की दशा सुधारने के लिए आन्दोलन हुआ तथा उनकी परिस्थितियो मे उन्नति हुई, तो कवियो ने भी मध्ययुगीय सकुचित नारी-भावना का परित्याग करके नवीन उदार-भावना का विकास किया। यह अत्यत स्वाभाविक था।

अध्याय १

आधुनिक हिन्दी-काव्य की नारी भावना में परिवर्तन

कारण और प्रेरणा के स्रोत

पूर्वपीठिका मे हम उन परिस्थितियो को देख चुके हैं, जो हिन्दी के आधुनिक कवि के मस्तिष्क के निर्माण की भूमिका रही हैं । इस भूमिका मे कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण कारण उदय हुए जो कवि को नवीन प्रकार की नारी-भावना के निर्माण की ओर ले गए । इन कारणो और प्रेरणा स्रोतों को हम सात छोटे-छोटे शीर्षकों में देख सकते हैं ।

१ प्राचीन के प्रति नव-जाग्रत आकर्षण :—जब कोई देश पुनरुत्थान के पथ पर अग्रसर होता है तो अपने अतीत गौरव के पृष्ठ पलटता है । उसका प्राचीन सास्कृतिक-वैभव आगे बढ़ने के लिए उसका सबल हो जाता है । यही नव जागृति की किरणो को ग्रहण करते हुए भारत में भी हुआ । प्रारम्भ में तो पश्चिमी विद्वानों ने प्राचीन भारत की साहित्यिक और सास्कृतिक सम्पत्ति की खोज प्रारम्भ की थी और इस सबध मे बगाल की एशियाटिक सोसाइटी का जन्म (सन् १७८४)[1] एक महत्त्वपूर्ण घटना है, किन्तु राष्ट्रीय भावना और सुधार-भावना के विकास के साथ भारतीय विद्वानो का ध्यान भी भारत की प्राचीन सस्कृति तथा साहित्य की ओर विशेष रूप से आकर्षित हुआ । स्वतत्रता की प्रेरणा ने भारत और भारतीय वस्तुओ के प्रति भारतीयो मे प्रेम जाग्रत किया । इस सबध मे महत्वपूर्ण कार्य आर्य-समाज ने किया, जिसके आदर्श वैदिक थे और जिसने "वेदो की ओर लौटो" का प्रबल स्वदेश भारत मे गुँजा दिया । प्राचीन भारतीय सस्कृति और साहित्य की ओर

---

1. Thus there has been an almost general awakening of the Indian mind leading in most cases to a revival and adaptation of the past literary tradition of India, which have been and are being harmonised with all that the West and the wide world has brought and is still bringing to the doors of India.....This cultural renaissance has also necessarily created in Modern India a spirit of enquiry into the past history and antiquities of the country, The foundation of the Asiatic Society of Bengal in 1784 was a landmark in the history of India from this standpoint, and since then the researches of number of prominent European Scholars (like Charles Williams, Sir William Jones, Henry Thamas Colebrooke, Alexander Hamilton, Fredrich Schegal, Froz Bopp, F. Rosen, Rudolf Roth, F Max Mular, Theodor Autrecht, Barnoff lassen, T. W. Rlys Davids, George Bublar, A. A Macdonell, Keith, Jolly, M Winterniky and Tucci) have unfolded India's intellectual pasto ints manifold aspects.

दत्त और सरकार—टैक्स्ट बुक ऑफ माडर्न इडियन हिस्ट्री,
३, ३, पृ० २३३-२३४.

आकर्षण का फल यह हुआ कि द्विवेदीजी ने 'नैषध-चरित-चर्चा' (१९००), 'विक्रमाकदेव चरित-चर्चा' (१९०७), 'कालिदास की निरकुशता' (१९१२), 'प्राचीन पडित और कवि' (१९१९), 'सुकवि सकीर्तन' (१९२४ आदि लिखकर सस्कृत साहित्य-सागर में से हिन्दी के लिए रत्न खोजने का प्रयत्न किया साथ ही रामदहिन मिश्र ने 'मेघदूत-विमर्श' (१९१२), माधवराव सप्रे ने 'महाभारत-मीमासा' (१९००), भी लिखे। एक ओर यह सस्कृत-साहित्य का अन्वेषण हो रहा था तो दूसरी ओर वेद-वेदात पुराण आदि का अध्ययन भी चल रहा था। इद्र वेदालकार ने 'उपनिषदो की भूमिका' (१९१३), द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी ने 'पौराणिक उपाख्यान' (१९१२), राधा प्रमादशास्त्री ने 'प्राच्य दर्शन' (१९१५), अखिलानद शर्मा ने 'वैदिक वर्ण-व्यवस्था' (१९१६), भवानीदयाल सन्यासी ने 'वैदिक-धर्म और आर्य सभ्यता' (१९१७), नरदेव शास्त्री ने 'ऋग्वेदालोचन' (१९२८), और गगानाथ झा ने 'हिन्दू धर्मशास्त्र' (१९३१), लिखकर प्राचीन धर्म तथा सस्कृति से लोगो का परिचय कराया। अनेक ऐतिहासिक-ग्रथ भी प्राचीन आर्य-गौरव का प्रतिपादन करने के हेतु लिखे गए। साथ ही पत्र-पत्रिकाओ मे प्राचीन महान् पुरुषो और दिव्य नारियो के जीवन-चरित भी छपा करते थे। 'सरस्वती' के प्रारभिक वर्षों मे 'कामिनी-कौतूहल' नामक अश रहता था, जिसमे प्राचीन प्रसिद्ध तथा यशस्वी नारियो के सबध में लिखा जाता था। विशेष रूप से उल्लेखनीय रानी लक्ष्मी बाई-सबधी लेख है जो जनवरी १९०४ के अत मे भवभूति के इस कथन —

"गुणाः पूजास्थान गुणिषु न च लिग न च वयः"

की पुष्टि मे छपा था।

पलत हम अपने कवियो को भी प्राचीन की ओर आकृष्ट पाते हैं। जीवन की उन्नति के लिए प्राचीन सस्कृति को याद रखना अनिवार्य है, यह आज का कवि भलीभाति जानता है।[1] इसलिए भूत को पूत मानता हुआ[2] वह चाहता है

भारत की प्राचीन प्रभा जग मे जग जावे,
गया हुआ धन धाम हमारा फिर मिल जावे।[3]

---

[1] जिन प्राचीन सस्कृतियों के बुझते हुए अंगारों से हमारे नवीन प्रकाश की लौ उठी है, उन्हे हमे सम्मान की दृष्टि से देखना चाहिए। नहीं तो हम जीवन से अखंडनीय सत्य को नहीं समझ सकेंगे। (सुमित्रानदन पंत-ज्योत्सना, ३ पृ० ७)
देखिए, दिनकर-रेणुका मगल-आह्वान।

[2] अब भूत चाहे भूत है
पर वह बड़ा ही पूत है।
मैथिलीशरण गुप्त — त्रिपथगा· 'ककसंडार' पृ० ४, ३

[3] रामचन्द्र शर्मा—राष्ट्रीय-सदेश. 'माताओं से' पृ० ४०.

अतीत सदेश लेकर आता है[1] और प्राचीन गौरव दिखाकर हृदयों को नव उज्ज्वल करता है।[2] अतीत गौरव की इस भावना से प्रेरित होकर सस्कृति के पुजारी कवियो ने ऐतिहासिक पौराणिक तथा प्राचीन साहित्यिक नारी-चरित्रों को नवजीवन प्रदान करके देश और जाति के सम्मुख उपस्थित किया और नारी-जाति को पुकारकर कहा —

कहाँ गया आदर्श पुरातन ! वह जीवन-सदेश ?
परहित-साधन में सहना नित विविध भांति दुख-क्लेश !
वह मैत्रेयी गार्गी का पावन जीवन निष्काम !
और भारती अनुसूया का पुन्यकाल अभिराम !
क्या न लौट सकता है फिर भी आज एक ही बार !
वह स्वर्ण युग इस कटु काल मे किसी प्रकार ![3]

आधुनिक कवियो ने जाति की उन्नति की भावना मे आप्लावित होकर जब जब सीता और दमयती, उर्मिला और यशोधरा राधा और यशोदा शकुतला और महाश्वेता, कुती और द्रौपदी, कौशल्या और सुमित्रा, वीरा और सारधा, लक्ष्मीबाई और पद्मिनी, नूरजहाँ और अनारकली-आदि का स्मरण किया, तब केवल कथावर्णन और कवित्व-प्रदर्शन के लक्ष्य से नहीं, वरन् नारी की शाश्वत शक्तियो को सामने रखकर, परिवार, जाति और देश के हित बलि होनेवाली नारियों के आदर्शों को उपस्थित करके भारत को जाग्रत और उन्नत बनाने के उद्देश्य से और भारतीय नारियो को उनकी गुप्त-शक्ति के प्रति सचेत करने के लक्ष्य से।

२. पश्चिमी विचारो और साहित्य का प्रभाव :— सन् १८२९ की घोषणा ने अँग्रेज़ी को दफ़्तर की भाषा बना दिया था, और इसलिए अँग्रेज़ी पढना भारतीयो के लिए अनिवार्य हो गया था। भारतीय, विशेषतया हिन्दू, अग्रेज़ी की ओर तेजी से झुके। यद्यपि बगाल मे अँग्रेज़ी शिक्षा का आकर्षण अन्य उत्तर भारत से अधिक था, फिर भी अग्रेज़ी के दफ़्तरी भाषा तथा सामान्य भाषा हो जाने से पढ़े-लिखे लोगो की विचार धारा मे परिवर्तन हुआ। नई इच्छाये, नए आदर्श, नए फैशन और नई महत्वाकाक्षाये जीवन मे

---

[1] सदेश आज लाया अतीत,
विस्मृत जीवन का विजय-गीत।
आ० प्र० सिह संचयिता पृ० ६०, ५३

[2] अरे भारत भू के इतिहास।
अचल विद्युत रेख अरूनुप
दिखा गौरव प्राचीन अनूप
हृदय नव उज्ज्वल करे सहास।
रा० कु० वर्मा— "चित्तौड़ की चिता," प्रस्तावना पृ० १।

[3] आरसीप्रसादसिंह आरसी 'अग्रदूत' पृ० १७५.

स्थान पाने लगीं। लार्ड मैकाले ने, जो १८३४ में कमिटी आव पब्लिक इस्ट्रक्शन के प्रेसिडेंट हुए, अपने मिनिट्स (२ फर्वरी, १८३५) में पाश्चात्य-शिक्षा की शक्तिशाली वकालत की। मैकाले का शिक्षा-सबन्धी यह कार्य भारतीय मस्तिष्क के विकास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। 'मिनिट्स' के फलस्वरूप ७ मार्च १८३५ को सरकार ने एक प्रस्ताव पास किया, जिसके अनुसार सारा सरकारी धन अँग्रेज़ी शिक्षा में लगाया जाने लगा। यह केवल भाषा की शिक्षा देने का प्रश्न नहीं था, वरन् नवीन ज्ञान, नवीन भावनाओं, जीवन, धर्म, राजनीति और शासन के प्रति नवीन दृष्टिकोण विकसित करने का प्रयत्न था, और यह समस्त बातें मैकाले ने सोच ली थीं। जो कुछ विरोध और अविश्वास भारतीयों के रूढिग्रस्त हृदयों में विदेशी सभ्यता और शिक्षा के प्रति था भी वह गदर के बाद घटता गया। नए ग्रेजुएटों की जीवनगत सफलताओं को देख-देख कर पश्चिमी भाव, विचार, और रीति और भी लोकप्रिय हो गई।

पश्चिमी शिक्षा तथा गमनागमन की वैज्ञानिक सुविधाओं के कारण, विदेशी सपर्क के सहारे भारतीय युवक पश्चिमी सभ्यता और साहित्य से परिचित हुए। इगलैंड-आदि देशों की आश्चर्यजनक उन्नति तथा भारत के वैषम्य में पतनावस्था को देख कर वे उससे प्रभावित भी बहुत अधिक हुए। नवीन प्रभावों से उत्पन्न मस्तिष्क के उदार विकास ने बुद्धिवाद, प्रकृति की भौतिक सत्ता पर विश्वास और अभौतिक पर अविश्वास तथा अवाछित रूढियों के प्रति विद्रोह को जन्म दिया। तर्क-सगत और वैज्ञानिक दृष्टिकोण ने परपरागत अधविश्वासों को तोड़ा। फलतः काव्य में भाषा और छंद-संबन्धी परपराओं के साथ भागवत शृखलायें भी तोड़ी जाने लगीं। कवियों का नारी-सम्बन्धी दृष्टिकोण भी वह न रह सका, जो भक्तिकाल और रीतिकाल में रहा था। पश्चिम में क्रिश्चियनिटी के प्रसार के साथ नारी के प्रति घृणात्मक दृष्टिकोण का विकास हुआ था (सन् ५००-१२०० ई०), जो भारत में भक्तियुग (लगभग १२००- १६५० ई०) में फैला था; पश्चिम में भी नाइट युग के पश्चात् (सन् १५०० के बाद) वैसी ही नारी-भावना मिलती है जैसी हिन्दी-काव्य में रीतिकाल (लगभग सन् १६५०-१८५० ई०) में पाई जाती है, किन्तु १८ वीं शताब्दी से पश्चिम में ससार मानवता और जीवन के प्रति दृष्टिकोण बदलने लगा। फ्रास की क्रान्ति ने योरोप के सामाजिक और राजनैतिक दृष्टिकोण को नई दिशा में अग्रसर किया जिसकी सूचना आडम स्मिथ के 'वैल्थ आव नेशन्स' (१७७६) जैसी पुस्तकों में मिलती है। १९ वीं शताब्दी में मानवतावादी सिद्धान्तों का भली-भाँति विकास हुआ। प्रत्येक व्यक्ति की स्वाधीनता और अधिकार की भावना ने नारी-आन्दोलन को जन्म दिया। भारत इसके प्रभाव से मुक्त न रह सका और बीसवीं शताब्दी का प्रथम दशाब्द बीतते ही भारत में भी नारी-आदोलन का सूत्रपात हो गया (इस विषय को पृथक् रूप से आगे देखा जायगा)। मानवतावाद से प्रेरित होकर जब देश के दीन-दलितों पर नेताओं के साथ कवि की दृष्टि गई, तो वह भारत की शताब्दियों से पीड़ित मानवी को न भुला सका। अचल ने 'किरण-वेला' में तीन चित्र—पुरुष और नारी, जमींदार और किसान, पूजीपति और मजदूर को साथ-साथ रखा है; नारी की स्वतत्रता की आवाज को प्रतिध्वनि पत ने की है. —

"मुक्त करो नारी को मानव।
चिर बन्दिनी नारी को,
युग-युग की बबरता से,
जननी, सखी, प्यारी को।"

आधुनिक हिन्दी-कवि ने अँग्रेज़ी-साहित्य से भी उल्लेखनीय प्रेरणा ग्रहण की। विश्वविद्यालयों की स्थापना तथा उनमें साहित्य के विशिष्ट अध्ययन, जिस पर गत वर्षों में बहुत अधिक बल दिया जाता रहा है, ने उस नवयुवक वर्ग की वृद्धि की, जो अँग्रेज़ी-काव्य, विशेष रूप से १६ वीं शताब्दी के रोमांटिक काव्य से अत्यधिक प्रभावान्वित था। २० वीं शताब्दी के उदयकाल में समस्त बँगला-साहित्य पश्चिमी प्रभाव को लेकर अपनी रूप-रचना कर रहा था। रवीन्द्रनाथ ठाकुर शैली, कीट्स, स्विनबर्न आदि कवियों की भाव-प्रणाली को अपने बँगला गीतों में ढाल रहे थे। साथ ही शिक्षा में प्रचुर समय तक पिछड़ी रहनेवाली मुस्लिम जाति भी साहित्य के क्षेत्र में अब शीघ्रता से आगे कदम बढा रही थी, और हाली, आजाद, अकबर, सरूर, इकबाल-आदि ने उर्दू-काव्य में, प्राचीन को हैरत की नज़र से न देखते हुए भी, पश्चिमी काव्य से गृहीत नवीन भावनाओं का समावेश किया। ऐसी अवस्था में जब कि समस्त देश पाश्चात्य-शिक्षा में पल रहा था और आचार-व्यवहार के अतिरिक्त साहित्य में भी अँग्रेज़ी की नकल उतारी जा रही थी, तो हिन्दी-भाषी नवयुवक उससे अछूते रह जाते, यह असम्भव था। इस नक़ल का एक प्रयत्न तो अनुवादों के रूप में हो चुका था, और थोड़ा बहुत जारी था। 'सरस्वती' की प्रारम्भिक वर्षों की प्रतियों में, हम देखते हैं कि, प्रतिमास टायलर, बायरन, वर्डस्वर्थ आदि की कविताये अनुवादित रूप में छपती थीं। यह आश्चर्य का विषय है कि जिस सत्ता का राजनैतिक क्षेत्र में हम विरोध कर रहे थे, साहित्यिक-क्षेत्र में उसी का अनुकरण कर रहे थे, किन्तु ऐसी परिस्थितियों में अस्वाभाविक नहीं। कवि जब अपनी साहित्यिक परम्पराओं के प्रति विद्रोही हो उठे थे तो स्वाभाविक था कि अपनी समीपवर्ती वस्तु का सहारा लेते।

हिन्दी के आधुनिक कवि सबसे अधिक प्रभावित हुए अँग्रेज़ी काव्यगत स्वच्छन्दतावाद (Romanticism) की प्रवृत्ति से। इगलैंड में इस प्रवृत्ति का जन्म १८ वीं शताब्दी के काव्य की रूढिवादिता, इतिवृत्तात्मकता, भावशून्यता, सीमित कल्पना तथा सकुचित सौंदर्यानुभूति के प्रति विद्रोह लेकर हुआ था। १८ वीं शताब्दी का अंग्रेज़ी काव्य समाज के धनिक वर्ग—क्लब, फैशन, दरबार, सभाओं-आदि पर केन्द्रित था और प्रकृति तथा प्राचीन-कालीन जीवन की उपेक्षा करता था। रोमांटिक कवियों ने इस परम्परा को तोड़ा। रोमांटिक कवि का सिद्धान्त है प्रगति, स्वतन्त्रता, मौलिकता तथा भविष्य-उपासना। रोमांटिक प्रवृत्ति का मूलाधार है कौतूहल तथा सौन्दर्य-प्रेम। सौंदर्य को रोमांटिक कवि आश्चर्य की दृष्टि से देखता है तथा कल्पना की तीव्रता से प्राचीन वस्तुओं में सौंदर्य खोजता है। उसमें एक रहस्य की भावना भी रहती है। इस भावना से प्रेरित कवि ससार की सामाजिक वस्तुओं से अधिक प्रकृति की ओर आकर्षित है। रूढिवादी कविता के विपरीत रोमांटिक काव्य आत्माभि-

व्यंजक है । यह भावों को प्रभावित करने में अपनी विशेषता रखता है। निराशावाद तथा साथ ही आदर्श संसार की कल्पना रोमांटिक काव्य की प्रमुख विशेषतायें हैं। रोमांटिक कवियों ने अपनी आदर्श-कल्पना मे प्रेम को अधिक महत्त्व दिया है।

अँग्रेज़ी रोमांटिक काव्य की उल्लिखित विशेषताओं ने आधुनिक कवि को अत्यधिक आकर्षित किया। उसके प्रभाव के फलस्वरूप कवि ने चली आती हुई काव्यगत रूढ़ियों, निश्चित नियमों, सीमित विचारों को छोड़ना प्रारम्भ कर दिया। सौंदर्य से वह आकर्षित हुआ, आलंबन या उद्दीपन की रेखाओं को लेकर नहीं, वरन् व्यक्तिगत सहज अनुभूति को लेकर। उसकी अनुभूति मे निश्चित वर्णन-प्रणाली के स्थान पर आश्चर्य और कौतूहल मिश्रित प्रेम का उदय हुआ। राजाओं, नायिकाओं और नायकों को छोड़कर वह प्रकृति के अद्भुत विस्तार तथा सामाजिक व्यक्तियों की स्वाभाविक परिस्थितियों से आकर्षित होने लगा। अपनी सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों के कारण वह दुःखवादी तो अवश्य बना, किन्तु रचनात्मक आदर्शवाद (Utopian Idealism) भी उसकी विशेषता रही। और सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रभाव तो था काव्य में व्यक्तिवाद तथा आत्माभिव्यंजना का प्रारम्भ। १९१४-१८ के महायुद्ध-काल मे जब अंतर्भावना कविता का माध्यम बन गई, तो कवि ने अपने दुख-सुख का अवलंब मानसी मे पाया। जिस प्रकार उपनिषदों के अनुसार ब्रह्म ने एकाकी न रमते हुए अपने को द्विलिंगी अंशों मे विभक्त किया था, उसी प्रकार कवि भी अपने भाव-जगत् की यात्रा एकाकी करने में असमर्थ रहता हुआ एक अन्य सहचर की सृष्टि करता है। यह अन्य निज मानस प्रतिभा ही होती है; क्योंकि यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि प्रत्येक व्यक्ति काम-प्रेरणा के फलस्वरूप शैशव में ही अपने से प्रतिकूल लिंग के व्यक्ति का रूप-निर्माण अंतःकरण में कर लेता है। इस मूर्ति-कल्पना की कलात्मक अभिव्यक्ति की शक्ति कलाकार मे ही होती है। इसीलिए रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लिखा.

"शुधु विधातार सृष्टि नह तुमि, नारी।
पुरुष गडिछे तोरे सौंदर्य संचारि।
आपन अन्तर हते।..... "
पडेछे तोमार परे प्रदीप्त वासना
अर्धेक मानवी तुमि अर्धेक कल्पना।" (मानसी)

और दिनकर ने "अंतर्वाणी" को निज "सगुण कल्पना" कहा है।[1] कवि द्वितीय की सृष्टि इसलिए करता है कि यदि वह अकेला होगा तो कौन उसके गीत सुनेगा, कौन नि शब्द रूप से स्मित के द्वारा उसमें प्राणों का संचार करेगा।[2] एकाकी मनु ने इसी भाव को व्यक्त किया था :

---

[1] दिनकर—रसवंती : अंतर्वासिनी, पृ० ६८

[2] कथा छिलो एक तरीते केवल तुमि आमि,
आर अकारणे भेसे केवल भेसे,
त्रिभुवन जानबे ना केउ आमरा तीर्थगामी,

कब तक और अकेले ? कह दो
हे मेरे जीवन बोलो
किसे सुनाऊ कथा ? रहो मत,
अपनी निधि न व्यर्थ खोलो।[1]

कवि-कुमार ने 'रूपराशि' की भूमिका में इसी की पुष्टि की है। "रूपराशि मे एक भावना और है, वह है अन्वेषण की। हृदय में किसी से मिलने की आकांक्षा रहती है। उस समय ऐसा मुझे मालूम होता है, जैसे मैं सांख्य-शास्त्र का पुरुष बन गया हूँ और अपने चारों ओर की प्रत्येक वस्तु लता, कली, लहर, सन्ध्या, पवन, प्रकृति बनकर मेरी प्रेयसी हो रही है। इस भाव में आध्यात्मिक अंश अवश्य है, पर उससे पहले मेरी भावना की तृप्ति है।" अस्तु, आभ्यन्तरिक काव्य मे कवि को तीव्र अनुभूति और आकर्षण का केन्द्र वह मानस प्रतिमा हो जाती है, जो सहचर की भाँति उसके एकाकीपन को दूर करती है। भावना मे वह चाहे लौकिक अथवा अलौकिक हो, उसका आधार सदैव लौकिक होता है, अर्थात् वह संसार में पाये जानेवाले दो लिंगों—पुरुष और नारी—की सीमाओं के अन्दर रहता है, क्योंकि मनुष्य इनके अतिरिक्त लिंगों की कल्पना करने मे असमर्थ है। फल यह होता है कि कवि अपनी अभिन्न प्रतिमा को 'प्रियतम' या 'प्रेयसी' के रूप मे देखता है। जब हमारे अधिकांश कवि पुरुष हैं, तो काव्य-जगत् में प्रेयसी का आधिपत्य होना स्वाभाविक है। श्री शचीन्द्र सेन के शब्दों से इसकी पुष्टि होती है : Man's imagination Finds the greatest delight in woman; there is no shame in it Woman is the picture not of the photographer but of an artist"[2] फलतः आधुनिक हिन्दी-काव्य, विशेषतया छायावादी, में हम जीवन के दुख-दैन्य और अतृप्ति को भुला देना चाहनेवाले कवि को प्रेयसी की मधुर कल्पना मे निरत पाते हैं, और उन्हें निज अनुभूति की अभिव्यक्ति उसी के अवलंब से करते हुए देखते हैं।

अंग्रेजी-साहित्य के अध्ययन का एक फल और हुआ। द्विवेदी-युग में रीति-काल की प्रतिक्रिया-स्वरूप शृंगार के प्रति संकोच और भय की जो भावना उत्पन्न हो गई थी, वह प्रेम के मुक्त चित्रों को देखकर दूर हो गई।

कोथाय जेनेछि कोन देशे से कोन देशे
कूलहारा से समुद्र माँझखाने,
शोनाय गान एकला तोमार काने,
देउयेर मतन भाषा बाँधन हारा,
आमार सेइ रागिणी शुनबे नीरव हेसे।"

रवीन्द्रनाथ ठाकुर—सोनारतरी, निरुद्देश यात्रा

[1] जयशंकरप्रसाद-कामायनी: चिंता पृ० ३६

[2] शचीन्द्र सेन—पोलिटिकल फिलासफी आव रवीन्द्रनाथ

३—भक्ति-युग और रीति-युग की नारी भावना के प्रति विद्रोह- पश्चिमी विचार-धारा के प्रभाव और शिक्षा के प्रसार ने संसार और जीवन के प्रति भारतीय दृष्टि-कोण मे प्रचुर परिवर्तन कर दिया, और वैज्ञानिक आविष्कारों ने धार्मिक अंध-विश्वासों पर गहरी चोट की। आधुनिक युग सन्यास का नहीं रहा है।[1] स्वर्ग और मुक्ति की कल्पना भी मनुष्य को मोहित करने मे अधिक सफल नही होती।[2] माया के प्रति दृष्टिकोण परिवर्तित हो गया है,[3] और ससार के प्रति वैराग्य के स्थान पर आकर्षण दृष्टिगोचर होता है। कवि सुख, सुगंधि और रूप से भरे जीवन को सुन्दर मानता है।[4] प्रसाद के सम्बन्ध मे किसी विद्वान् का कथन 'प्रसाद' "ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या" वाले सिद्धान्त को नहीं मानते। उनकी दृष्टि मे "सर्वं खल्विद ब्रह्म" है। शैवागमो के अनुसार वे "शरीर त्व शभो." के अनुयायी हैं। ईशोपनिषद् के "तेन त्यक्तेन भुजीथा" के अनुसार वे जगत् को ईश का प्रसाद समझकर सप्रेम भोग करना उचित समझते थे। उनकी दृष्टि मे जीवन की सार्थकता माया अथवा

---

१ "तप नही केवल जीवन सत्य" कामायनी : श्रद्धा पृ० ६८)

२ (क) अगर जग से मानव घबराय
कहाँ पर वह बेचारा जाय,
धरा में धँसने से असमर्थ
गगन पर चढ़ने को निरुपाय
प्रार्थना का यदि अवलम्ब
कहाँ है देवों का आवास? (बच्चन – हलाहल, ५१)

(ख) देखिए, अंचल— किरण-बेला : जब मनुज मानव बने, पृ० २२, २३

(ग) आओ प्रिय! भव में भाव विभाव भरें हम,
डूबेंगे नहीं कदापि तरें न तर हम!
कैवल्य काम भी काम, स्वधर्म धरें हम,
संसार-हेतु शत बार सहर्ष मरें हम।
तुम, सुनो प्रेम से, प्रेम गीत मैं गाऊँ।
कह मुक्ति! भला किस लिए तुझे मे पाऊं।
(मैथिलीशरण गुप्त – यशोधरा, पृ० १५०)

३ निराला—परिमल: माया पृ० ७४; मैथिलीशरण गुप्त - साकेत पृ० २०३.

४ "जीवन सुन्दर है, मधुर है, जैसे चाँदनी की हँसी, फूल की सुगंधि, पक्षी का कल रव, नदी की लहर, जो सदैव आगे बढ़ना जानती है, फैलती है, तो जैसे पलक खुल रही है और वह पल भर में संसार का तट छू लेती है। मेरे विचार से जीवन की परिभाषा इससे अधिक क्या हो सकती है। उसमें सुख है, सुगंधि है, रूप है और है ऐसी प्रगतिशीलता, जो अपने से निकलकर सारे संसार को छू लेती है।"
(रामकुमार वर्मा 'जीवन मेरी दृष्टि में', वीणा, दिसम्बर, १९४२)

तत्प्रसूत जगत् के त्याग में नहीं, प्रत्युत उसके आलिंगन करने में है। वास्तव में यह सभी कवियों के सबन्ध में सत्य है [१]। पंत के शक्तिपूर्ण शब्द इसके प्रतिनिधि हैं

"न्योछावर स्वर्ग इसी भू पर,
देवता यहीं मानव शोभन,
अविराम प्रेम की बाहों में
है मुक्ति यहीं जीवन-बधन।" ज्योत्स्ना पृ. ६९.

देश-भक्ति की भावना ने इस प्रकार की भावना के विकास में सहायता की। राम-नरेश त्रिपाठी ने अपने 'पथिक नामक काव्य में इसी भाव का प्रतिपादन किया है।[२] बैराग्य-भावना से मुक्त कवि "स्नेहमूलानि दु खानि" के सिद्धान्त को भी नहीं मानता, और प्रेम को ससार का भव्य भूषण मानता हुआ उसका स्वागत करता है।[३]

इन भावनाओं को लिये हुए कवि प्रेम के मूल आलबन, जीवन के केन्द्र, नारी से विरक्त हो, यह असभव है। भक्तिकालीन भावना के विपरीत हम सुनते हैं

---

[१] (क) परखतु जीवन जौहरी प्रान रत्न जहँ गूढ़।
ता साँचो संसार को कहत असाँचो मूढ़॥
(वियोगीहरि—वीरसतसई : पृ० ६३' ७५.)

(ख) जग है असार सुनती हूँ
मुझको सुख-सार दिखाता।
मेरी आँखों के आगे
सुख का सागर लहराता।
(सुभद्राकुमारी चौहान—त्रिधारा. मेरा जीवन, पृ० ५६.)

(ग) कौन कहता है जगत है दु.खमय
यह सरस संसार सुख का सिन्धु है।
(जयशंकर प्रसाद—झरना. मिलन, पृ० ३५.)

(घ) मुझसे न स्वर्ग की बात करो
प्रिय लगता है ससार मुझे
× × ×
मुझको न मुक्ति की चाह ही,
भव बन्धन अगीकर मुझे।
(गिरिजाशंकर 'गिरीश'. -मदांध: स्वर्ग और संसार पृ० १०२-३)

[२] दूसरा सर्ग, पृ० २२-३०, २०-५४.

[३] क. "प्रेम! वसुधा का भूषण भव्य,
अलौकिक, मूर्तिमान् सुख, शांति।

"तुम्हारे छूने में था प्राण
संग में पावन गंगास्नान'
तुम्हारी वाणी में कल्याणि!
त्रिवेणी की लहरों का गान!"[1]

आधुनिक सौंदर्योपासक कवि की दृष्टि में नारी-रूप गर्ह्य नहीं है। इसके विपरीत नारी की छवि को वह संसार के सौन्दर्य और सुख का मूल कारण मानता है।[2] उसके अनिवार्य आकर्षण में वह घृणा नहीं करता, वरन् आकर्षण को नारी की शक्ति के रूप में देखता है और समीप पहुँचने पर जो मिलता है, वह मादकता की तृप्ति है, पतन नहीं; कल्याण है।[3] इसलिए कवि नारी को भूतल की स्वर्गीय किरण के रूप में देखता है, जिससे यह निस्सार जीवन सरस है।[4] आधुनिक कवि नारी को निर्वाण, या चिरंतन आनन्द-

---

तमोमय मानस के आलोक,
रुचिर प्रेमी नयनों की कांति!"
(बालकृष्ण राव—कौमुदी : प्रेम पृ० ८, १)

ख." दुर्लभ रे वह अमरलोक की सरस सुधा की धार यहाँ,
लहराता लेकिन करुणा का गहरा पारावार यहाँ।
सही मोह भ्रम, मनोमोहनी माया का विस्तार यहाँ,
किन्तु इसी माया के नाम में इन्द्रधनुष रे प्यार यहाँ।"
(गोपालसिंह नैपाली - नीलिमा : जीवन-संगीत, पृ० २९.)

१ पंत—पल्लव : आँसू, पृ० ६५
हरिकृष्ण प्रेमी—जादूगरनी, पृ० ४, ३.
देखिए : पंत—पल्लव पृ० ५४, नारी-रूप पृ० १८

२ तुमने इस सूने पतझड़ में
भर दी हरियाली कितनी
मैंने समझा मादकता है
तृप्ति बन गई वह इतनी।
(जयशंकर प्रसाद—कामायनी : दर्शन पृ० १७०.)

३ पारस मणि! तुमसे छूते ही सोना बन गया लौह जीवन!

४ पियूष मोहिनी के घट से
सहसा थोड़ा सा छलक पड़ा
वह मर्त्यलोक में गिरा, स्वर्ग
रह गया देखता खड़ा खड़ा,
हो गया सुधा का विधिवत् से 'नारी' स्वरूप में परिवर्तन,
तुम भूतल की स्वर्गीय किरण।
(मोहनलाल महतो 'वियोगी'—नारी, विश्वमित्र, नवंबर, १९४३.)

मार्ग की बाधा नहीं वरन् साधिका के रूप मे देखता है।[1] डोर लिए बैठी हुई डाकिनी से रूप में नही, वरन् पथप्रदर्शिका के रूप में देखा है। अस्थिर सुख और दुख-मय क्षणिक जीवन मे जन्म-मरण के तीर पर खेलते हुए जीवन-सगिनी मे ही कवि पीड़ा की भावना दूर करने की सामर्थ्य देखता है।[2] आधुनिक कवि "अवगुन आठ सदा उर रहहीं" कहने के स्थान पर नारी को सद्गुणों की खानि के रूप मे देखा है[3] और उसने उसके हृदय की विभूतियों का विविध प्रकार से गान किया है। उसकी दुर्बलताओ से भी कवि को सहानुभूति ही है।[4] वास्तव में मानवीय दुर्बलताओं के प्रति आधुनिक कवि सहनशील भी है। इसीलिये कवि कैकेयी-आदि की वैसी भर्त्सना नहीं करता और इनके चरित्र को देख व्यापक निष्कर्ष नहीं निकालता जैसा कि तुलसी-आदि भक्त कवियों ने किया था।[5] नारी के असत् रूप को तो आधुनिक कवि क्षणिक विकृति-मात्र के रूप मे देखता है। नारी के प्रति यह उदार सहनशील, सहानुभूतिमय, पूजात्मक दृष्टिकोण स्पष्टत: भक्ति-कालीन घृणात्मक भावना की प्रतिक्रिया है।

इस प्रकार जब आधुनिक कवियो ने वैराग्य-प्रसूत भावना का परित्याग किया, तो रीतिकालीन अति काम-प्रसूत भावना को भी न सह सके। आधुनिक काव्य मूलतः रीतिकालीन अतिशृगारिकता के प्रति विद्रोह है।[6] कवि वास्तव में सत्य और शिव को भूलकर प्राचीन कवियो की एकमात्र सौदर्य की उपासना,[7] वासना-

---

१. देखिए-यशोधरा, कामायनी-आदि ग्रंथ

२. खेल रहे हैं हम तुम दोनों जन्म मरण के तीर।
दोनों जग के बीच खिची है लम्बी एक लकीर।
बहुत पुरानी इस लकीर को
आओ आज मिटा दें ना।
जन्म ज्योति से मृत्यु-तिमिर की
सीमा दूर हटा दो ना।
(नैपाली—नीलिमा : अनुरोध, पृ.४,६.

३ तुम्हारे गुण हैं मेरे गान
मृदुल दुर्बलता, ध्यान, (पंत—पल्लव: नारी-रूप, पृ.२९)

४साकेत; भरत-भक्ति।

५"ब्रजभाषा के कुछ कवियों ने अवश्य ही नारी-रूप-वर्णन में अपनी कलम और सारा जोर लगा दिया है, लेकिन उन्होंने रस में इतना विष घोल दिया है कि उस विषय का हर हिस्सा ही विकृत हो गया। प्रेमी-अभिनन्दन ग्रन्थ),

६ "न सुंदर पर ही भूल अजान
[illegible]" (नरेन्द्र-अभिलाषा पृ ३)

लिप्तता[१] और भारत की दुरवस्था में भी परम्परा-उपासक कवियों के रति-राग[२] से क्षुब्ध हैं वियोगी हरि ने बिहारी के शृंगारिक दोहों के ऊपर ७०० पूर्ण दोहों की रचना की है।[३] वास्तव में जागृति, प्रगति और क्रांति के इस युग में कवि उस 'कामिनी' को देश के पतन का कारण समझता है जो पुरुष को पौरुषी कृत्य करने का अवकाश नहीं देती,[४] और उस कोमलांगी से आकर्षित नहीं है जो वियोगाग्नि से तप्त श्वासों से जलती है; जिसके ताप के कारण सखियाँ जाड़े की रात में भी गीले वस्त्र पहन कर उसके समीप जाती हैं, जिसके ताप से माघ में भी लुए चलती हैं और जिसके कोमल अंग को गुलाब की पँखड़ी खरोंच देती है।[५] रीतिकाल में नारी केवल अभिसारिका; वासक सज्जा, परकीया आदि की रूपरेखाओं में बंधी रही और केलि-गृह की देहली के अंदर योनि-मात्र रह गई।[६] उसने अपना व्यक्तित्व खो दिया। इसपे आधुनिक कवि अत्यंत पीड़ित है।[७] वह 'काम-कारा की बंदिनी' के रूप में नारी को नहीं देख सकता। पुरुष के ऐन्द्रिक जीवन के अतिरिक्त उसके मानसिक जीवन में नारी का क्या मूल्य है, नारी का निजी व्यक्तित्व क्या है सृष्टि के लिए नारी का क्या महत्त्व है, राष्ट्र की

---

[१] मधुर यौवन स्वप्नों में भूल
और फल वैभव के छवि जाल
वासना आसव का कर पान
मनुजता हुई बहुत बेहाल
अचिर अंतर्हित हों सब क्लेश
लिखो कवि ! अमर स्वर्ग संदेश
(दिनकर—रेणुका : कवि, पृ.५२.)

[२] वियोगी हरि—वीरसतसई कविपवन, पृ.७९, ८१.

[३] वही, पृ.८०, ८३.
वही, वीरता और सुकुमारता, पृ ७६, ५९
वही, पराधीन और स्वाधीन, पृ.४८, ९९

[४] देश रसातल जाय किन, हत नित नील बसंत !
इन कर्वान की कामिनी रही लाय उर कंत।
(वीर-सतसई-७ शतक, पृ १००, २२.)

[५] जाय भलें जरि, जरति जो उरध उसासनि देह।
चिरजीवौ नलु, रमतु जो प्रलय अनलु कै गेह॥
होउ गलित वह अंग, गहि लागत कुसुम खरोट।
चिरजीवौ तनु, कहतु जो पुलकि-पुलकि पवि चोट॥
वही ५ शतक . वीरता और सुकुमारता, पृ.७६, ७७.

[६] योनिमात्र रह गई मानवी
निज आत्मा कर अर्पण।
(सुमित्रानंदन पंत—युगवाणी, 'नारी' पृ० ५८)

उन्नति में नारी क्या कर सकती है, यह भी आज का कवि देखना चाहता है। इसलिए आधुनिक काव्य में हम उस सहधर्मिणी को देखते हैं जो जीवन के सभी कार्य-क्षेत्रों में सहयोग, प्रेरणा और अवलंब देती है। आधुनिक कवि नारी-जीवन का प्रथम सत्य प्रेम मानता है, किन्तु वासना नहीं

'गेह में नित्य स्नेह की जयमाल,
वासना की मुक्ति-मुक्ता
त्याग में ताजी।"[1]

इसके अतिरिक्त जिस मातृरूप की एकान्त उपेक्षा रीतिकालीन कवियों ने की थी, उसकी कल्पना आधुनिक कवि की भावना का महत्त्वपूर्ण लक्ष्य है। रत्यनुरागिणी होकर भी जो मातृत्व को नहीं प्राप्त हुई, ऐसी नारी की कल्पना करके रीतिकालीन कवियों ने नारी के प्रति तो अन्याय किया ही, साथ ही सृष्टि के मूलभूत नियमों को भुला दिया। किन्तु आधुनिक कवि की नायिका कहती है :

'मधु सखा मैं अपने वर की
पर क्या पूर्ति वासना भर की,
सावधान निज कुलधर का
जननि मुझको जानो।"[2]

आधुनिक कवि काम-वासना का आदर करता है, इसी दृष्टिकोण से कि वह सृष्टि का मूल है।[3] फलतः जिस प्रकार रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने सती के उन्नत स्तनों में स्वर्ग और देवशिशु मानवेर मातृभूमि" पाई थी, उसी प्रकार हमारा कवि अपावन वासना का त्याग कर कहता है

"मिला लालिमा में लज्जा की
छिपा एक निर्मल संसार
नयनों में निस्सीम व्योम औ
उरोरुहों में सुरसरि धार।[4]

नारी के इसी रूप के सम्मुख तो विधि, जो उसका स्रष्टा है, भी नत हो जाता है, और :

---

[1] सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला गीतिका, गीत २, पृ० २
[2] मैथिलीशरण गुप्त—यशोधरा पृ० १६१.
[3] स्वाभाविक है काम-वासना भी हम सबकी
और नहीं तो सृष्टि नष्ट हो जाती कबकी।
(मैथिलीशरण गुप्त—सैरंध्री पृ० २७).
[4] पंत-पल्लव। अनंग, पृ० ३९।

"तेरे उर का अमृत पान कर
अपनी प्यास बुझाता है।
तू अनन्त बन जाती है, माँ
वह बालक बन जाता है।"[1]

आधुनिक कवि की सौंदर्य-भावना भी बहुत कुछ परिवर्तित हो गई है। सौंदर्य को चेतना का उज्ज्वल वरदान मानते हुए[2] कवि बाह्य सौंदर्य के स्थान पर भाव-सौंदर्य की ओर अधिक झुक गया है और अवयव के सौंदर्य में भी उसने कल्याणकर प्रभावों को पाया है।[3] नारी-रूप के क्षणमात्र के दर्शन से कवि ने नश्वर और असुन्दर जगत को मंगलमय होते देखा है :—

"एक निमिष को यदि, सुन्दरि,
तू राह भूल कर आती है,
अनृत, असुन्दर, अशिव जगत् को
अजर-अमर कर जाती है
जब तू देती दर्शन दान।[4]

आधुनिक कवि सौंदर्योपासक है, प्रवृत्तिपरक है, किन्तु उसके सौंदर्य-प्रेम और कला बुद्धि में रीतिकालीन कवियों की तद्वस्तु से बहुत अन्तर है। रीतिकालीन कवि शरीरी, स्थूल सौन्दर्य से प्रेम करते थे, जो वास्तविक सौंदर्य-प्रेम नहीं कहा जा सकता, और

---

[1] हरिकृष्ण प्रेमी—जादूगरनी, पृ० ६१, १।

[2] उज्ज्वल वरदान चेतना का,
सौन्दर्य जिसे सब कहते हैं। (प्रसाद)

[3] (क) सुन्दरता की सरिता, तेरे
सरस स्नेह में जगस्नात,
पाप ताप अभिशाप शान्त कर
हो जाता मंगल अम्लान।" (प्रेमी-जादूगरनी, ४, ३।)

(ख) अरुणाचल मन मन्दिर की वह
मुग्ध माधुरी नव प्रतिमा,
लगी सिखाने स्नेहमयी सी
सुन्दरता की मृदु महिमा।
उस दिन तो हम जान सके थे,
सुन्दर किसको है कहते।
तब पहिचान सके किसके हित
प्राणी यह दुख सुख सहते।
(जयशंकरप्रसाद—कामायनी, निर्वेद पृ० ११६)

[4] प्रेमी-जादूगरनी, २०, ४।

चमत्कारवादी थे। किन्तु आज का कवि कहता है "मै जीवन में रूप के आकर्षण को कम नहीं समझता। उससे जीवन में जागृति आती है। प्रकृति में जो कुछ भी आकर्षण है, उसकी ओर आँखें उठ जाना स्वाभाविक है। लेकिन आवश्यकता इस बात की है कि रूप का मिशन और आदर्श केवल इन्द्रियों के बाहरी धरातल तक ही न रहे, वरन् इन्द्रियों को पार कर वह आत्मा का तार हिला दे।"[1] इसीलिए आधुनिक कवि की नायिका कल्पना तन की छटा तक सीमित न रहकर भावों का स्पर्श करती है।[2] साथ ही कवि ने नखशिख-वर्णन-प्रणाली में भी भेद कर दिया है,[3] और बरौनी, कटाक्ष, लोचन और अधर की परिभाषाएँ बदल कर वह कहता है :

बरछी बरौनियों से बेधती विमूढ़ बल,
कुटिलों को काटती कटाक्ष की कटारी से
लम्पटों की लालसा लचाती लाल लोचनों से,
अन्त अधमों का करती है ओज आरी से।
देख देह दीप्त दंभियों का दर्प दूर होता,
पातकी परास्त होते पति प्रेम प्यारी से,
तरणि सा तेज नचता है तरुणी का
तब बैरी कौन बचता है बीर नारी से।[4]

आधुनिक कवियों के द्वारा रीतिकालीन नारी-भावना त्याग करने का कारण पश्चिमी संसर्ग और मानवतावादी बुद्धि तो थी ही, साथ ही देश की आर्थिक परिस्थिति भी थी। जब सौन्दर्य का आदर्श निश्चित करना उच्च वर्ग के हाथ में रहता तो, स्थूल सौंदर्य ही प्रधान हो जाता है, उसके अतर्गत शिव और सत्य का स्थान हीन हो जाता है। तब आदर्श होता है कलामात्र का, कला केवल सौंदर्य के लिए। इसका एकमात्र कारण है संपत्तिमत्तता। सपत्ति और भौतिक सुखावेश के काल में मनुष्य एक नशे में रहता है, इसलिए सुंदर के साथ शिव और सत्य का ध्यान उसे नही रहता। रीतिकाल के काव्य की सौंदर्य-भावना भी इन्हीं सीमाओं मे बँधी है। उन कवियो ने नारी के सौदर्य-मात्र को

---

[1] रामकुमार वर्मा—जीवन मेरी दृष्टि में, वीणा, दिसम्बर, १९४२।

[2] सुकल्पना सी तन की छटा लिए,
सुबुद्धि में है प्रकटी सरस्वती।
विलासिनी है, अति मंद हासिनी,
क्षमा दया मय जननी वसुन्धरा।
अपूर्व है मोहक रूप की छटा,
नहीं कहीं है उसकी समानता।

(आनन्दकुमार—सारिका · "नायिका" पृ० ३८)

[3] हरिऔध-कल्पलता : "कुल-ललना" पृ० १११-११३

देखा सौंदर्य-मात्र की दृष्टि से। किन्तु आधुनिक भारत उतना धनी नहीं है, बल्कि दरिद्र है और साथ ही अधिक व्यस्त भी—रीतिकालीन व्यक्ति मानसिक दृष्टि से पीड़ित नहीं था। आज का भारतीय अत्यंत क्लिष्ट जीवन में है, मानसिक पीड़ा से ग्रस्त है। फलतः धन, अवकाश और मानसिक शांति के अभाव में नारी-भावना विलासिता से प्रेरित नहीं हो सकती, सियारामशरण गुप्त की 'अमृत' नामक कविता से यह स्पष्ट है। कवि कहता है —

ठहर अप्सरे ठहर किन्तु तू,
रहने दे भ्रू-भंग,
अमर-भूमि हित ही रहने दे
यह सब क्रीड़ा रंग।
अवसर कहाँ, निकट जो तेरे,
रहें अलस घर बैठ,
अमृत अभी लेना है हमको,
गहरे तल में पैठ।[1]

कवि सत्य और शिव के प्रति आँखे नहीं मींच सकता। नारी मे वह शांतिप्रद शीतलता, जग-कल्याण की शक्ति खोजने को मजबूर है, यों तो सुख की खोज सामंत-युग के कवि और आधुनिक युग के कवि, दोनों की नारी-भावना की प्रमुख प्रेरणा है, किन्तु प्रथम की खोज उस धनिक की है, जो धन को बहाने का आनंद लेता है और अपने अहं के कारण नारी तक को सस्ता गिनता है। और द्वितीय, भारतके आर्थिक दारिद्र्य में जन्म लेनेवाले कवि की सुखाकांक्षा थके-माँदे श्रमिक की सी है। इन्हीं कारणों से रीतिकालीन नारी-भावना वस्तुवादिनी (Concrete) है और आधुनिक विशेषता छायावादी काव्य की दार्शनिक (Metaphysical) और इसलिए वायवी और आदर्शवादी।

इस प्रकार आधुनिक कवि ने भक्तिकाल की घृणात्मक और रीतिकाल की ऐंद्रिक नारी-भावना का अंत करके एक उदार और पूजात्मक भावना की स्थापना की। किन्तु यह पूजात्मक भावना यूरोप की नाइट युग (१२००-१५००) में प्रसारित होनेवाली पूजात्मक भावना से बहुत भिन्न और उच्च कोटि की है। यूरोप में फ्यूडल भावना का अंततो अवश्य हुआ, परन्तु प्रेयसी(Lady) के प्रति नाइट के प्रेम को आवेशपूर्ण (passionate) ढंग से व्यक्त करते हुए कवि प्रेम के व्यापक स्वरूप नारी में विश्वप्रेम के भाव को न देख सके, एक नाइट के लिये वह सौंदर्य-प्रतिमा प्रेरणात्मक शक्ति होकर संपूर्ण विश्व और शाश्वत जीवन मे अपना मूल्य स्थिर न कर पाई।

४. रवीन्द्रनाथ ठाकुर का प्रभाव :—जिस प्रकार हिन्दी-साहित्यगत नारी-भावना के परिवर्तन में प्राचीन संस्कृत-साहित्य तथा अंग्रेजी-साहित्य ने योग दिया, उसी प्रकार बंगाली कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी दिया। वास्तव में नारी-भावना को शुचिता, पाव-

---

[1] दूर्वादल, पृ० ६१-६२।

नता, अभौतिकता और दार्शनिकता प्रदान करने का अधिकाश श्रेय रवीन्द्रनाथ ठाकुर को ही है।

यों तो रवीन्द्रनाथ ठाकुर १६ वीं श० के उत्तरार्ध में ही उन भावनाओं का विकास अपनी रचनाओ में कर चुके थे, जिनका प्रारंभ हिन्दी-काव्य में २० वीं श० के १८-१६ वर्ष पश्चात् हुआ, किन्तु उनकी ख्याति का कारण 'गीताजलि' (१६१०) हुई। उसके पश्चात् हमारे कवि बगाल के इस महान् कवि की ओर आकृष्ट हुये।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर का प्रभाव दो मार्गों से पड़ा :—१. उनके काव्य से, २ उनके नारी-सबधी निबधो से। रवीन्द्र के काव्य का बहुत सा अश नारी, नारी सौंदर्य और नारी सृष्टि से सबध रखता है। उनकी नारी भावना का मूलाधार है सासारिक सुखोपभोग, किन्तु वह ऐंद्रिक वासना से मुक्त है। यही उसकी विशेषता है। 'साध्यगीत' से लेकर 'चैताली' तक की समस्त रचनाओं में तरुण कवि की सासारिक सुखोपभोग की उत्कट आकाक्षा ध्वनित हुई है। कडि ओ कोमल' में तो गीतों का मध्यबिन्दु ही प्रेयसी है। 'कडि ओ कोमल' से 'चैताली' तक की रचनाओं मे यौवन के विचित्र स्वप्नों प्रेम, प्रकृति, नारी-सौंदर्य, रहस्य आदि सभी मे कवि की कल्पना नृत्य करती है। नारी सौंदर्य कवि की दृष्टि में तुच्छ नहीं है। 'चैताली' की 'प्रिया' नामक कविता मे कवि कहता है :

"नील आकाश से लागितकि भालो,
जदि ना पड़ित मने तव मुख आलो।"

रवींद्र की दृष्टि मे नारी रूप परम रमणीय है और साथ ही उपभोग्य। कवि ने यौवन की आकांक्षाओं को दबाने का प्रयत्न नहीं किया है। 'स्तन' 'चुबन 'विवसना' 'मानस सुन्दरी' आदि कविताओं से यह स्पष्ट है। किन्तु रवीन्द्र का महत्त्व इसी में है कि वाह्य दृष्टि से जो कविताये नग्न विलासितापूर्ण लगती हैं, यह यौनाकर्षण की अपेक्षा भावाकर्षण से युक्त हैं। भावना मूलतः पवित्र है और कल्पना भौतिक न होकर सरल हृदय की सात्विक उड़ान है। भावना की गहराई और अनुभूति की तीव्रता ने रवीन्द्र की नारी भावना को दार्शनिक रग प्रदान किया जो 'चित्रा" 'उर्वशी' 'दुइ नारी' 'मानसी' 'प्रेमेर अभिषेक' आदि कविताओं में स्पष्ट है।

आधुनिक कवियों पर रवीन्द्र के काव्य की स्पष्ट छाप दिखाई पड़ती है। निराला ने 'दुई नारी' के आधार पर अपना 'कला और नारी' नामक निबध लिखा, 'चित्रा' का प्रभाव इलाचंद्र जोशी की 'विजनवती' पर देखा जाता है, रवीन्द्र की उर्वशी की रूप-रेखा को अनेक कवियों ने ग्रहण किया है। उदाहरणार्थ पंत 'उर्वशी' की इन पक्तियों :

"द्विधाय जड़ित पदे, कम्पवक्षे, नम्र नेत्रपाते
स्मित हास्ये नाहि चल, सलाज्जीत बासर शय्याते स्तब्धराते"

से प्रेरणा ग्रहण करके 'भावी पत्नी के प्रति' लिखते हैं :—

"अरे वह प्रथम मिलन अज्ञात

सशंकित उत्प्रेक्षना सी चुप चाप
अंकित पद नमित पलक दृग्गात
पास जब आ न सकोगी प्राण''

छायावादी कवियो ने अपनी प्रिया-भावना तथा मातृ-भावना मे बहुत-कुछ, रवीन्द्रनाथ के काव्य से पाया, फिर भी वे उस उच्चता और विशुद्धता को प्राप्त कर सके, यह सदिग्ध है।

रवीन्द्र नारी-समस्या के प्रति अत्यधिक आकृष्ट थे, इसका दूसरा प्रमाण उनके अनेक तत्सबधी निबध हैं। रवींद्र की नारी-भावना को व्यक्त करनेवाले निबधों मे उल्लेखनीय हैं. 'दि इडियन आइडियल आव मैरिज' (कीसरलिंग कृत दि बुक आव मैरिज) 'वुमन' (रवीन्द्रनाथ ठाकुर-कृत परसनैलिटी), तथा 'नारी और मानव सभ्यता' (सरस्वती अगस्त १६४३) 'स्त्री-पुरुष' (विचित्र प्रबध) आदि। इनमे हम प्रस्तुत भावनाओ का विकास देखते हैं। नारी विधाता की कलात्मक कृति है। वह पुरुष के असयमित व्यवहारों को लय प्रदान करती है। उसकी सबसे बड़ी विभूति तथा शक्ति है प्रेम जिससे वह पुरुष-स्वभाव के पाशविक तत्त्वों को नम्र करने में समर्थ होती है। जीवन के सचय और पोषण के लिए, व्रणों पर शीतल लेप के समान नारी का साहचर्य अनिवार्य है। उसे ईश्वर ने प्रत्येक पुरुष के साथ पुरुष की रक्षा के हेतु भेजा है। पुरुष अपूर्ण है, इस कारण वह कल्पित अज्ञात की खोज में लगा रहता है। इसके विपरीत प्रेममयी नारी पूर्ण है, पूर्ति के लिए उसे भटकना नहीं पड़ता। जीवन मे उसका स्थान निश्चित है, उसे बनाना नहीं पड़ता। जैसे वृक्षो की शाखाओं मे आप ही फल-फूल आदि लग जाते हैं, वैसे ही भारत की स्त्रियो को अपने आप ही काम मिल जाया करते हैं। जब से स्त्रियाँ प्रेम करना शुरू करती हैं, तभी से उनका कर्तव्य शुरू हो जाता है। उसी समय उनका चित्त विकसित होता है। उनकी चिन्ता, विचार, युक्ति, कार्य आदि के प्रारभ होने का वही समय है। और प्रेम के सबल को ले वह अनुकूल अथवा विपरीत परिस्थितियों में 'सामाजिक व्यवहार' बहुत बड़े परिवार-सहित अपनी गृहस्थी और पति नाम के एक न चल सकनेवाले बोझ को लेकर चलती है।" प्रेम नारी के समस्त बंधनों को खोल देता है और इसी लिए उसे अपनी परिस्थितियों से असतोष नहीं होता। इसके अतिरिक्त मानवता की जो सबसे बड़ी शक्ति है, सृजन-सामर्थ्य, वह नारी में है। शिशु-रचना कर वह गृह का निर्माण करती है, जो महाकाव्यों और साम्राज्यों की रचना से किसी प्रकार हीन नहीं है, क्योंकि उसमें बुद्धि, चातुर्य, त्याग और सयम की आवश्यकता होती है।

रवीन्द्र नारी का कार्य-क्षेत्र, विकास-स्थान, गृह मानते हैं। यदि स्त्री और पुरुष का कर्मक्षेत्र एक ही हो जायगा तो संसार और जीवन आकर्षणहीन एकपन हो जायगा। आधुनिक युग में जो स्वतत्रता और अधिकारों के लिए विद्रोह है, रवीन्द्र की दृष्टि में श्रेयस्कर नहीं है। उनके मत में समाज के निर्माण में नारी का कार्य एक कलाकार का है, शिल्पी का नहीं। इतना अवश्य है कि स्त्रियों का विद्रोह उनके प्रति दुर्व्यवहार और उत्पीड़न का सूचक है। रवीन्द्र नारी के दमन और पीड़न के घोर विरुद्ध हैं, क्योंकि एकमात्र पुरुष की कृति होकर कोई सभ्यता चिरकाल तक नहीं रह सकती, उसका पतन अनिवार्य है।

हृदय की विभूतियों से सपन्न नारी अपने उस गुण का विकास करती है, जिसे 'आकर्षण' (Charm) कहते हैं, जिसे भारत में शक्ति नाम दिया गया है। शरीर को लेकर वह पुरुष की महत्त्वाकांक्षाओं को प्रेरणा देती है। यदि नारी पुरुष के मस्तिष्क को प्रेरणा न दे तो पुरुष सभ्यता की उच्चतम कृतियों का कर्ता न हो सके। श्रमिक की तपस्या, वीर के शौर्य और कलाकार की कृति सबके पीछे नारी प्रेरणा मिलती है। किन्तु स्वार्थवश पुरुष ने नारी की इस आनददायिनी शक्ति का उपयोग व्यक्तिगत सुख के लिए किया है और निजी सपत्ति के समान बनाकर उसे भ्रष्ट कर दिया है। इससे स्वय नारी को अपनी ही शक्ति का अनुभव करने में कठिनाई होती है। नारी की स्वतत्रता वहीं है, जहाँ वह अपनी शक्ति का पूर्ण विकास कर सके, और वह गृह का परित्याग करके नहीं प्राप्त हो सकती।

रवीन्द्र की उल्लिखित भावनाओं का पूर्ण विकास हम आधुनिक कवियों विशेषतया छायावादी, मे पाते हैं। यह तो नही कहा जा सकता कि हमारे कवियों ने, रवीन्द्र से ही यह भावनाये ग्रहण कीं, किन्तु इतना निश्चित है कि ज्ञात अथवा अज्ञात रूप से वह इस बगला-कवि से प्रभावित होते रहे हैं।

५. समाज-सुधार की लहर का प्रभाव : १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में समाज-सुधार में सलग्न विविध शक्तियों ने भारतीय स्त्री की दशा को सुधारने के लिए बहुत अधिक प्रयत्न किया था। २० वीं शताब्दी में भी वे प्रयत्न कम नहीं हुए, वरन अधिक व्यापक और शक्तिशाली हो गए। अब देशी राज्य भी इस क्षेत्र मे अपना सहयोग देने लगे। बाल-विवाह के शाप को दूर करने के लिए बड़ौदा के सस्कृत-बुद्धि महाराज सयाजी राव गायकवाड ने १९०१ में शिशु-विवाह-निषेध के लिए एक एक्ट पास किया, जिसके द्वारा विवाह की लघुतम वयस लड़कियों के लिए १२ वर्ष तथा लड़कों के लिए १६ वर्ष निश्चित की गई। १९२८ में 'एज आव कसेंट कमिटी' की बैठक विवाह-सुधार के प्रश्न पर विचार करने के लिए शिमला में हुई। इसकी रिपोर्ट निकलने के पश्चात् रायसाहब हर बिलास सारदा के प्रयत्नों के फल-स्वरूप १९३० मे शारदा-बिल पास हुआ, जिसके द्वारा लड़कियों की विवाहवय १४ और लड़कों की १८ निश्चित कर दी गई। इस एक्ट के विरुद्ध प्रचुर आदोलन हुआ, किन्तु व्यावहारिक क्षेत्र मे इसे अधिक सफलता मिली। विधवा-विवाह-प्रचारके सम्बन्ध में भी कुछ उन्नति हुई। मैसूर के महारानी स्कूल, आर्य-समाज, पजाब की प्यूरिटी सोसाइटी (Purity Society) लखनऊ की हिन्दू विडोरिफार्म लीग (Hindu Widow Reform League) ने विधवाओं के भाग्य को अच्छा करने के उल्लेखनीय प्रयत्न किए हैं। किन्तु विधवा-विवाह हिन्दू-समाज मे अभी तक भी लोकप्रिय न हो सका है।

प्राचीन काल से चली आती हुई देवदासी-प्रथा को दूर करना २० वीं शताब्दी की ही विशेषता है। इस ओर मिशनरियों तथा ब्रह्म समाज ने थोड़ा प्रयत्न किया था। १९०८ में बबई-सरकार ने एक विधान बनाया, जिसके अनुसार मन्दिर के वे अधिकारी, जो देवताओं के लिए स्त्रियों के समर्पण में योग दें, कानूनी रीति से दंड के भागी बना दिए गए।

डा० मुथुलक्ष्मी रेड्डी आदि के भगीरथ प्रयत्न के फलस्वरूप, पीनल कोड के वह नियम, जो नाबालिग व्यवसाय को अपराध निश्चित् करते हैं, देवदासियों पर भी लागू किए गए।

स्त्री-शिक्षा के सम्बन्ध मे विशेष प्रयत्न इस शताब्दी में हुए। १९१६ में कार्वे ने पूना में विमेंस यूनिवर्सिटी की स्थापना की। स्त्रियों की आम शिक्षा-प्रचार के लिए महत्त्वपूर्ण प्रयत्न किए गए। प्रजातन्त्रवादी विचारों के फैलने से व्यक्तियों की असमानता का भाव नष्ट हो रहा था। प्रत्येक क्षेत्र में स्त्री-पुरुष की समानता का प्रतिपादन किया जाने लगा और स्त्रियों के शिक्षित होने की आवश्यकता तीव्र ढग से अनुभव की गई। स्त्री-शिक्षा-प्रचार का फल स्कूल जानेवाली लड़कियों की सख्या में वृद्धि से स्पष्ट हो जाता है। जब कि १९१७ में स्कूली लड़कियों की सख्या १२३०००० थी, १९३७ मे २८६०००० पर पहुँच गई।

२० वीं शताब्दी की सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता तो यह है कि स्वय स्त्रियाँ अपनी दशा सुधारने के लिए उत्साह के साथ अग्रसर हुईं। इस उत्साह का प्रथम फल विमेंस इडियन एसोसिएशन थे, जो अनेक स्थानो पर स्थापित किए गए। मद्रास में १९१७ में इसकी स्थापना हुई। इसकी सभानेत्री मिसिज एनी बेसेंट थीं। और सबसे बड़ा फल अखिल भारतीय स्त्री-सभा (All India Womens Conference) थी जिसकी प्रथम बैठक अक्टूबर १९२६ में हुई, जिसकी प्रथम सभानेत्री बडौदा की महारानी चिमना बाई थीं।

इन देशव्यापी आदोलनों की प्रतिध्वनि हमारे आधुनिक काव्य में मिलती है। राय देवीप्रसाद पूर्ण से हम सुनते हैं :

"नारी के सुधारे देश जग में प्रसिद्ध होत,
नारी के सवारे होत सिद्ध धन बल है।
शोभा गेह-गेह की है सीमा सुचि नेह की है,
दाता नर देह की है सपदा की थल है।
कैसे हे ! भरतखंड हो गयो उबार तेरो,
दुखित अखंड आमें नारिन को दल हैं।
ह्वै के गुन बालक अनस बन जानै यही,
नारी बस बालक बनावन की कल है।"

सुधार-आन्दोलन का प्रभाव ३ रूपों में काव्यगत नारी भावना पर पड़ा।

१ अ--सामान्य भारतीय नारी की सामाजिक दुरवस्था, उसकी अशिक्षा, अधकार-ग्रस्तता पर दृष्टिपात।

आ—नारी के उन विशिष्ट रूपों से सहानुभूति, जो समाज में पतित और घृणित समझे जाते हैं, किन्तु मूलत पुरुष की कामवासना के फल हैं।

२—भारत की प्राचीन आदर्श नारियों को सामने रखकर अँधेरे में पड़ी नारी को निजी व्यक्तित्व और शक्तियों से परिचित कराने तथा क्षमता पर विश्वास दिलाने का प्रयत्न।

३—इन दोनों के फलस्वरूप नारी-स्वातंत्र्य की भावना का विकास। समाज-

सुधार की भावना ने 'मानवी' को जन्म दिया और मानवतावादी दृष्टिकोण का विकास किया।

४—स्त्री-आंदोलन का प्रभाव—सुधारवादी आंदोलन नारी-समस्या सम्बन्धी बाह्य प्रयत्न थे, जिन्होंने स्त्री-आंदोलन के रूप में स्त्रियों के निजी प्रयत्न को प्रेरणा दी मूलतः स्त्री आंदोलन का प्रारम्भ पश्चिम में हुआ था। यों तो उसका सूत्रपात फ्रांस की राज्य-क्रांति के दिवसों में हो गया था, जब Les roits de la temme ने स्त्री-पुरुष की समानता के लिए आवाज़ उठाई थी, किन्तु विशेष शक्ति और व्यापकता इसने १९वीं शताब्दी में पाई, जब इंगलैंड में विलियम थामसन ने 'एपीलि आव दि प्रिटेंशन्स आव दि वन हाफ आव दि ह्युमेन रेस, विमन, अगेन्स्ट दि प्रिटेंशन्स आव दि अदर हाफ मैन Appeal of the Pretensions of the One Half of the HumanRace Women against the Pretensions of the other Half Men (१८२५) और जान स्टुअर्ट मिल ने 'दि सब्जैक्शन आव विमन, (१८६१) की रचना करके स्त्रियों के हक़ों की वकालत की। २०वीं शताब्दी के आरंभ में यह आन्दोलन विशेष रूप से सजग हो गया। १९१४ के महायुद्ध ने स्त्रियों के मूल्य को बढ़ा दिया। इंगलैंड और यू. एस. ए. की सरकारों ने युद्ध को जीतने के लिए स्त्रियों को वोटाधिकार देना अनिवार्य समझा। सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण और आँख खोलनेवाला कदम सोवियट रूस का था जिसने १९१७ में सभी सामाजिक कार्य-क्षेत्रों में स्त्री-पुरुष की समानता प्रतिपादित की।

पश्चिम की इस लहर का प्रभाव अनिवार्य रूप से भारत पर भी पड़ा। किन्तु भारत का स्त्री-आंदोलन कई अंशों में पश्चिमी आंदोलन से भिन्न था। यह पुरुष-जाति के विरुद्ध हिंसात्मक विद्रोह न था। श्रीमती चट्टोपाध्याय के शब्दों में "यह एक नई स्थिति या नई प्रथा की स्थापना का नहीं, बल्कि किसी कदर अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को ही पुनः प्राप्त करने और अमल में लाने का प्रयत्न है। यद्यपि है यह एक भिन्न इच्छा और प्रयत्न के साथ, अर्थात् आधुनिक स्थितियों के अनुसार उसे बनाने का। .. न तो प्रतिस्पर्धा के भाव से यह उठा है, न इसमें हिंसा का ही प्रयोग हुआ है।" साथ ही भारतीय नारी को पुरुष नेताओं का पूर्ण सहयोग मिला, जब कि इंगलैंड में अत्यन्त विरोध स्त्रियों को मिला था। नेताओं के सहयोग को पाकर सर्व प्रथम रमाबाई रानाडे, सरलादेवी चौधरानी, सरोजिनी नायडू, आदि ने राजनैतिक अधिकारों की माँग की। जब मिसिज ऐनी बेसेंट ने भारतीय राजनीति में पदार्पण किया और होम रूल आंदोलन उठाया (१९१४ तब भारतीय स्त्री-आंदोलन का संगठित रूप व्यक्त हुआ। १९१७ में लार्ड माटेगु के पास मिसिज़ नायडू के नेतृत्व में एक डेपूटेशन गया, जिसमें स्त्रियों के लिए वोटाधिकार और (Local Government) तथा (Legislative Franchise Rules) समानाधिकार की गई। लीग तथा कांग्रेस ने इसमें पूर्ण सहयोग दिया। परिणामतः सुधारों के नियम इस ढंग से बनाए गए जिसमें पहले तो स्त्रियों को मताधिकार के अयोग्य रक्खा गया, किन्तु अंतिम निर्णय प्रांतीय सरकारों पर छोड़ दिया गया। भारत के विभिन्न प्रान्तों ने स्त्रियों को मताधिकार प्रदान किया। अग्रणी मद्रास था (१९२१) इसको देखते हुए श्रीमती मार्गेरेट ई० कजिन्स लिखती हैं

"Britishers were just ignorant about the regard which the Indian manhood holds the womanhood "नारी-आंदोलन की बिखरी हुई शक्तियों का समीकरण करने का प्रयत्न पूना की प्रथम अखिल भारतीय स्त्री-सभा (१९२७) में किया गया। तब से यह सभा निरन्तर नारी के अधिकारों आदि के निर्णय में प्रयत्नशील रही है।

नारी-आंदोलन में निहित समानता और स्वतंत्रता के दो प्रकार के प्रभाव हमारे आधुनिक काव्य पर हुए। एक स्वर तो उन कवियों का था, जो नारी को उत्थित और प्रसन्न देखना चाहते हुए भी स्वतन्त्रता और समानता को उसका अभिशाप मानते हैं।[1] और दूसरा स्वर उन कवियों का था, जो नारी को अधिकार युक्त, और मुक्त देखना चाहते हैं, जिसकी प्रतिध्वनि पंत करते हैं .

"योनि नहीं है रे यह भी है मानवी प्रतिष्ठित,
उसे पूर्ण स्वाधीन करो वह रहे न नर पर अवसित।
द्वंद्व क्षुधित मानव-समाज पशु जग से भी है गर्हित,
नर-नारी के सहज सूक्ष्म वृत्ति हों विकसित।"[2]

७. इंडियन नेशनल कांग्रेस और राष्ट्रीय आंदोलन का प्रभाव : १८८५ में इंडियन कांग्रेस की स्थापना हुई थी। भारतीय स्त्रियों की गिरी हुई दशा को सुधारना, राजनैतिक क्षेत्र में उन्हें अग्रसर करना, उनके समान अधिकारों के लिए आवाज़ उठाना कांग्रेस का प्रमुख ध्येय रहा, क्योंकि नेताओं ने अनुभव किया कि एक अर्द्धांग के अविकसित रहते हुए दूसरा अर्द्धांग परिपुष्ट नहीं हो सकता। राष्ट्र की उन्नति स्त्री और पुरुष की सामूहिक उन्नति और दोनों के सम-प्रयत्न से ही सम्भव है। लाला लाजपतराय ने कहा था "स्त्रियों का प्रश्न पुरुषों का प्रश्न है। क्योंकि दोनों का एक दूसरे पर असर पड़ता है। चाहे भूतकाल हो या भविष्य, पुरुषों की उन्नति बहुत-कुछ स्त्रियों की उन्नति पर निर्भर है। .....उन स्त्रियों से आप निश्चय ही वास्तविक नर पैदा करने की आशा नहीं कर सकते जो कि गुलामी की जंजीरों से जकड़ी हुई हैं और प्राय. सभी बातों में पराश्रित हैं।..... इस लिए पुरुषों से मैं कहता हूँ कि तुम स्त्रियों को अपने दासत्व से पूर्णतः मुक्त होने दो, उन्हें अपने बराबर समझो।" इस ओर विशेष रूप से आकर्षित गांधी हुए। उन्होंने युगों की वन्दिनी को स्वास्थ्य का झोंका दिया। उन्होंने घोषणा की "स्त्री-पुरुष की सहगामिनी है। वह बुद्धि में पुरुष से तुच्छ नहीं है। उसे पुरुष के छोटे-छोटे कामों में भाग लेने का अधिकार है। उसे पुरुष की भाँति स्वाधीनता और स्वतन्त्रता पाने का अधिकार

---

[1] देखिए —अयोध्यासिंह उपाध्याय, कल्पलता · मनोवेदना, पृ ९६
शिवरत्न शुक्ल, भरत-भक्ति—१२ सर्ग, पृ. २६५-२७८
बेदीलाल-"स्वतंत्रवनिता-विलास"

[2] प्राग्या—'नारी', पृ. ८५

[3] जवाहरलाल नेहरू हिन्दुस्तान की समस्यायें, पृ. २१९

है।" फलस्वरूप कांग्रेस के राष्ट्रीय आंदोलन में भारतीय नारी कूद पड़ी। सविनय अवज्ञा-आंदोलन में भारतीय नारी ने सक्रिय भाग लिया और पुरुषों के साथ-साथ देश की स्वतंत्रता के लिए युद्ध किया। १९३० के आंदोलन ने भारतीय नारी की परिस्थितियों में बहुत कुछ अंतर कर दिया। श्रीमती कृष्णा हठीसिंह इस सम्बन्ध में लिखती हैं : "यद्यपि अभी तक भारतीय राजनीति में स्त्रियों ने सक्रिय भाग नहीं लिया था, किन्तु अब एक आकस्मिक जागृति उनमें फैल गई। घरों की छाया को त्याग कर वे बिल्कुल आगे आ गईं और उन्होंने सहज रीति से आन्दोलन को अपना लिया, मानों वह कोई विचित्रता ही न थी। उस समय आन्दोलन, समस्त नेताओं के बन्दीगृह में होने के कारण ह्रास की ओर अग्रसर हो रहा था, किन्तु स्त्रियों ने आकर उसे सँभाल लिया। प्रतिदिन, नित्यप्रति बढ़नेवाली संख्याओं में स्त्रियाँ कांग्रेस की मेम्बर बन रही थीं। उन्होंने न केवल ब्रिटिश सरकार को, जो इस प्रकार के अप्रत्याशित साहस के लिए तैयार न थी, आश्चर्य में डाल दिया, वरन् भारतीय पुरुषवर्ग को भी आश्चर्यान्वित कर दिया।" (विमन इन इंडियन पोलिटिक्स)।

नारी के प्रति कांग्रेस के रुख और राष्ट्रीय आन्दोलन में नारी के भाग लेने का प्रभाव आधुनिक काव्य पर भी पड़ा। कवि ने नारी को 'सबला' के रूप में देखा और राष्ट्र के उद्धार के लिए उसे पुकारा। उसकी भावना का केन्द्र १५ कोटि असहयोगिनियाँ हो गईं और उसने नारी से कहा :

"आज नवयुग का तरुण त्योहार द्रोही पर्व आया,
क्या करेगी प्यार केवल प्यार मेरी मुग्ध काया।
आज जीवन औ मरण के बीच तुम अब सेतु बन कर,
दो मुझे तूफ़ान अगले झेलने का शौर्य जय कर।
रागिनी सी कामिनी तुम क्रांति के नव स्वर निकालो,
छोड़ कर जादूगरी संघर्ष के वे दिन सँभालो।[१]

इस प्रकार हम देखते हैं कि लगभग एक ही दिशा में बहनेवाली युग की विविध प्रेरणाओं ने हिन्दी-काव्य की नारी-भावना को नए साँचे में ढाला। सभी ने समवेत रूप से परिवर्तन उपस्थित किया, किसी एक ने कब और कहाँ प्रभाव डाला, यह छाँट लेना कठिन है।

उल्लिखित प्रभावों का फल यह हुआ कि कवि आदर्शवाद का सबल लेकर सांस्कृतिक दृष्टिकोण लिये हुए जीर्ण-शीर्ण परंपरागत अवांछित भावना का परित्याग कर नवयुग का सन्देश लेकर आगे बढ़े। उनका दृष्टिकोण उदार और व्यापक हो गया। नारी कवि की दृष्टि में पोस्टमार्टम करने योग्य शरीरमात्र नहीं रह गई, वरन् सचेतन, गतिशील, भावमयी और व्यक्तित्वधारिणी होकर आई।

---

१ अंचल—"लाल चूनर": नारी, पृ० ३८-९

अध्याय २

संक्रांति-युग (सन् १६००-१६२० ई०)

भूमिका में हम देख चुके हैं कि १६ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध मे समाज-सुधार की प्रेरणा से कुछ कवियों ने स्त्री-पुरुष की समानता की भावना का प्रतिपादन प्रारभ किया था। सन् १६००-१६२० के काल में नारी-भावना नवीनता की ओर निश्चित गति से अग्रसर होती है। किन्तु इस युग में भी परिवर्त्तन एक दम और सर्वव्यापी नहीं होता है, मध्ययुगीय नारी-भावना की धारा भी कुछ काल तक प्रचुर शक्ति के साथ प्रवाहित रहती है। यह युग एक सेतु के समान है, जो नारी-भावना के प्राचीन और आधुनिक दो कूलों को जोड़ता है। इस युग का महत्त्व इसी विशेषता में निहित है।

भारतीय मस्तिष्क अपनी प्राचीन परंपराओं को छोड़ने में प्रायः अनुदार (conservative) रहा है। यही कारण है कि २०वी शताब्दी में भी जब कि देश में प्रचुर राष्ट्रीय जागृति हो गई थी और देश की राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियाँ बदल रही थीं कुछ कवि अपनी पुरानी भावनाओं में ही लीन थे। नवीन प्रभावों की उपेक्षा करके वे मध्ययुगीय ढग के काव्य की रचना करते रहे। फलतः हम एक ओर तो भक्तिकाव्य की परंपरा में आनेवाला रामकृष्ण-सम्बन्धी काव्य पाते हैं और दूसरी ओर रीति-काव्य की परपरा में आनेवाला शृगार-काव्य।

रामकृष्ण-सम्बन्धी काव्य मे प्राय. मध्ययुगीय काव्य में व्यक्त किए गए भावों का ही पिष्टपेषण है। भक्ति के सभी ग्रन्थों में तो कवियों का नारी सम्बन्धी दृष्टिकोण व्यक्त नहीं हुआ है। जहां हुआ है, वहाँ कोई मौलिकता या नवीनता नहीं मिलती। उदाहरणार्थ रामचरित उपाध्याय-कृत 'रामचरित चिन्तामणि' में हम देखते हैं कि कवि उसी घृणात्मक नारी-भावना का प्रतिपादन कर रहा है, जिसको स्मृतियों और पुराणों के प्रभाव से हम तुलसी आदि के काव्य मे पा चुके हैं। तुलसी के शब्दों की प्रतिध्वनि करता हुआ-सा कवि कैकेयी के सम्बन्ध में कहता है 'दुर्निवार है अबलाओं की माया।'[1] कैकेयी को लेकर कवि ने स्मृतियों के प्रभाव से प्रचलित सिद्धान्तों की पुनिरुक्ति की है।[2] तुलसी के समान ही यह कवि स्त्रियों

---

[1] रामचरित-चिन्तामणि : ५ वां सर्ग, पृ० ५९, ४१

[2] अनृत, साहस, छद्म, प्रगल्भता,
अदयता, अविवेक, अशौचता।
यदि न ये अबला उर में रहे,
फिर उसे कवि निन्दित क्यों कहे॥

को स्वतन्त्रता नहीं देना चाहता।[1] यह कवि तुलसी से भी एक पग आगे बढ़ गया है; जब उसके राम सीता-जैसी नारी की भी उपेक्षा करते हैं। युद्धान्त में विभीषण-द्वारा लाई गई सीता से राम कहते हैं :

संसार में मुझको न कोई भीरु समझे, इसलिए
मैंने किया रण, तुम बताओ स्मित-बदन हो किस लिए ?
होकर कलङ्कित मैं बहूँ क्यों ? राम मेरा नाम है,
चाहो जहाँ जावो चली तुमसे न कुछ भी काम है।"[2]

.हाँ कवि ने वाल्मीकि रामायण[3] से प्रभाव ग्रहण किया है। किन्तु अयोध्या में सीता-सम्बन्धी अपवाद फैलने पर उपाध्यायजी के राम कवि वाल्मीकि के राम से भी

मधुर वारिधि हो, कटु हो सुधा,
अति निवारण हो विष से क्षुधा।
रवि सुशीतल, दाहक हों शशी,
पर कभी अपनी न मृगीदृशी॥
स्वपति को, गुरु को निज तात को,
तनय को, अपने प्रिय गात को।
समय पा न हने कब कामिनी ?
गिर पड़े सहसा जिमि दामिनी॥
न अबला डरती परलोक से,
न अबला मिलती पर शोक से।
वह नहीं हठ से हट जायगी,
अभय हो असि से कट जायगी॥
न अबला जन को कुछ शर्म है,
न उनका कुछ बाधक धर्म है,
निज प्रयोजन ही प्रिय है उन्हें,
पर प्रयोजन अप्रिय है उन्हे॥
(रामचरित-चिंतामणि: ५ वाँ सर्ग, पृ० ६६, ७८, ८२)

[1] स्त्री जग में स्वच्छंदचारिणी कभी न यश पाती है,
तरुवर के आश्रित हो करके लतिका रस पाती है।
(वही : ११ वाँ सर्ग, पृ० १५१, ५५

[2] वही : १२ वाँ सर्ग, पृ० ६२२, ६३।

[3] तदर्थं निर्जिता मे त्वं यशः प्रत्याहृतं मया।
नास्ति मे त्वय्यभिष्वंगो यथेष्टं गम्यतामितः॥
(श्रीमद्वाल्मीकिरामायण · ११८ वाँ सर्ग, २१)

अधिक कठोर हो गए हैं।[1]

इस प्रकार की अनादरात्मक नारी-भावना को अभिव्यक्ति कवि ने सूक्ति-मुक्तावली[2] में भी की है, जहाँ लक्ष्मी का दृष्टांत लेकर कवि स्त्रियों के सम्बन्ध में कहता है :

"स्त्री की मति उल्टी होती है, उभयकुलों को वह खोती है।
वारिधि-सुता, विष्णु की जाया, उस श्री के मन शठ नर भाया।।"[3]

इस पर भी 'राम-चरित-चिंतामणि' में विश्वामित्र की स्त्री-सम्बन्धी शुभाकांक्षाएँ[3] संक्रान्ति-युग में होनेवाले भावना-द्वित्व को प्रकट करती हैं। जिस प्रकार प्रभात से पूर्व रजनी के अन्धकार की कोर पर उषा की आलोकछाया प्रतिलक्षित होने लगती है, उसी प्रकार इस युग में हम मध्ययुगीय घृणात्मक नारी-भावना के अन्तिम छोर पर नवयुगीय नारी-भावना की रेखा देखते हैं।

संक्राति-काल में रचा गया शृंगारात्मक काव्य रीति-काल से प्रचलित नायिका-भेद तथा नख-शिख की परिपाटी का पालन करता है। इसमें यथार्थताओं और व्यक्तित्व की उपेक्षा की गई है, और निश्चित आदर्शों के आधार पर निर्मित विशिष्ट रूपों (Types) में नारी को उपस्थित किया गया है। नारी एक 'नायिका' के रूप में उनके सम्मुख आती है, जिसकी परिभाषा यह है, "रूप, शील, गुण, यौवन, प्रेम, कुल, विभुता और भूषण-इस प्रकार आठ अंगों से पूर्ण स्त्री को नायिका कहते हैं।"[4] इस परिभाषा को लेकर जब कवि नायिका का वर्णन करने लगते हैं, तो प्राय. रूप और यौवन पर ही अटक जाते हैं, गुणों पर उनका ध्यान कम जाता है। यौवन का प्रस्फुटन-काल वयसंधि उनके लिए अत्यन्त आकर्षण का विषय है।[5] सौन्दर्य के सम्बन्ध में उनकी कल्पनाएँ अतिशयोक्ति-

---

[1] रामचरित-चिंतामणि; २४ वाँ सर्ग, ३४४, ७०.।

[2] लक्ष्मी-लीला, पृ० ९, ५।

[3] वीर-प्रसू वीरांगनायें हों यहाँ, विद्या पढ़े,
सत के समर पर वे चढ़ें, साहस सहित आगे बढ़ें। —३ सर्ग पृ० २८, १६

[4] बलदेवप्रसाद मिश्र—शृङ्गार-शतक : अनुराग खंड।

[5] अ—अयोध्यासिंह उपाध्याय—काव्योपवन, विनोद बयालीसा, पृ० ६९, ८, १०।
आ—चरनन छोड़ि चचलाई अब नैनन में,
अपनो बनाय रही रुचिर यगार है।
राज-हंस त्यों ही धीरताई मनु नैनन की,
चरनन कीट रही अपनो अंगार है।
जाय रही सघन जघन उरजन पर,
कटि को प्रदेश त्यागि गुरुता अपार है।
तापै डीठि डार मन थिर रहि जायँ कैसे,
थिर जब नाहीं ताको तन सुकुमार है॥
(बलदेवप्रसादमिश्र- शृंगार-शतक वयसधि पृ० ३)

र्ण तथा परम्परागत उपमानों को लिये हुये हैं। हाथ की तुलना में पारिजात और कमल हीं ठहरता, उरोजों पर कनक-कलश वारे जा सकते हैं, कुटिल अलकें और पतली कटि है, जनको देखकर प्रतीत होता है कि कुंडलित नाग मणि धारण करके अमृत की लालच से चन्द्रमा पर चढ़ रहे हैं।[1]

प्रायः कवि की दृष्टि उन अंगों पर ही विशेष रूप से जाती है, जो कामोत्तेजक हैं, और वह नायिका की अतिशय सुकुमारता की ओर लक्ष्य करता हुआ ढीले-ढीले ढग से ी नजर डालने का आदेश देता है।[2] नारी के सौन्दर्य में कवि ने कामोत्तेजक प्रभाव ही ाया है। उसके शीश को देखकर लोग सिर धुनने लगते हैं, उसकी नागिन-सी वेणी ी बात सुनते ही विष चढ़ जाता है, उसके जूरे से अजानमन भी अनिवार्यतः 'आक-ित हो जाता है। कुटिल-भृकुटि "गुजराती तेग" के समान सब पर "गजब गुजारती" है, त्र बरबस ही चचल कर देते हैं[3], वे नशीले नयन मानों मन-देश जीतने के लिए ण-शूर हैं।[4]

नारी के सौन्दर्य तथा उसके प्रभाव का इस प्रकार का वर्णन स्पष्ट कर देता है कि वि ने नारी को यामिमात्र के रूप में देखा, उसके शरीर-मात्र को देखा और उसे पुरुष की ामेच्छाओं की पूर्ति के साधन-मात्र के रूप में समझा। ऐसी अवस्था मे स्वाभाविक है क कवि नारी का भावक्षेत्र और कार्यक्षेत्र सयोग और वियोग को निर्धारित करके उसे भिसारिका, मानवती या विरहोत्कठिता के रूप मे ही देख सके। वियोग में भुतुएँ उस ी वेदना को उद्दीप्त करती हैं; मेघ मदन की सेना के समान प्रतीत होते हैं[5] हेमत मे वह पनी तुलना उस सौभाग्यवती से करती है "जो हिमत में कत गरे लगि सोवै।"[6] जहाँ सके प्रेम-सम्बध अवैध होते हैं, वहाँ सामाजिक बन्धनों के प्रति विद्रोह का भाव भी समे उत्पन्न होता है,[7] और उसकी चरम अभिलाषा यही है —

सखियान सयानन सों दुरिकै
जो अकेले कही करि पावती मै।
खनि मंद हसी तिरछे तकि कै नद,
नंदन अक में लावती मै।'[8]

इससे स्पष्ट है कि कवियों ने नारी को सकुचित दृष्टि से देखा, उसके विचार और

---

[1] पं० द्विज ब देवप्रसाद—प्रेम-तरग, पृ० ४, ११
[2] वही, पृ० ५, १३
[3] अयोध्यासिह उपाध्याय: काव्योपवन, नखसिख पृ० १०७, ११५
[4] पं० द्विज बलदेवप्रसाद - प्रेम-तरंग, पृ० ५, १५।
[5] पं० द्विज बलदेवप्रसाद—प्रेम-तरंग पृ० ९, २६।
[6] अयोध्यासिंह उपाध्याय—काव्योपवन : हेमंत-वर्णन पृ० ८७।
[7] पं द्विज बलदेवप्रसाद प्रेम-तरंग पृ० ७, २०
[8] वही पृ १७, ७

क्रिया को ऐंद्रिक क्षेत्र-मात्र में देखा। न तो स्वयं नारी का कोई शृंगारातिरिक्त रूप दिखाई देता है और न वह पुरुष को मानसिक रूप में भाग लेती हुई दिखाई पड़ती है।

इस प्रकार की नारी-भावना के पीछे प्रबल काम-प्रेरणा है। काम-प्रेरणा कोई अस्वाभाविक वस्तु नहीं, किन्तु उसके द्वारा जीवन के अन्य सभी कर्तव्यों का आवृत हो जाना समाज के मानसिक अस्वास्थ्य का लक्षण है। यह अस्वास्थ्य प्रायः प्रचलित लैंगिक प्रतिबन्धों का फल होता है। हम देख चुके हैं कि स्मृतियों तथा पुराणों के प्रभाव से हमारे समाज में अनेक निषेधात्मक नियम प्रचलित हो गए थे। मुस्लिम काल से पूर्व के प्रतिबंध बढ़ जाने से पुरुषों के लिए स्त्रियों का दर्शन—यहाँ तक कि पत्नी का दर्शन दुर्लभ हो गया। ऐसी अवस्था में प्रकृतिगत काम का स्वस्थ पूर्ति असंभव हो जाती है, और वह प्रवृत्ति क्रिया-क्षेत्र एवं भाव-क्षेत्र में एक वक्र मार्ग को अपना लेती है, समाज में बंधनों को तोड़कर गुप्त प्रेम-व्यापार का संपादन करनेवाले पड़ोसियों या परकीया और शठों की उत्पत्ति हो जाती है। हमारे समाज में इस प्रकार के व्यक्तियों की उत्पत्ति में सहायक हुई वेश्या (जिसका निर्माण भी सामाजिक कारणों से ही हुआ था) जो सिद्धान्त रूप से तो गर्ह्य कही जाती थी, किन्तु पुरुषों की असंतुष्ट कामवृत्ति का साधन होती थी। आर्थिक दृष्टि से भारत अभी तक संपन्न था और धनी-वर्ग में उत्पन्न होनेवाले कवियों को प्रचुर अवकाश भी था। धन और अवकाश विलासपूर्ण भावों की उत्पादक-भूमि होते हैं।

अस्तु, एक तो सामाजिक वातावरण से प्रभावित होकर और दूसरे काव्य की परम्पराओं के पालन को ही श्रेयस्कर मानकर २० वीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में कुछ कवि रीति-काल की-सी शृंगारात्मक नारी-भावना की अभिव्यक्ति करते रहे। उनकी भावना रूढ़िवादी है और उतनी ही संकुचित है जितनी बिहारी या मतिराम की थी। ये कवि सुंदर का संयोग शिव से न कर पाये हैं। वे देश और काल की आवश्यकताओं के प्रति निमीलित-नेत्र हैं। नायक और नायिका की विलास-लीलाओं में नृत्य करनेवाली उनकी कल्पना नारी को नर की सहचरी और सहधर्मिणी के रूप में, गृहलक्ष्मी के रूप में, देश-सेविका के रूप में देखने में असमर्थ है। वास्तव में उनकी नारी-भावना ही नहीं, नर-भावना भी संकुचित है। जब उनके नायक दक्षिण, शठ, धृष्ठ, जिनका क्रिया-चातुर्य और वचन-चातुर्य रतिक्रीड़ा के ही क्षेत्र में है, तो फिर उनकी नायिका-कल्पना अभिसारिका, खंडिता, मानवती से अधिक हो ही क्या सकती थी?

भक्ति-काव्य और शृंगार-काव्य के अतिरिक्त इस युग में कुछ कथा-काव्यों की भी रचना हुई।[1] यह काव्य पौराणिक नारी-पात्रों को लेकर चलते थे, और शैली में इतिवृत्तात्मक थे। किन्तु इनमें पात्रों के चित्रण में नवीनता नाममात्र की भी नहीं थी। कथा-सार का वर्णन और नायिका का अधिक से अधिक प्रेम को विह्वलता का चित्रण इनमें पाया जाता है। मौलिकता का अभाव है।

---

[1] गदाधर शुक्ल—उषाचरित; 'शंकर'-उषाचरित; लक्ष्मीनारायणसिंह—नल-दमयंती-चरित-आदि।

यद्यपि इस युग में प्राचीन परिपाटी के काव्य की रचना प्रचुर रूप से होती रही, और परंपरागत नारी-भावना बनी रही, किन्तु यह युग संक्रांति का था। प्राचीन भावना के बने रहते हुए भी गति नवीनता की ओर थी। कुछ कवि नवीन प्रभावों को ग्रहण कर रहे थे। इस युग के कवियों के विशेष रूप से प्रेरक रहे राष्ट्रीय आंदोलन तथा समाज-सुधार-आन्दोलन।

राष्ट्रीय आंदोलन १९वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में प्रारंभ अवश्य हो गया था, किन्तु सन् १९०५ से पूर्व उसने जन-आन्दोलन का रूप धारण नहीं किया था। १९०५-१९०९ के मध्य देश में एक नवीन चेतना उद्भूत हुई, जिसने राष्ट्रीयता के दो नए दलों को जन्म-दिया[1] यह दो दल थे गर्म दल और आतंकवादी दल। प्रथम राजनैतिक विद्रोह और राष्ट्रीय निर्माण में विश्वास करता था, जिसके साधन थे अंग्रेजी माल और संस्थाओं का बहिष्कार, स्वदेशी का प्रचार तथा राष्ट्रीय संस्थाओं की स्थापना। द्वितीय अस्त्र-शस्त्रों के प्रयोग राजनैतिक हत्याओं, डकैती आदि में विश्वास करता था। यद्यपि दोनों दलों के मार्ग पृथक् पृथक् थे, किन्तु लक्ष्य एक ही था—स्वतंत्र और स्वावलंबी भारत का निर्माण करके प्राचीन गौरव और संपन्नता का पुनरावर्तन करना। ये दल भारत पर पश्चिमी प्रभाव को अच्छा नहीं मानते थे। दोनों दलों के नेता साहसी तथा त्यागशील थे और देश-प्रेम तथा विदेशी राज्य के प्रति घृणा से पूर्ण थे। पूर्ववर्ती कांग्रेसियों के विपरीत वे ब्रिटिश-राज्य की उदारता में विश्वास नहीं करते थे और "राजनैतिक भिक्षुक वृत्ति"(Political mendicancy) को स्वातंत्र्य-प्राप्ति का उपयुक्त मार्ग नहीं मानते थे।

१९०५ में लार्ड कर्जन-कृत बंग-भंग ने देश में विद्रोह की अग्नि प्रचंड कर दी। एक ओर तो स्वामी विवेकानन्द के उपदेश नवयुवकों के मस्तिष्क को प्रभावित कर रहे थे और उनमें मातृभूमि के प्रति तीव्र भक्ति-भाव को उत्पन्न कर रहे थे, दूसरी ओर बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय और विपिनचन्द्र पाल (बाल लाल-पाल) के नेतृत्व में स्वदेशी और बहिष्कार आंदोलन प्रारंभ हुआ, जो १९०९ तक प्रबल रूप से चलता रहा। आंदोलन के प्रारंभिक वर्षों में ही नवोदित भारत का राष्ट्रीय गीत "वंदे-मातरम्" (जो बंकिमचंद्र चटर्जी के आनंद मठ से लिया गया था) प्रचलित हो गया। इस ओर श्री अरविन्द घोष का प्रयत्न उल्लेखनीय है जिन्होंने अपने पत्र का नाम "वंदे मातरम्" ही रखा। गर्म-दल वालों के अतिरिक्त आतंकवादी भी उस काल में पत्र-पत्रिकाओं में शक्तिशाली लेख आदि के द्वारा तथा सरकारी अफसरों-आदि की हत्या के द्वारा अपने प्रोग्राम को पूरा कर रहे थे। सरकार ने आंदोलन के दमन के लिए कोई प्रयोग उठा न रखा। सरदार अजितसिंह और लाला लाजपत राय को निर्वासित किया गया (९ मई १९०७), सेडीशन्स मीटिंग्स ऐक्ट (१ नवंबर १९०७) एक्स्प्लोसिव सब्सटेंसेज एक्ट तथा न्यूज पेपर एक्ट (८ जून १९०८) तथा क्रिमिनल लॉ अमेंडमेंट एक्ट (११ दिसंबर १९०८) पास करके

---

[1] गुरुमुख निहाल सिंह—लैंडमार्क्स इन इंडियन कौंस्टीट्यूशनल एन्ड नेशनल डेवलपमेंट, अध्याय १५, पृ० २५९.

अनेक कठोरतायें की गईं, तिलक को 'केसरी' में दो निबंध छापने पर कारागार में डाला गया (६ जून १६०८) तथा बहुत से अन्य नेताओं को भी निर्वासित या बंदी किया गया। किन्तु जो चेतना इस आंदोलन-काल में भारत में जाग्रत हो गई थी, वह किसी प्रकार भी कुचली न जा सकी, वरन् निरंतर अधिकाधिक व्यापक ही होती गई। दक्षिण अफ्रीका में गांधी के सत्याग्रह (१६०८ के प्रति सहानुभूति ने, मिन्टो-मार्ले-रिफ़ार्म (१६०६) के प्रति असंतोष ने, तथा प्रथम महायुद्ध-काल (१६१४-१८) में जनता में आत्म-सम्मान और आत्म-विश्वास के भाव की वृद्धि ने भारत के मस्तिष्क में नवीन जागृति उत्पन्न की। १६१६ में तिलक (जो १६१४ में छूटे थे) और श्रीमती ऐनीबेसेंट ने होम-रूल आंदोलन प्रारंभ किया। १६१७ में भारत का राजनैतिक आंदोलन अपनी चरम अवस्था पर था।

समाज-सुधार-सम्बन्धी आंदोलन यद्यपि १६ वीं शताब्दी की विशेषता थी, किन्तु २० वीं शताब्दी में भी स्त्रियों की अवस्था में सुधार करने के लिए तथा उन्हें जाग्रत करने के लिए प्रयत्न होते रहे। हमारे संक्रान्ति-काल में विशेष प्रयत्न स्त्री-शिक्षा तथा विधवा विवाह के क्षेत्रों में हुआ। इस संबंध में धोंदो केशव कार्वे (१८५८) गोपाल कृष्ण देवधर (१८७१-१६३५) आदि के प्रयत्न उल्लेखनीय हैं। कार्वे जब प्रोटेस्टेंट, गर्ल्स स्कूल, बम्बई में अध्यापक थे, (१८८५) तभी उन्होंने पहले पहल स्त्री शिक्षा की आवश्यकता का अनुभव किया। ७ वर्ष पश्चात् वे फर्गुसन कालेज में प्रोफेसर हुए। इसी बीच पत्नी का देहान्त हो जाने पर हिन्दू धर्म परंपरा के विरुद्ध उन्होंने एक विधवा ब्राह्मणी से विवाह करके (१८६३) विधवा-विवाह का प्रचार किया। उसी वर्ष वे "विधवा-विवाह संस्था" (Widow marriage Association) के सभापति हुए, यद्यपि १६०० में उन्होंने पद त्याग दिया। १८६६ में कार्वे ने पूना में "हिन्दू विधवा-गृह "(Hindu Widows Home) खोला। इस गृह का लक्ष्य कुलीन विधवाओं में, उन्हें अध्यापिका या नर्स आदि की शिक्षा देकर, जीवन के प्रति क्रियाशील उत्साह उत्पन्न करना था। इस प्रकार की शिक्षा ने विधवाओं के अतिरिक्त अन्य लड़कियों को भी आकर्षित किया। फलतः छात्रावास-सहित 'महिला-विद्यालय" को भी स्थापित करना अनिवार्य हो गया। यहाँ लड़कियाँ परीक्षाओं के लिए तैयार नहीं की जाती थीं वरन् सुपत्नी, सुमाता तथा सुप्रतिनिवेशी बनने के लिए तैयार की जाती थीं और इस प्रकार बाल-विवाह की प्रवृत्ति भी हतोत्साह हुई। कार्वे का स्त्री-शिक्षा-संबंधी उत्साह उनके इंडियन विमन्स यूनिवर्सिटी के निर्माण (१६१६) में चरमतः प्रकट हुआ। श्री श०गो०भंडारकर इसके प्रथम कुलपति थे। प्रारंभ में इस विश्वविद्यालय में, जो पूर्णतः स्वावलंबी था, केवल ४ छात्रायें थीं और विद्यालय आदि अनेक स्कूल उससे सम्बन्धित थे। १६३१ में २४ संस्थायें इससे संबंधित हो गई थीं और २५०० से अधिक लड़कियाँ मिडिल और हाई स्कूल में तथा १२५ कालिजों में शिक्षा पा रही थीं।

कुछ इसी ढंग का कार्य गोपाल कृष्ण देवधर ने किया। उन्होंने भारतीय स्त्रियों के

---

[1] कार्वे माई ट्वेंटी इयर्ज इन दी कॉज आव इंडियन विमन पृ ३२

उत्थान के लिए एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण संस्था—पूना-सेवा-सदन—की स्थापना की। इस संस्था की स्थापना का कारण स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है—"जब मैं संयुक्त प्रान्त में अकाल-उद्धार-कार्य में लगा हुआ था, मेरी धारणा बनने लगी कि राष्ट्रीय उन्नति के विविध क्षेत्रों में भारत को पुरुषों के ही समान अभ्यस्त स्त्री कार्यकर्ताओं की भी आवश्यकता है। पूना वापस आने पर मैंने कई बार मित्रों —स्त्री तथा पुरुष—की गोष्ठियाँ की और इसका फल हुआ आधी दर्जन विधवाओं को सामाजिक-कार्य कर्त्रियों के रूप में शिक्षित करने का प्रण"।[1] संस्था का निश्चित रूप से प्रारंभ १९०९ में हुआ। प्रारंभ में यह कार्य श्रीमती रमाबाई रानाडे, महान् सुधारक रानडे की विधवा पत्नी के गृह में हुआ और वे ही इसकी १९२४ तक सभापति रहीं। इस प्रकार भारतीय रूढ़िपंथी समाज में स्त्रियों को शिक्षित करने तथा अस्पतालों आदि में वर्ग-भेद आदि के बंधनों पर ध्यान न देकर कार्य करने के लिये स्त्रियों को उत्साहित करने का श्रेय श्री देवधर को है। श्रीयुत मलाबारी ने भी भारतीय स्त्रियों को गरीबों की सेवा, रोगियों की परिचर्या आदि के लिये अभ्यस्त बनाने के लिये एक सेवा-सदन की स्थापना की (१९०८)।

इस प्रकार संक्रान्ति-युग में एक ओर तो देश की स्वतन्त्रता-संबधी आंदोलन प्रबलता ग्रहण कर रहा था, दूसरी ओर नारियों को देश की उन्नति में सहायक बनने के लिए जागृत, शिक्षित तथा उत्साहित किया जा रहा था। देश की इस प्रगति से युग के नवयुवक कवि प्रभावित हुए बिना न रह सके; और उन्होंने मध्ययुगीयता से अपना सबध तोड़ना प्रारंभ कर दिया। एक ओर तो राष्ट्रीयता, मानवतावाद आदि के भाव काव्य में स्थान पाने लगे, दूसरी ओर परम्परागत भावों तथा पौराणिक कथाओं आदि को वर्णन करने की रूढ़िबद्ध रीति को त्याग कर व्यक्तिगत मौलिक भावों तथा रीतियों का समावेश करने की ओर साहस के साथ अग्रसर हुए। वे अपने देश तथा काल के प्रति जागृत थे और युग की आवश्यकता के अनुसार काव्य-रचना करते हुए प्रबन्ध-काव्यों में नवीन कथानकों की उद्भावना तो करते ही थे, साथ ही प्राचीन कथानकों की व्याख्या भी नई दृष्टि से करने लगे।

अस्तु, जब 'देश राग की तान' छिड़ी हुई थी और "डमरू लिए बाल गगाधर डाल रहे थे जान" तथा स्वराज्य ही देश की प्रमुख कामना थी, तब नवीन कवि का अन्य कवियों को सचेत करते हुए यह कहना अस्वाभाविक नहीं था—

"देखा न आपने कि ज़माना कहाँ है अब।
रस रास का जगत में ठिकाना कहाँ है अब॥
भूषण न आप बन सके मतिराम ही बने,
कामारि आप बन न सके काम ही बने।
सब और काम भूल के रस धाम ही बने,
क्यों राम आप बन न गए श्याम ही बने?
करुणानिधान देश पर अब तो दया करो।
निज पूर्वजों के नाम की कुछ तो हया करो।

[1] बंग इंडिया, ४ मार्च १९२६

माँ भारती तुम्हारा चलन देख-देख कर,
नव नायिका से नित्य लगन देख-देख कर।
परकीया में लगा हुआ मन देख-देख कर,
उजड़ा हुआ स्वदेश का बन देख-देख कर॥
आकुल अजस्र धार से आँसू बहा रही।
होकर अधीर धैर्य भवन है ढहा रही॥[1]

इस प्रकार के भावो का काव्य-जगत् में प्रसार होने के साथ ही मध्ययुगीय नारी-भावना का अन्त हो गया। नवीन नारी-भावना का सन्देश देनेवाले प्रमुख कवि थे, श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय आदि।

संक्रान्ति-युग की नवीन नारी भावना को हम दो प्रकारों में विभक्त कर सकते हैं (१) राष्ट्रवादी (२) सुधारवादी। यद्यपि इन दोनों प्रकारों का सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ट है, फिर भी दोनों को पृथक-पृथक ढग से समझना उचित होगा।

प्रथम अध्याय में नारी भावना में परिवर्तन के कारणों का विवेचन करते हुए हम कह आये हैं कि राष्ट्रीय-जागृति ने कवियों को भारत के प्राचीन गौरव से उत्प्रेजना लेने को प्रेरित किया। प्राचीन भारत में, जब देश उन्नति की अवस्था में था, स्त्रियाँ विशेष आदर की दृष्टि से देखी जाती थीं, और वे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष की सहयोगिनी रहती थीं। आधुनिक कवि उसी अवस्था का पुनरावर्तन करना चाहता है। वह आर्य-नारी के प्रति आदर और श्रद्धा के भाव से भर जाता है। उनको वह जग-ज्योति, जगत-संजीवनी, शुचिता की सीमा आदि के रूप में देखता है।[2] साथ ही विविध विशेषणों से उसे भूषित करता हुआ उसे अमेय बलधारिणी विश्व की अजेय शक्ति, मानता है।[3] नारी को शक्ति मान कर ही वह उसे केलिगृह की देहली के बाहर, देश के कार्यक्षेत्र में निकाल सकता है, जगत-सजीवनी मानकर ही देश को जागृत करने की आशा उससे कर सकता है, 'त्रिशक्ति-सणभिनी' मानकर ही कृती पौरुषी पुत्र उत्पन्न करने को कह सकता है। फलतः

---

[1] त्रिशूल—त्रिशूल-तरंग : कविराज से सबोधन, पृ० ७०-७१।

[2] जय-जग ज्योति, जगत संजीवनी, जय-जग-लाज जहाज
शुचिता-सीम, पुन्यपथ प्रेमिनि, नेमिनि, नेह-निवाज
जयति भुवि भारत सती समाज।
(श्रीधर पाठक—भारत-गीत : सती-समाज पृ० ४९)

[3] अहो पूज्य भारत-महिलागण, अहो आर्य-कुल-प्यारी।
अहो आर्य-गृह-लक्ष्मी-सरस्वती, आर्य-लोक उजियारी॥
अहो आर्य मर्याद-ज्योतिनी, आर्य हृदय की स्वामिनि।
आर्य ज्योति, आर्यत्व द्योतिनी, आर्य-श्रीर्य-धन-दामिनि॥
आर्य धर्म-जीवन-महिमामयि, आर्य-जन्म संजीवनि।

नारी के सुख-सहाय की सफलता में पूर्ण विश्वास रखता हुआ [1]कवि भारतीय नारी से कहता है :

"आर्य स्वदेश सुख-दुख संगिनि, अखिल श्रेय संचारिणि,
आर्य जगत् में जननि पुनः निज जीवन-ज्योति जगाओ,
आय हृदय में पुनः आर्यता का शुचि स्रोत बहाओ,
अक्षय सुकृतमयी स्वकुक्षि से कृती आर्य सुत ज्याओ,
त्रितय शक्ति पूरित स्वबक्ष से पुनःपु सत्व पय प्याओ,
करो सार्थ कमनीय नाम निज अहो आर्य-कुल-कामिनि
आर्य प्रेम को पुन्य रताका, आर्य गेह की स्वामिनि।"[2]

नारी को शक्ति रूपा तथा देश-सेवा में सहयोगिनी के रूप में देखने की भावना ने रामनरेश त्रिपाठी को विजया और सुमना की सृष्टि करने के लिए प्रेरित किया। 'मिलन' को कवि ने 'एक प्रेम-कहानी' कहा है, किन्तु वह परपरागत प्रेमाख्यानों के समान नहीं है, जिनमें नायिका नखशिख-वर्णन, विरह-दशा, सयोग वर्णन-आदि की वस्तु ही रहती थी, और अपने प्रेमी अथवा पति के जीवन में कोई क्रियाशील भाग नहीं लेती। हम देख चुके हैं कि इस प्रकार के प्रेम-काव्यों की परपरा बीसवीं शताब्दी में भी थोड़ी-बहुत चलती रही थी। किन्तु 'मिलन' इस क्षेत्र में एक नए युग का सदेशवाहक है। इस प्रबन्ध-काव्य का नायक आनन्दकुमार है जो स्वदेश को शत्रुओं से मुक्त करने में प्रयत्नशील है। विजया उसी की नवयुवती पत्नी है। वह पति की "सतत-सगिनो" है, और इसलिए जब आनन्द-कुमार पर 'पद-दलित स्वदेश भूमि का' उद्धार करने को प्रस्तुत होता है, तो वह भी "लज्जा-भय तज, साहस उर-धर पुरुषों के अनुकूल" पुरुष वेष ही धारण कर उसकी सगिनी होती है। दुर्घटनावश पति के डूब जाने पर वह आत्म-हत्या करना या विलाप करना अनुचित समझती है और शीघ्र ही अपना कर्त्तव्य निश्चित कर लेती है

"अब कर्त्तव्य यही है पूरा,
करूं वही उद्देश्य।
जिनकी पूर्ति हेतु उद्यत थे,
मेरे प्रिय प्राणेश॥

आर्य शील-सुषमामयि, सुन्दरि, आर्य-मा, आर्य-सती-मणि॥
आर्य त्रिभुवन-अभिवंद्य-यशस्विनि आर्य त्रिशक्ति संशोभिनि।
त्रिगुण जयिनि, मृग नयनि, मनस्विनि, मधुमयि, त्रिजग प्रलोभिनि॥
तुम हो शक्ति अजेय विश्व की, आर्य अमोघ बलधारिणि"।

(वही : आर्य महिला, पृ० ११३)

[1]जिनका सुखद सहाय पाय जग साजै सकल सुकाज।

(श्रीधर पाठक—भारत-गीत : सती-समाज पृ० ४६)

[2]वही, आर्य-महिला पृ० ११४।

पति अभिलाषा पूर्ण करना ही,
है मेरा ध्रुव धर्म ।
सदा करूँगी मैं स्वदेश की,
सेवा का शुभ कर्म ॥
जिस प्रकार अब स्वदेश का,
होगा पुनरुत्थान ।
वही करूँगी यत्न अहर्निश,
देकर तन-मन प्रान ॥"[1]

वह गाँव-गाँव में घूमकर देश का हाल देखती है और साक्षात् दुर्गा-वेश धारण करके लोकसेवा में लीन हो जाती है और अपनी देश-भक्ति-पूर्ण गीतों से जनता को जाग्रत करने लगती है।[2] 'उसके गान हृदय मे भरते थे साहस-उत्साह" और स्वतंत्रता के मार्ग को बताते थे; उसके गीतों ने साहसी और शूर उत्पन्न किये, कायरपन को दूर करके स्वदेश-सेवा में मरने को तैयार नवयुवक निर्मित किए। इतना ही नहीं, जब विजयी शासकों के अत्याचारों से पीड़ित जनता युवक (विजया का पति, जिसको मुनि ने बचा लिया था) और मुनि के नेतृत्व में स्वातन्त्र्य-युद्ध करती है तब "विजया भी भैरवी भेष में आई घर करवाली" भैरव हुँकार करके वह शत्रु पर आक्रमण कर देती है। शत्रु के पैर उखड़ जाते हैं, और प्रजा की विजय होती है। इस प्रकार विजया परतन्त्र-देश के उद्धार के हित प्रयत्नशीला वीरांगना के रूप मे उपस्थित होती है। कल्पित-कथानक को लेकर कवि ने नारी-भावना का प्रकाशन किया है।

सुमना त्रिपाठीजी के 'स्वप्न' नामक काव्य की नायिका है। उसका पति वसंत प्रकृति प्रेमी तथा भावुक है। वह दार्शनिक अन्वेषणों में निरत है। किन्तु सुमना पति से अधिक व्यावहारिक-बुद्धि-युक्त तथा वास्तविकताओं के प्रति जाग्रत है। वह अनेक बार पति से कल्पना का परित्याग कर जीवन-क्षेत्र में क्रियाशील होने का अनुरोध करती है। किन्तु उसे विशेष सफलता नहीं प्राप्त होती। किन्तु एक बार उनके स्वतन्त्र देश को कोई

---

[1] रामनरेश त्रिपाठी – मिलन, दूसरा सर्ग, पृ० ३१, ३३-३४

[2] लिए त्रिशूल हाथ में धरने,
चली देश-उद्धार ।
गाँव-गाँव लगी घूमने,
सेवा-व्रत उर-धार ॥
द्वार द्वार पर जाकर विजया,
करुणा प्रेम निधान ।
सबको लगी जगाने गाकर,
देश-भक्तिमय गान ॥
(वही, चौथा सर्ग पृ० ६४, २१)

विदेशी लोलुप राजा ग्रस लेता है। तब देश की समस्त जनता अपने सगठित बल से उस पर विजय प्राप्त करने के लिए उठ खड़ी होती है। नवोढाएँ शयनागार बन्द कर देती हैं पत्नियाँ पतियों को सजाकर रण-भूमि में भेजती हैं, माताएँ विजय-तिलक लगाकर आशीर्वाद देती हैं। जब ग्राम-ग्राम से युवकों के दल पर दल युद्ध-क्षेत्र में जा रहे थे, जब युद्ध-क्षेत्र में वीर-गति को प्राप्त होने वाले पुरुषों की माताएँ तथा पत्नियाँ गौरव से मडित की जा रही थीं, तब सुमना अपने पति को निष्क्रिय देखकर व्याकुल हो उठती है। राष्ट्र-धर्म के हित एक वृद्धा के त्याग की कथा उसके दुःख के प्याले को भर देती है और वह अपने पति से जाकर कहती है

तुम हो वीर पिता-माता के,
वीर पुत्र मेरे जीवन धन।
तुमसे आशाएँ कितनी हैं,
जन्म-भूमि को हे अरि-मर्दन!
तुम्हें ज्ञात है कैसा संकट,
है स्वदेश पर हे प्राणेश्वर।
शोभा नहीं तुम्हें देता है,
घर पर रहना इस अवसर पर॥"[1]

किन्तु जब कामुक वसन्त इस उद्‌बोधन से भी जागृत नहीं होता, तो अपने अर्द्धाङ्गिनी-भाव के उत्तरदायित्व का निर्वाह करने के लिए[2] वह स्वय वीर वेष धारण कर देश-कार्य में सलग्न हो जाती है। सुमना के वीर-कृत्यों की कथा सुनकर ही विरही-वसत के हृदय में देश-भाव जागृत होता है और वह देश को स्वतन्त्र करता है। इस छोटी-सी किन्तु भावपूर्ण कथा में कवि ने नारी की देश-भक्ति-भावना, वीरत्व, उत्तेजना-शक्ति का परिचय दे दिया है। वसन्त के उद्धार का मूल कारण सुमना है।

लाला भगवानदीन ने नारी की शक्तिमत्ता में विश्वास रखते हुए युग की माँग को पूर्ण करने के लिए 'भारत की छत्रानी, वीर-प्रसविनी, वीर-कन्या और वीर-वधू' का स्मरण किया है। 'वीर-क्षत्राणी' नामक पुस्तक में धर्म, अथवा देश के हित सिंहिनी रूप को धारण करनेवाली नीलदेवी, कमला, पद्मावती, किरणदेवी, बीरा बाई, कर्म देवी, दुर्गावती आदि प्राचीन वीराङ्गनाओं को उपस्थित किया है।

स्वधर्म रक्षा के लिए अबला से सबला बननेवाली नारियों में प्रमुख नाम हैं—कमला, किरणदेवी, वीरमती आदि के। मोहनपुर के रामनाथ की पत्नी कमला पर मेरठ के नवाब की लालची दृष्टि पड़ती है। कायर रामनाथ नवाब के प्रस्ताव को मानने को तैयार है, किन्तु कमला के शब्दों में 'सती नारि का पति बिलगाना टेढी खीर पचाना है।' वह युक्ति से नवाब का नाश करके स्वधर्म तथा स्वपति की रक्षा करती है।[3] उ

---

[1] रामनरेश त्रिपाठी—स्वप्न ३ सर्ग, पृ० ५९, ३२।

[2] वही—पृ० ६२, ३६

समय "कमला नाम-धारिणी देवी दुर्गा सी बन जाती है।" इसी प्रकार की परिस्थिति राजपूत कर्णसिंह की पत्नी कलावती के सम्मुख उपस्थित होती है, जब दिल्लीश अलाउद्दीन उसे अपने हरम मे रखना चाहता है। कलावती रण-भूमि में विरोधोद्यत पति का सहयोग देती है। पति के आहत होने पर भी वह साहस खोने के स्थान पर सेनानियों को उत्तेजित करती हुई 'चंडी सी बनी फिरती" है।[1] किरणदेवी वह वीरांगना है, जिसे मीना बाज़ार के धोखे में अकबर ने हतसतीत्व करना चाहा था। आधुनिक कवि ने उसके अदम्य साहस और शक्ति का वर्णन करके कवि भूषण की भूल को स्पष्ट कर दिया है।[2] धार के राजकुमार जगदेव की पत्नी वीरमती 'श्री रूप की भंडार तो वीरत्व की बेटी'। वेश्या के बहकावे में आकर जब सतीत्व पर संकट आया तो उसने वीरता दिखाई।[3]

ये नारियाँ जिस शक्ति और वीरत्व का प्रदर्शन करती हैं, उसका चरम साफल्य तो जाति-स्वदेश और जन्म-भूमि की रक्षा में काम आने में है। इस क्षेत्र मे नारी कितनी सामर्थ्य रखती है इसको कवि ने नीलदेवी, वीराबाई, कर्मदेवी, दुर्गावती, कमला आदि के उदाहरणों से प्रमाणित किया है। पंजाब के सरदार सूरजदेव की पत्नी नीलदेवी अब्दुल शरीफ खां सूर के अत्याचार से पीड़ित देश की दुर्दशा देख कर उत्तेजित हो उठती है। प्रथम तो वह अपने पति को तथा जनता को शरीफ का दमन करके देश रक्षा के लिए उत्तेजित करती है,[4] और सूरज देव के बंदी होने पर अपना प्रचंड रूप प्रदर्शित करती है। नीलदेवी ने अपने प्राणों को 'देश प्रेम औ जाति नेम-हित' समर्पित कर दिया। चित्तौड़ के राणा उदयसिंह की प्रेयसी वीराबाई ने भी देश-रक्षा के लिए इसी प्रकार का शौर्य प्रदर्शित किया था। अकबर ने जब चित्तौड़ पर आक्रमण करके राणा को बंदी बना लिया, तब वीरा देश-रक्षा के लिए उद्यत हो जाती है :

"आया है उमड़ सैन सहित, वेश दबाया।
मेवाड को है चाहता अधिकार में लाया॥

---

[1] वही पृ० ३४-४१ कलावती।
[2] वही, पृ० ७८-७८, किरण देवी।
[3] वही वीरमती वा वीरा पृ० ७९-९१।
[4] भगवानदीन—वीर क्षत्राणी, नीला वा नीलादेवी पृ० १०

"जननी जन्म भूमि की इज्जत, बेटी बहन नारि की लाज।
सुख सम्पत्ति धन प्राण झोंककर रखना है क्षत्री की लाज॥
इतना करने का बल साहस जिस क्षत्री के अंग न होय।
बस, जानो उसकी माता ने नाहक यौवन डाला खोय।
जन्म भूमि की मर्यादा को जो क्षत्री नहिं सके रखाय।
निज नारी के सती धर्म को कब सकि है वह कूर बचाय॥"

उस वीर यवन जात को कुछ स्वाद चखा दूँ।
कैसी हूँ मैं वीरा उसे कुछ स्वाद चखा दूँ ॥"[1]

प्रेम के साथ देश-प्रेम के भाव से उत्तेजित होकर वह सुकुमारता और भीरुता को को दूर करके वीर-वेश धारण कर लेती है –'दुर्गा-सी बनी धाम से बाहर चली बाला।" वीरों में देश-भक्ति का भाव जागृत करके वह अकबर की सेना से युद्ध करती है और "चंडी सी बनी मुंड थे मुगलों के कतरती।" अंत में उसकी विजय ही होती है। मंडला की रानी दुर्गावती भी वीरता के साथ शत्रुओं से देश की रक्षा करती है। उसके पति की मृत्यु के बाद उसे स्त्री समझ अकबर ने मंडला पर चढ़ाई कर दी; किन्तु दुर्गावती दुर्गा ही थी। उसके वीरत्व को देखकर प्रजा भी उत्साह से भरकर शत्रुओं का सामना करती है और अंत में उन्हें मार भगाने में सफल होती है। द्वितीय बार जब पुनः यवन-आक्रमण होता है, तब गृह-विग्रह मंडला की शक्ति को क्षीण कर देता है, किंतु फिर भी दुर्गावती अदम्य साहस और वीरता का परिचय देती है। और "निज देश के, निज नाम के हित" प्राण विसर्जन करती है।[2] चित्तौड़ के फतेहसिंह (फत्ता) की माता कमला अपूर्व देश-प्रेम का परिचय देती है। वृद्धा होते हुए भी अकबर के आधिपत्य से चित्तौड़ को बचाने के लिए वह युद्ध-क्षेत्र में जाती है। युद्ध में वह वीरगति को प्राप्त होती है, किन्तु उसके अंतिम शब्द यही थे :

"हे पुत्र रहे देह में जब तक कि तनिक प्राण।
निज देश के हित करना महाघोर घमासान ॥"[3]

'वीर-पंच-रत्न' में लाला भगवानदीन ने वीर क्षत्राणियों के साथ साथ भारत की प्राचीन पौराणिक तथा ऐतिहासिक वीर माताओं का भी यशोगान किया है। कवि इन शक्तिमती नारियों को अबला नहीं मानता, वरन् नारी को ही अबला कहना अन्याय समझता है

"बस नाम जो अबला इन्हें मुनियों ने दिया है।
महिलाओं के संग भारी-सा अन्याय किया है ॥
जांचा नहीं किस धातु का नारी का हिया है।
अमृत की मधुर धार है या विष का बिया है ॥"[4]

संसार में माता की शक्तियों में कवि विशेष-रूप से विश्वस्त है। कवि की धारणा है कि संसार में अचल प्रेम के साथ उपकार करनेवाला, सदुपदेश देकर उचित मार्ग पर अग्रसर करनेवाला, मनुष्य को शक्तिशाली बनानेवाला माता के अतिरिक्त दूसरा नहीं है।[5] इस दृढ विश्वास की सिद्धि कवि ने सुमित्रा, अलूपी, कुंती, रेणुका, विदुल

[1] वही : वीर बाला, पृ० ४६
[2] वही : दुर्गावती पृ० ९२-९९
[3] लाला भगवानदीन वीर क्षत्राणी : कर्मदेवी, कर्णदेवी और कमलादेवी पृ० १०४
[4] लाला भगवानदीन—वीर-पंचरत्न : वीर-माता अलूपी पृ० २७३

आदि में पाई है। यद्यपि वाल्मीकि-रामायण और रामचरित मानस में इस प्रकार का वर्णन नहीं है, तो भी हनुमान् के मुख से लक्ष्मण के आहत होने का समाचार सुनकर सुमित्रा का शत्रुघ्न से लंका जाकर राम की सहायता करने का आदेश देना[1] नवीन कवि की मौलिक भावना का परिचायक है। लाला भगवानदीन की सुमित्रा ने मैथिलीशरण गुप्त की सुमित्रा का मार्ग निश्चित कर दिया है। इसी प्रकार इनकी कुन्ती गुप्तजी की कुन्ती के निर्माण की सीढ़ी है।

इस प्रकार प्राचीन वीर-माताओं का वर्णन करता हुआ कवि भगवान से प्रार्थना करता है :

"हे राम ! दयाधाम ! कृपा-कोर इधर हो।
ऐसी ही सुमाता से भरा सबही का घर हो ॥"[2]

"हर घर में प्रगट कीजिए बिदुला सी सुमाता।
सिखला के बना दें हमें कर्तव्य का ज्ञाता ॥"[3]

इस प्रकार की भावना हिन्दी-काव्य की नारी-भावना में एक सर्वथा नवीन पृष्ठ है।

इस प्रकार संक्रान्ति-काल में देश-स्वातन्त्र्य की भावना से प्रेरित होकर कवियों ने उसे समर्थ और शक्तिवान् रूप में देखा है और उसके वीर-रूप का तादात्म्य शाक्तों की दुर्गा-भावना से कर दिया है। नारी में न केवल निजी वीरता ही है, वरन् वीरत्व-संचार करने की शक्ति भी है, पुरुष को देश की स्वतन्त्रता के लिए युद्धोत्तेजना और प्रेरणा देने का चातुर्य भी है। इस प्रकार वह गृह की सीमाओं में बद्ध पुरुष की कामपूर्ति का साधन नहीं रह जाती। गृहलक्ष्मी तो वह है ही, जिसके प्रेम और स्नेहयुक्त सहयोग से "घर गृहस्थ का सच्चा इन्द्र-भवन बनि-जाय", साथ ही बाह्य क्षेत्र में भी वह पति की सहयोगिनी है। पति के अभाव में भी वह हतोत्साह अबला की भाँति सम्मुख नहीं आती। उसमें स्वावलंब की शक्ति है, कर्तव्य-निर्धारण की बुद्धि है, तेज और बाहुबल है।

राष्ट्रीयतावादी नारी-भावना और समाज-सुधार-वादी नारी-भावना की सीमाएँ मिली हुई हैं। कवि प्राचीन वीरांगनाओं का चरित्रगान इस लिए करता है कि वह तत्कालीन नारी-समाज में सुधार चाहता है।[4] जब तक देश में कमला, दुर्गा, झाँसिनि,

---

[1] वही, सुमित्रा, पृ० २५४-५२९, १०-२७-१

[2] वही, रंजुका, पृ० २८९, २४

[3] वही, बिदुला पृ० २९१, २४

[4] धन्य धन्य भारत-ललनाओं सुयश तुम्हारा गाता हूँ।
फिर भारत में वीर नारियाँ जन्में यही मनाता हूँ॥
वीर-नारियाँ माता बनि बनि वीर-पुत्र उपजावेंगी।
तब भारत की सब विपत्तियाँ तुम दयालु भग जावेंगी।"
(वही : कमला पृ० २४) ॥

आदि जैसी क्षत्राणियाँ न उत्पन्न होंगी, तब तक देश के संकेट दूर नहीं हो सकते, किन्तु ललनाओं की दशा का ध्यान करके तो कवि के आँसू नहीं रुकते।[1] "अब तो भारत की सब नारी डरती है लखिके तरवार"[2] और इसी कारण पुरुषों पर भी कायरपन छा गया है।

इस परिस्थिति का कारण है स्त्रियों की सामाजिक दशा। उस दशा को लिखते हुए कवि का हृदय क्षुब्ध हो उठता है।[3] जिसको कवि ने "अनुकूल आद्याशक्ति की सुखदायिनी स्फूर्ति" की मूर्ति और पवित्रता की पूर्ति "नर-जाति की जननी तथा शुभ शांति की स्रोतस्वनी" माना[4] है, उसकी दुर्गति और पतन कवि के लिए असह्य है। पतन और दुरवस्था का मूल कारण है शिक्षा का अभाव। शिक्षा और विद्याध्ययन के परम महत्त्व को स्वीकार करता हुआ[5] आधुनिक कवि पुरुष स्त्री की समान रूप से शिक्षा को देश की उन्नति का अनिवार्य साधन मानता है।[6] अर्द्धांगिनी होने के नाते भी पूर्ण शरीर की स्वस्थता के लिए स्त्री-शिक्षा आवश्यक है.

'विद्या हमारी भी न तब तक काम में कुछ आयगी—
अर्द्धांगियों को भी सु-शिक्षा दी न जब तक जायगी।
सर्वांग के बदले हुई यदि व्याधि पक्षाघात की—
हो भी न क्या दुर्बल तथा व्याकुल रहेगा वातकी ? ॥"[7]

प्राचीन से वर्तमान की तुलना करता हुआ कवि देखता है कि जिस भारत में गार्गी और मैत्रेयी-जैसी विदुषियाँ उत्पन्न हुई थीं, वहीं "अविद्या की मूर्ति-सी कुल-नारियाँ" होती हैं। पति के शिक्षित और स्त्री के अशिक्षित रहने से दाम्पत्य जीवन निर्विघ्न नहीं चलता;

---

[1] आंसू रुकते नहीं, आज की
ललनाओं का करके ध्यान,
उन्हें सुमति दे दशा सुधारो,
साहस दो सबको भगवान।
(द्वारकाप्रसाद गुप्त, 'रसिकेन्द्र' आत्मार्पण, ५ वाँ सर्ग पृ.५७.)

[2] भगवानदीन—वीर-क्षत्राणी : नवदेवी पृ १५.

[3] मैथिलीशरण गुप्त—भारत-भारती : वर्तमान खंड : स्त्रियाँ पृ० १३५, २२७.

[4] वही, पृ १३५, २२८.

[5] वही, भविष्य खंड : शिक्षा, पृ० २७४,
मिश्रबंधु—भारत विनय : स्त्री, पृ०५५, २५७-२५८

[6] जब तक विद्या पुरुषों सरिस पावैंगी दुहिता न मम
तब तक मेरी उन्नति अलभ है आकाश कुसुम सम।
(मिश्रबंधु—भारत-विनय : स्त्री पृ० ५५, २५६.)
देखिए "स्त्रीशिक्षा" गृहलक्ष्मी, पौष संवत् १९७८.

स्त्रियाँ कलह-कुशल हो गई हैं, गदे गीतों में रुचि रखती हैं, पति से भी अधिक आभूषणों से प्रेम करती हैं।[1] किन्तु कवि की दृष्टि में इन दोषों के लिए उत्तरदायी नारी नहीं हैं :

क्या दोष उनका किन्तु जो उनमें गुणों की है कमी ?
हा ! क्या करें वे जब कि उनको मूर्ख रखते हैं हमी ॥[2]

बाबू छेदालाल ने 'अबलोन्नति-पद्यमाला' की प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा पंचम कविताओं में स्त्री-शिक्षा की समस्या पर बड़ी व्यावहारिक रीति से प्रकाश डाला है। प्रथम तीन—'चंद्रकला की जीवनी', 'अविद्या का परिणाम' तथा 'मूर्ख अबला' कविताओं में कवि ने दिखाया है कि शिक्षा के अभाव में स्त्रियाँ कितनी मूर्ख और ज्ञानहीन होती हैं, उनकी अशिक्षा उनके लिए तो दुखकारी है ही, साथ ही देश और समाज की उन्नति में भी बाधक है। शिक्षित न होने से एक ओर तो वे स्वावलंबिनी नहीं हो सकती, और ऐसी अवस्था मे वे दुनिया से छली जाती हैं, कभी-कभी कुप्रवृत्तियों में भी पड़ जाती हैं।[3] दूसरी ओर अशिक्षिता माता अपनी सतान को उचित रीति से नहीं पाल सकती[4] और गृह को कलह के द्वारा नर्क-सदृश बना देती हैं।[5] फलतः कवि की दृढ धारणा है कि "नारी-शिक्षा बिना न कोई उन्नति का पथ है आसान।" जो लोग स्वार्थ-वश या मूर्खता-वश विद्या को स्त्रियों के लिए हानिकर समझते हैं, उनसे कवि का सोदाहरण कहना है कि "विद्या पढ़ कर बुद्धि और भी दिन दूनी बढ जाती है," 'विद्या स्त्री को पथ-भ्रष्ट नहीं करती, वरन् उसका चातुर्य, कुशलता और सौजन्य बढ़ाती है।'[6]

स्त्री-शिक्षा के अतिरिक्त हिन्दू-समाज में विविध कुप्रथाओं के कारण स्त्रियों की जो हीनावस्था है, उसे कवि दूर करना चाहता है। पर्दा-प्रथा के कारण, स्त्रियों का गृहों की बदिनी रहना, दहेज-आदि की प्रथा के कारण पुत्री का जन्म अप्रिय मानना, बाल-विवाह करना, और इस प्रकार विधवाओं की सख्या बढ़ाना, विधवाओं से दुर्व्यवहार तथा बहुविवाह आदि कवि के मस्तिष्क की हलचल का कारण है। इन कुप्रथाओं के कारण नारी ने, जो कवि की दृष्टि में सर्वथा आदरणीय तथा समान अधिकारों की अधिकारिणी है, समाज में अपने उच्च स्थान को तथा अपने व्यक्तित्व को खो दिया है। आधुनिक कवि इस सामाजिक दशा से सर्वथा असंतुष्ट है। वह मानवतावादी विचारधारा का विकास कर रहा है; नारी

[1] वही—वर्तमान खंड : स्त्रियाँ पृ. १३५—१३६.
[2] मैथलीशरण गुप्त—भारत-भारती : वर्तमान खंड-स्त्रियों, पृ. १३६
[3] बाबू छेदालाल—अबलोन्नति-पद्यमाला : 'चंद्रकला की जीवनी' 'पतिपत्नी-संवाद'
[4] वही—'अविद्या का परिणाम'
[5] वही— "मूर्ख अबला"
[6] वही—'पतिपत्नी-संवाद'

क्या कर नहीं सकतीं भला यदि शिक्षिता हों नारियाँ ?
रण-रंग, राज्य, सुधर्म-रक्षा, कर चुकीं सुकुमारियाँ।"
(मैथिलीशरण गुप्त—भारत-भारती : वर्तमान-खंड, स्त्रियाँ, पृ० १३७.)

को वह समाज की इकाई के रूप में देखने लगा है जिसको शिक्षा और अधिकार आदि उतने ही वाछनीय हैं, जितने पुरुष को । पुरुषों के स्त्रियों के प्रति अत्याचार को देश के नाश का मार्ग मानता है

ऐसी उपेक्षा नारियों की जब स्वय हम कर रहे,
अपना किया अपराध उनके शीश पर हैं धर रहे।
भागे न क्यों हमसे भला फिर दूर सारी सिद्धियाँ,
पाती स्त्रियाँ आदर जहां रहती वही सब ऋद्धियां ॥[1]

यहाँ कवि ने मनुस्मृति के "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते तत्र रमन्ते देवता" की प्रतिध्वनि की है। किन्तु स्मृतियों ने जिस प्रकार नारी के लिए विविध प्रतिबध बनाए और अनेक निन्दात्मक शब्द कहे, आधुनिक कवि उनके विरुद्ध है। मनु आदि के आदेशों के अनुसार निर्मित समाज-व्यवस्था से क्षुब्ध कवि कहता है :

"मनू जी तुमने यह क्या किया
किसी को पौन, किसी को पूरा, किसी को आधा दिया"[2]

समाज-सुधार के क्षेत्र मे एक अन्य, और सर्वथा नवीन भावना का विकास हुआ। हम देख चुके हैं कि गोपाल कृष्ण देवधर आदि स्त्रियों को समाज-सेवा के लिए उत्साहित और प्रस्तुत कर रहे थे। अयोध्यासिंह उपाध्याय ने 'प्रियप्रवास' की राधा का निर्माण करके उस प्रेरणा का साहित्यिक उत्तर दिया। राधा—व्रज की गोपी और कृष्ण की प्रेयसी— लगभग १५ वीं शताब्दी से हिन्दी-काव्य की प्रमुख नायिका रही है (और सस्कृत-काव्य में उससे भी कई शताब्दी पूर्व से)। किन्तु अभी तक वह प्राय शृङ्गारिक लीलाओ के ही क्षेत्र मे स्थान पाती रही थी और कवियों-द्वारा नवोढा, प्रगल्भा, अभिसारिका, प्रवत्स्यत्पतिका-आदि के रूप मे ही देखी जाती रही थी। अयोध्यासिंह उपाध्याय ने राधा को एक सर्वथा नवीन रूप मे उपस्थित किया। प्रियप्रवास के चतुर्थ सर्ग में राधा का परिचय देते हुए कवि ने उन्हें "तन्वगी कल-हासिनी सुरसिका क्रीडा-कला पुत्तली" कहने के साथ-साथ, "रोगी वृद्धजनोपकारनिरता सच्छात्रचिन्तापरा" भी कहा है। ये विशेषण निरर्थक नहीं हैं। राधा प्रेमिका अवश्य है, किंतु वह स्वार्थमय मोह की सकीर्ण

---

[1] मैथिलीशरण गुप्त—भारत-भारती वर्तमान खंड · स्त्रियां, पृ० १३६.

[2] श्रीधर पाठक - भारत गीत मनूजी, पृ० ७६.

नही तरुनिगन विथा जात आंखों से देखी
ऐसी दारुन दशा वही जग में नहि लेखी ॥
पुरुषों-सी गुनवती पुरुषगन-सी विज्ञानी।
विद्यावती महान युवती सिगरी सुखदानी ॥
अपराध बिना मनु कैद की दुसह जातना नित सहै
देखै न कभी जग की दशा बंद भवन ही मे रहैं।
मिश्रबंधु—भारत विनय : स्त्री, पृ० ५२.

गली को छोड़ कर 'निस्वार्थ प्रणय' के प्रशस्त राजमार्ग पर बढती है। उसके प्रणय में ही परहित-भावना उत्पन्न होती है। स्वीय प्राणेश में परम प्रभु का दर्शन करके, उसे अमित रूप-रगी में देखते हुए राधा का विश्व-प्रेम जाग्रत होता है,[1] यद्यपि इस त्यागपूर्ण मनोवृत्ति तक पहुँचने में राधा को विकट अतर्द्वंद्व का सामना करना पड़ता है, तो भी उसने अपने व्यष्टि-प्रेम को समष्टि-प्रेम मे विकसित कर लिया, यह कम महत्त्वपूर्ण नही। प्रिय और परमेश की भक्ति को अभिन्न मानती हुई[2] वह अव्यक्त परमात्मा के व्यक्त रूपो—जगत्—से प्रेम स्थापित करती है

विश्वात्मा जो परम प्रभु है रूप तो है उसी के,
सारे प्राणी सारे गिरि-लता बेलियां वृक्ष नाना।
रक्षा पूजा उचित उनका यत्न सम्मान सेवा,
भावों सिक्ता परम प्रभु की भक्ति सर्वोत्तमा है॥"[3]

नवधा भक्ति की नई परिभाषाये देती हुई वह अति उत्पीड़ितों, रोगी तथा व्यथित जनों की बाते मन लगाकर सुनना श्रवण-भक्ति के अन्तर्गत, भव-हितकारी, सर्वभूतोपकारी, पतितों को उठाने की चेष्टाओं को दास्य-भक्ति के अतर्गत, ककालों, विवश विधवाओ, अनाथों, अनाश्रितों, तथा उद्विग्नों का स्मरण करके उन्हे त्राण देना स्मरण-भक्ति के अतर्गत, स तापितों को शान्ति प्रदान करना, निर्बोधों को सुमति तथा पीड़ितों को औषधि देना, तृषित को जल तथा भूखे को अन्न देना अर्चना-भक्ति के अतर्गत रखती है।[4] कृष्ण के सन्देश[5] से उसके विचार और भी दृढता ग्रहण करते हैं। कृष्ण के वियोग में राधा का कार्य-क्रम रोना-चिल्लाना या पुष्प-शय्या पर तड़पना नहीं रहता, वरन् वह व्रजवासियों की सेवा मे तन-मन से लीन हो जाती हैं। यदि कृष्ण-वियोग के दु ख से कोई गोपी मूर्छित हो जाती है, तो राधा उसका उपचार करती हैं, वृद्ध और रोगी जनों की सेवा में निरत रहती हैं, कलह को दूर करके क्लेशों-दलित गृह मे शाति धारा बहा

---

[1] मेरे जी में अनुपम महा विश्व का प्रेम जागा।
मैंने देखा परम प्रभु को स्वीय प्राणेश ही में॥
पाई जाती विविध जितनी वस्तु हैं जो सबों में।
मै प्यारे को अमित रंग औ रूप में देखती हूँ॥
तो मै कैसे न उन सबको प्यार जी से करू गी।
यों है मेरे हृदय-तल में विश्व का प्रेम जागा॥
(अयोध्यासिंह उपाध्याय—प्रियप्रवास, सर्ग १६, पृ० २४२-४३, १०४, १०५.)

[2] इसलिए प्रिय की परमेश की,
परम पावन भक्ति अभिन्न है। (वही, १६ सर्ग, पृ० २४६, १२६.)

[3] प्रिय-प्रवास, १६ सर्ग पृ० २४४, ११७.

[4] वही, १६ सर्ग, पृ० २४५-२४६, ११८ १२५.

[5] वही, १६ सर्ग, पृ० २३२-२३४, ४१-४६

देती हैं, दुष्टों को सदुपदेश देकर सन्मार्ग पर लगाती हैं, और सुजनों की छाया के समान रक्षा करती हैं। इस प्रकार

"वे छाया थी सुजन शिर की शासिका थी खलों की।
कंगालों की परमनिधि थी औषधी पीड़ितों की॥
दीनों की थी भगिनी जननि थीं आश्रितों की।
आराध्या थी व्रज अवनि की प्रेमिका विश्व की थी॥"

राधा को समाज-सेविका के नए वेष में देखने का कारण यह है कि उपाध्याय-जी ने कृष्ण को भी दक्षिण और शठ नायक के रूप में न देखकर देश-भक्त और लोक-सेवक के रूप में ही देखा है। फलत कवि का यह भरत-वाक्य, जो उसकी समस्त विचार-धारा का सार है, विशेष महत्त्व रखता है

"सच्चे स्नेही अवनिजन के देश के श्याम जैसे।
राधा जैसी सदय-हृदया विश्व के प्रेम डूबी।
हे विश्वात्मा भरत भुवि के अंक में और आवे।"[२]

राष्ट्रीयता तथा समाज-सुधार-सम्बन्धी नारी-भावना के अतिरिक्त रूपकात्मक नारी-भावना का भी बीज हम इस युग में पाते हैं। भारत-भूमि को मातृ-रूप में देखने की प्रवृत्ति का प्रारंभ इस युग मे हो जाता है। पीछे कह चुके हैं कि इस युग के राष्ट्रीय आंदोलन की प्रमुख विशेषता थी बंकिमचंद्र चटर्जी के गीत वंदे मातरम् का प्रचार। इस गीत से प्रेरणा ग्रहण करके हिन्दी के कवियों ने भी भारत-भूमि पर मातृ-रूप का आरोप करना प्रारंभ किया।[३] जन्म-भूमि भारत को माता के रूप में देखकर कवि ने माता की सभी विशेषताओं का दर्शन उसमे किया। जिस प्रकार माता की स्नेहमयी क्रोड़ मे शिशु पलते हैं तथा उसके कल्याणमय इंगितों में शिक्षित और उन्नत बनते हैं, माता के प्रति अपने कर्तव्य को भूल कर ही पथभ्रष्ट होकर दुख भोगते हैं, उसी प्रकार भारत-माता भी अपने पुत्रों की पालनकर्त्री तथा मंगलदायिनी है। विदेशी शासन के दुःखों का कारण यही है कि उस माता की सेवा तथा अनुसरण को भारतवासी भूल गए हैं। फलत कवि भारतवासियों की जड़ता और विवश दुर्बलता को दूर करने के लिए भारत-माता से ही प्रार्थना करता है.

"भारत-माता! अपने इन पुत्रों को पहले का सा बल दे,
हे भारती! दयाकर क्षण में सब की दुर्बलता तू दल दे।"[४]

माता के रूप मे "भारत धरनि" की वंदना करते हुए श्रीधर पाठक ने उसे ज्ञान विज्ञान देनेवाली, प्रेम की वर्षा करनेवाली, कुबुद्धि आदि का नाश करनेवाली कहा है।[५]

---

[१] अयोध्यासिंह उपाध्याय—प्रिय प्रवास, वां सर्ग, पृ० १७ २५६, ४९,
[२] वही, पृ० २५१, ५४.
[३] माधव शुक्ल—भारत गीतांजलि, वन्दे मातरम्, पृ० ५
[४] भारती-वीणा—पहली झंकार, पृ० ५०, १२
[५] श्रीधर पाठक – भारत गीत. भारत धरनि पृ० १५.

कहीं-कहीं इस रूपकात्मक मातृ भावना का सामजस्य शाक्तो की देवी कल्पना से करने का भी प्रयत्न किया गया है।[1]

हिन्दी-काव्य मे प्रकृति-वर्णन अभी तक उद्दीपन-आदि के ही रूप मे हुआ था, उस में कभी-कभी मानवी रूपो का आरोप होता था जैसे जमुना में विरहिणी का या पवन में प्रमत्त व्यक्ति का आदि। किन्तु अँग्रेजी साहित्य के प्रभाव से जब अभिव्यञ्जनात्मक काव्य की रचना प्रारभ हुई तब कवि का प्रकृति का चित्रण नए ही ढग से होने लगा। एक ओर तो कवि प्रकृति-सौदर्य के याथातथ्य वर्णन में, आलबन के रूप में प्रवृत्त हुआ, और दूसरी ओर अपनी निजी इच्छा के अनुरूप उसमे मानवीय रूपों का दर्शन कर ने लगा। श्रीधर पाठक इस प्रकार की प्रवृत्ति के प्रारभकर्ता हैं। उन्होंने प्रकृति पर नारी रूप का आरोप करते हुए 'प्रिया' के रूप मे देखा है। किन्तु अभी कवि के हृदय में शुद्ध प्रेम-भाव का उदय नही हुआ है, पूजा का भाव ही प्रधान है। इसका कारण यह है कि भक्ति-काल और रीतिकाल की नारी-भावना का विरोध करते हुए कवि अभी तक नारी के के प्रति पूजात्मक दृष्टिकोण का ही विकास कर सका है, उससे कोई स्नेह-सबध नहीं स्थापित कर पाया है। इस युग के नवीन कवि "शृ गार से इतने भयभीत हो गए थे कि उसका स्पर्श करने मे भी सकोच करने लगे थे।" फलत नारी को कवि "देवि, माँ, सहचरी" के रूप मे तो देख सका है, किन्तु "प्राण" के रूप मे देखना अभी अवशिष्ट है। शृगार सम्बधी इस कु ठा का अत, हम देखेंगे, परिवर्तन युग मे छायावादी कवियों में प्रयत्नों से होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नवीन राष्ट्रीय चेतना तथा समाज सुधार की लहर से प्रभावित होकर सक्रान्ति युग के कवि ने नारी भावना मे आमूल परिवर्तन कर दिया। प्राचीन भारतीय आदर्शों की ओर झुकता हुआ भी वह स्मृतियों आदि की निन्दात्मक भावना तथा काव्य शास्त्रों आदि की शृगारात्मक भावना का अन्त कर रहा है। वह नारी को सहधर्मिणी, गृहलक्ष्मी, शक्ति तथा देवी के रूप में देखने लगा है। नारी को उसने दया, देश प्रेम, विश्व प्रेम आदि नवीन गुणों से युक्त पाया है। भारतीय समाज की स्त्रियों मे कुछ त्रुटियाँ हैं अवश्य, किन्तु उनको कवि नारी भाव के स्वभावगत दोषों के रूप में नहीं देखता। इसके विपरीत स्त्रियों के उन दोषों के लिए भी उत्तरदायी पुरुष वर्ग ही माना गया है, जिसने बहुत अधिक काल से उसे पददलित तथा अशिक्षित रखा है, तथा अज्ञानान्धकार मे डाल कर उसके गुणों को विकसित होने का अवकाश नहीं दिया। कवि का विश्वास है कि नारी मे पुरुष तथा समाज को कल्याण की ओर अग्रसर करने की पूर्णशक्ति वर्तमान है। नवादित कवि 'प्रसाद' के यह शब्द संक्राति-युग की नारी भावना के प्रतिनिधि हैं

---

[1] वही, "पुन्य मातृधरे" पृ० ९२.

[2] वही, 'प्रकृति वदना' पृ० ११

"दुख में मित्र समान अरु गृह में गृहिणी होत।
जीवन की सहचरी सी, रमणी रस की सोत" ॥[1]

हम देखेंगे कि अगले युद्ध में इस भावना का पूर्ण विकास होता है। वास्तव में सक्रान्ति-युग परिवर्तन-युग के लिए वैसा ही है, जैसे मध्याह्न के लिए प्रभात होता है।

---

[1]जयशंकर प्रसाद—चित्राधार सज्जन, नांदी पृ० ९२

अध्याय ३

परिवर्तन-युग (१९२०-१९३७)

युग की प्रमुख भाव-धारायें

परिवर्तन शब्द यहाँ सापेक्ष होकर आया है, अन्यथा परिवर्तन तो किसी विशेष काल की सम्पत्ति नहीं, वह सदैव ही नदी की भाँति गतिशील रहता है। १९२०-१९३७ के काल को परिवर्तन-युग इसलिए कहा गया है कि मध्ययुगीय नारी-भावना से नाता तोड़ने की जिस प्रक्रिया का सूत्रपात सक्रान्ति युग मे हुआ था, वह इस युग मे अपनी पूर्ति पाती है, और कई नवीनताओं का समावेश करती हुई परिवर्त्तन की रूपरेखा स्पष्ट कर देती है। इस युग में गतयुगीय इतिवृत्तात्मकता, उपदेशात्मकता और स्थूल बौद्धिकता के परिधान को छोड़कर कविता छायावाद के नये मार्ग पर अग्रसर हुई और फलत नारी-भावना भी कल्पना और भावुकता से सयुक्त हुई। वह स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढने लगी। साथ ही गत युग में शृगार सम्बन्धी जो एक कुठा का भाव हम देख चुके हैं, वह अब धुलने लगा। अंग्रेज़ी साहित्य के प्रभाव से कवि परिष्कृत बुद्धि और सहानुभूति के साथ सौंदर्य तथा प्रेम का स्वागत करने लगे।

इस युग की नारी-भावना को ठीक-ठीक समझने के लिए उन भावधाराओं से परिचय प्राप्त कर लेना आवश्यक है, जो युगीय कवि की प्रमुख सचालक थीं। परिवर्तन युग की प्रमुख भाव-धारायें, जिनके मध्य नारी-भावना का विकास हुआ, तीन थीं —

१. छायावाद तथा रहस्यवाद

२. राष्ट्रीयता

३ समाज-सुधार

इन वर्गों में कवियों का विभाजन असफल प्रयत्न होगा, क्योंकि प्रत्येक वर्ग का कवि अपने को दूसरे वर्ग का भी सिद्ध करता है। छायावादी कवि मे राष्ट्रीयता का अभाव है, या वह सुधार-भावना से प्रभावित नहीं है, राष्ट्रीय कवि सुधारवादी नहीं है और छायावाद से अस्पृश्य है, सुधारवादी कवि राष्ट्रीयता और छायावाद से दूर है, इस प्रकार के कथन सर्वथा दोषपूर्ण होंगे। इसलिए हम आगे 'भावना' को ही देखेंगे, चाहे एक ही कवि में एक से अधिक प्रकार क्यों न मिले।

इस युग का विशेष सम्बन्ध प्रथम महायुद्ध (१९१४—१८) से जोड़ा जाता है। आधुनिक काव्य में जो 'पलायन प्रवृत्ति' है, उसका कारण अँग्रेज़ी सरकार की दमन नीति बतायी जाती है। इस पलायन का कारण चाहे राजनैतिक रहा हो अथवा सामाजिक और आर्थिक, हमारा सम्बन्ध तो इस तथ्य से है कि छायावादी और रहस्यवादी काव्य

की प्रमुख प्रवृत्ति पलायनवाद है। कवि जीवन की यथार्थताओं और देश की परिस्थितियों से आँखें मींच कर एक कल्पना-लोक के निर्माण में रत दिखाई पड़ता है। प्रकृति का उन्मुक्त सौंदर्य और नारी उसकी कल्पना के प्रश्रय हैं। पलायन की अभिव्यक्ति प्रमुखत. चार धाराओं में होती है—१. दुःखवाद २. रचनात्मक आदर्शवाद (Utopian idealism) ३. सौंदर्योपासना और ४ परोक्ष प्रीति। इन सभी धाराओं का सम्बन्ध युगीय नारी-भावना से है। दुःखवाद के फलस्वरूप हम नारी के प्रति भक्तियुग की-सी निवृत्तिपरक और घृणात्मक भावना नहीं पाते। इसके विपरीत संसार की ज्वाला से दग्ध कवि नारी के सौंदर्य तथा स्नेहांचल में सुख-शांति खोजता है[1] और उसे हृदय की अधिष्ठात्री बना अंधकारमय जगत् में जीवन की ज्योति के रूप में देखता है।[2] इस प्रकार नारी की करुणा में उसके कल्याणी रूप की सृष्टि होती है और वह विश्व-मंगलकारिणी तथा मार्ग-प्रदर्शिका के रूप में अवतरित होती है। युगीय काव्य की 'श्रद्धा' आदि इसी दृष्टिकोण का फल है।

आधुनिक कवि यद्यपि दुःखवादी है, किन्तु विश्वकल्याण और सुधार की भावना[3] से युक्त है। नवनिर्माण की आकांक्षा और नव प्रभात की आशा उसकी निराशा को आलोकित कर देती है। वह उसे वितृष्ण और निष्क्रिय नहीं बनाती। इसके विपरीत रचनात्मक आदर्शवाद की ओर अग्रसर करती है। उसके रचनात्मक दृष्टिकोण की प्रमुख पात्री नारी होती है। नारी में आधुनिक कवि ने जो शक्ति-शक्ति प्रेम की, दया और सहानुभूति की, सेवा और त्याग की, करुणा और ममता की, सृजन और संहार की—पाई है, उसके कारण कवि की नव सृष्टि की भावना का केन्द्र नारी हो जाती है। पुरुष के चरित्र-सम्बन्धी उसके विश्वास एक नया रूप धारण करते हैं। वह सोचता है कि "कठोरता का उदाहरण है पुरुष और कोमलता का विश्लेषण है स्त्री-जाति। पुरुष क्रूरता है तो स्त्री करुणा है"।[4]

---

[1] हृदय जिसकी कांति छाया में लिए निश्वास,
थके पथिक समान करता व्यजन ग्लानि विनाश।
(प्रसाद— कामायनी श्रद्धा, पृ० ७२)
देखिए—हरिकृष्ण प्रेमी—जादूगरनी, पृ० ४३, २

[2] प्रेयसी, जग है एक
भटकता शून्य सतम अज्ञात,
एक ज्योति सी उठो
गिरो पथ पथ पर बन प्रात।
(रामकुमार वर्मा—रूप-राशि, पृ० ४, ७.)
देखिये हरिकृष्ण प्रेमी—जादूगरनी, पृ० ७२,४

[3] जग के उर्वर आँगन में, बरसो ज्योतिर्मय जीवन। (पंत।
काट तिमिर के बंधन, उतरो फिर, भर दो पग पग नव स्पंदन।
(निराला—परिमल· वासंती, पृ० ७८)

[4] प्रसाद—अजातशत्रु, १, ४, पृ० १२६.

"पुरुष समाज का न्याय है, स्त्री दया है, पुरुष प्रतिशोधमय क्रोध है, स्त्री क्षमा, पुरुष शुष्क कर्त्तव्य है, स्त्री सरस सहानुभूति, पुरुष बल है और स्त्री हृदय की प्रेरणा"[१] तथा "स्त्री की कोमलतामयी सदाशयता और सहानुभूति समाज के संतप्त जीवन के लिए शीतल अनुलेप का कार्य करता है"।[२] फलत जगत के टूटते हुए जीवन को, सघर्ष तत्पर समाज को, पाशविक मनुष्य को सँभालने और सुधारने के लिए कवि ने नारी-हृदय की विभूतियों का स्मरण किया है, तथा उसकी शक्ति का आवाहन किया है। कवि ने सभ्यता की रीढ की हड्डी के रूप में नारी को देखा है। उसी के वरद हस्त से कवि की सृष्टि मे सुख-शाति और श्री का विस्तार होता है, पथ-भ्रष्ट मानव उसका सहारा लेकर चिरन्तन आनन्द की ओर अग्रसर होता है।

छायावादी कवि सौदर्योपासक है और श्री अज्ञेय के शब्दो मे 'सौदर्योपासक स्पष्टतया वह व्यक्ति है जो यथार्थताओ का सामना न करके एक रक्षित जीवन व्यतीत करता है।[३] इसके मूल मे, आडलर के सिद्धान्तानुसार कोई अतृप्त वासना खोजी जा सकती है।[४] जो भी हो, आज का कवि सौदर्य और पीड़ा के सयोग को कविता की प्रेरणा मानता है।[५] सौन्दर्योपासक कवियो ने सौदर्य की प्रतिमूर्ति नारी को अनेक दृष्टिकोण से, नाना महिमा, सौंदर्य की प्रेयसी प्रतिमा बनकर मनुष्य-समाज को स्वतत्र विचारो की ओर मौन

---

[१] महादेवी वर्मा हमारी शृखला की कड़ियाँ १, पृ० ४

[२] वही—१, पृ. ९.

[३] माडर्न रोस्टवार हिन्दी पोइट्री—विश्व भारती, अगस्त, १९३७.

[४] "प्रत्यक्ष जीवन में सौंदर्य उपभोग से वंचित रह कर ही तो छायावादी कवि ने अतीन्द्रिय सौन्दर्य के चित्र आंके।"

(नगेन्द्र—विचार और अनुभूति 'साहित्य की प्रेरणा')

[५] "सौन्दर्य के उद्दीपन से जब जीवन के सचित अभाव अभिव्यक्ति के लिए फूट पड़ते हैं तभी तो कविता का जन्म होता है। कविता के उद्रेक के लिए सौन्दर्य का उद्दीपन अर्थात् आनन्द और अभाव की पीड़ा दोनों का सयोग अनिवार्य है।" (वही)

सुमित्रानन्दन पत की यह पंक्तियाँ इस कथन की साक्षी हैं

"हाय मेरा जीवन,
प्रेम औ आँसू के कन
आह, मेरा अक्षय धन,
× × ×
अपरिमित सुन्दरता औ मन
विधुर उर के मृदु भावों से
तुम्हारा कर नित नव शृगार,
पूजता हूँ मैं तुम्हें कुमारि
मूँद दुहरे दृग द्वार
अचल पलकों में मूर्ति सवार

आवरणों और रगों में देखा है। पाश्चात्य साहित्य में चित्रित नियो-प्लेटोनिक सौंदर्य चित्रों की आभा हमारे काव्य मे भी उद्भासित हुई। अंग्रेज़ी के सुप्रसिद्ध सौंदर्योपासक कवि शेली अलौकिक सौंदर्य का दर्शन करने से पहले नारी-रूप की उपासना सापेक्ष समझते थे। उनकी सम्मति में जो ज्ञानालोक सुन्दर और अमर है, उसकी क्षणिक आभा नारी में दिखाई देती है। हिन्दी के आधुनिक कवि निराला लिखते हैं "आकाश की आत्मा सूर्य का खुला हुआ प्रकाश ही पृथ्वी के ससीम सहस्रों पादपों के अखिल जीवों में रूप की कमनीय कांति खोल देता है, भावना को अपार्थिव एक स्वर्गीय कुछ कर देता है, भीतर से उभाड़ कर भूमा के प्रशस्त ज्योतिर्मंडल मे ले आता है। उस स्वतत्र प्रकाश के स्नेह स्पर्श से सुप्त प्रकृति की तद्रा छुट जाती, उसके सहस्रों रूप अपनी लाख-लाख आँखों से अपने ही विभिन्न अनेक अम्लान चित्रों को प्रत्यक्ष करते हैं, हृदय के अधकार की अर्गला, जिसके कारण प्रकाश-पुज प्रवेश नहीं कर पाता, खुलकर गिर जाती, ज्योति का प्रवाह, जो चारों ओर बहता हुआ सृष्ट जीवों की स्वाभाविक स्वतत्रता का स्रोत खोलता फिरता है, हृदय भर जाता है। मोह का मत्र-मुग्ध आवेश कट जाता है। पुलकित हो हृदय अपने हल्के ऐश्वर्य से प्रसन्न खिल जाता है, उसी तरह जैसे ज्योति के एक ही लघु-चुबन से पुष्पों के प्राण खुल जाते, पल्लव प्रसन्न हो हिलने डोलने, झूमने घूमने लगते हैं।

यह ज्योति प्रवाह अरूप है। .. साहित्य म इस अरूप की स्वतत्र सत्ता को नारियों में स्थिर रूप दिया गया है।[1] कलाविदों ने वही पुरुष और प्रकृति का सौहार्द्य, दोनों का अपार प्रेम निरतर योग देखा। आकर्षण दोनों के सभोग विलास में ही है, वह और अच्छा जब एक ही आधार में हो। यही बीज मत्र है, जिसका जप कर उन्होंने नारियों के अगणित अपार रूपों में सिद्धि प्राप्त की। . ..रूप की चपा अपने स्नेह की छाया डालकर पल्लवों के भीतर अधखुली कोमल सरल चितवन से अपरिचित ससार को देखती, न जाने किस अज्ञात चचल भावावेश में डोलकर अपने गृह के पत्रद्वार बद कर लेती है, अरूप के इस चपल रूप स्पर्श से कवि के मस्तिष्क की सुप्त स्मृतियाँ तत्काल आँखे खोल देतीं, रूप की स्वर्णच्छवि चित्त के चित्र-पट पर अपनी सम्पूर्णता के साथ सुडौल अकित हो जाती है। वह मूक वाणी मे प्राणों का संचार कर देता है .... साहित्य के एक पृष्ठ मे एक विकच नारी मूर्ति तम के अतल प्रवेश से मृणाल दड की तरह अपने शत-शत दलों को संकुचित संपुटित लेकर बाहर आलोक के देश मे अपनी परिपूर्णता के साथ खुल पड़ती है। जड़ों मे प्राण सचरित हो जाते, अरूप में भुवनमोहिनी ज्योति-स्वरूपा-नारी . .. (कवि) भावना के हृदय में रूप की विदग्धता की आग भर देता है। नारी भावनामयी बन रूप के शिखर पर चिर काल बैठी रहती है, अमर अक्लात वह अनुपम मूर्ति माइकेल एंजेलो की भावनामूर्ति की तरह मनुष्य जाति के हृदय की जाग्रत देवी, शक्ति की अपार

पान करता हूँ रूप अपार,
पिघल पड़ते हैं प्राण
उबल-चलती दृग जल धार। (पल्लव आँसू, पृ० २५-२७)

[1] इस भाव की पुष्टि के लिए देखिए—गोपालशरण सिंह—'सागरिका' पृ.७१

इंगित से बताती हुई।[1] यह है एक आधुनिक सौंदर्योपासक कवि का दृष्टिकोण।

अस्तु, हम देखते हैं कि आधुनिक कवि नारीत्व के शाश्वत प्रतीक सौंदर्य, जो जड़ म चेतना उत्पन्न कर देता है, जीवन को अमृतमय कर देता है, के प्रति सजग हैं। किन्तु उसका दृष्टिकोण रीतिकालीन कवि के दृष्टिकोण से भिन्न है, । छायावादी कवि की सौंदर्य भावना में अतीन्द्रियता है और शिव का सयोग है। आधुनिक कवि न केवल नारी की वाह्य द्युति से लुब्ध है, वरन् उसकी आन्तरिक विभूतियों से भी प्रभावित है। वास्तव मे मन की ही छवि को उसने तन पर छाई हुई देखा है।[2] छायावादी काव्य मे सौंदर्य के प्रति उपभोग का भाव नहीं है, वरन् कौतूहल, विस्मय और अऐन्द्रिक गौरव का है। इस सम्बन्ध मे नगेन्द्र का कथन है 'इसलिए उसकी अभिव्यक्ति स्पष्ट और मासल न होकर कल्पनामय और मनोमय है। छायावादी कवि प्रेम को एक शरीरी भूख न समझ कर एक रहस्यमयी चेतना समझता है। नारी के अगो के प्रति उसका आकर्षण नैतिक आतक से सहम कर जैसे एक अस्पष्ट कौतूहल मे परिणत हो गया है। इसी कौतूहल ने छायावाद के कवि और नारी के बीच अनेक झिलमिल पर्दे डाल दिये है।[3]" प्रगति-युग मे हम इस भावना का वैषम्य देखेंगे।

प्रत्यक्ष से आँख मींचनेवाला व्यक्तिवादी और अतर्मुखी वृत्तिवाला कवि जब परोक्ष में सौंदर्य देखने लगता है, तो रहस्यवादी कहलाता है। वह अपरूप सत्ता से अपना सम्बन्ध स्थापित करके अपने सुख-दुख, विरह मिलन के उद्‌गारों की अभिव्यक्ति करता है। यह सबन्ध शारीरिक नहीं होता, वरन् आत्मा और परमात्मा का होता है। व्यक्त और भौतिक सीमाओं से परे सुख और सौंदर्य की सृष्टि की जाती है, आत्मा-परमात्मा के बीच 'माधुर्य-भाव' की कल्पना करके प्रणय के गीतों का सृजन होता है। मध्य-युग मे भी, जैसा कि हम भूमिका में कह चुके हैं, सतों ने अनन्यता, अभिन्नता और तीव्रता के कारण पति-पत्नी के रूपक को स्वीकार किया था। पश्चिमी रहस्यवादियों ने भी इस प्रकार के अलौकिक सम्बन्ध

---

[1] सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—प्रबधपद्म रूप और नारी
देखिए – सुमित्रानदन पत – ज्योत्सना पृ० १३४.

[2] "तुम चन्द्र वदनि, तुम कुद दशनि
तुम शशि प्रेयसि, प्रिय परछाई।
उर में अविकच स्वप्नों का युग
मन की छवि नत पर छन छाई
श्री सुख सुखमा की कलि चुन चुन
जग के हित अचल भर लाई"
(सुमित्रानदन पत – ज्योत्सना, पृ० ४५)

[3] नगेन्द्र - आधुनिक हिन्दी साहित्य छायावाद की परिभाषा।

को स्वीकार किया है।[1] आधुनिक काव्य में कबीर की, 'राम की बहुरिया' की पुकार के समान ही हम सुनते हैं —

"नयन में जिसके जलद वह तृषित चातक हूँ।
शलभ जिसके प्राण में वह निठुर दीपक हूँ।
फूल को उर में छिपाये विकल बुलबुल हूँ।
एक होकर दूर तन से छाँह वह चल हूँ।
दूर तुमसे हूँ अखंड सुहागिनी भी हूँ।"[2]

राष्ट्रीयता और सुधारवादी धाराओं के कवि छायावादी और रहस्यवादी कवियों के समान पलायन में विश्वास नहीं रखते। वे देश और समाज के प्रति अधिक सजग रहे हैं। उन्हें प्रेम-कथायें विरह-गाथायें आदि रुचिकर नहीं।[3] जागृति के दूत के रूप में पुकार करके कवि से नवयुग के प्रति सचेत होने को कहते हैं—

"प्रेयसि का रूप बखान चुके,
गा निष्ठुरता का गान चुके,
रच रहे प्राण नूतन समाज,
आया जीवन अभ्युदय आज।[4]

ये कवि रहस्यवाद का भी विरोध करते हैं

होगा क्या बनना कर कविते तुहिन बिंदु की निर्मल माल
विस्मृति के असीम सागर में फैलाकर स्वप्नों का जाल।

---

1 "Bernard uses this figure to exhibit the nature of the experience as not homage or wonder rather love A lord is feared, a father honoured, but a bridegroom is loved, and so the saint prefers the figure To love God with one's whole being is to be wedded (*unpisse*) to God"

(जी० मैकूग्रिगर-एस्थैटिक एकूस्पीरियस इन रिलिजन : वैस्टर्न मिस्टिसिज्म)

[2] महादेवी वर्मा—नीरजा, पृ० २६.

[3] नीरस है यह प्रणय कथायें
शुष्क विरह गाथायें भी,
मुझे निरर्थक सी जँचती हैं
मोहक मूक व्यथायें भी।
(तोरनदेवी लली—जागृति ध्येय, पृ० ४९, ५०)

[4] वही—अभ्युदय पृ० ७३.
देखिये, माखनलाल चतुर्वेदी—हिम-किरीटिनी पुष्पगुहार, पृ० ५-६

निष्फल है निर्मम अतीत का मायायुत रहस्यमय गान,
क्षार रहित है उस अमृत की सुखमय मंद मदिर मुस्कान।[१]

प्रत्यक्ष आवश्यकताओं से आकृष्ट तथा देशोद्धार में प्रयत्नशील ये कवि छायावादी कवियों के निराशापूर्ण गीत नहीं सुनना चाहते। वे कवि के स्वर में उषा का नव सन्देश माँगते हैं

"मैं नहीं चाहती सन्ध्या के,
युग युग का जर्जर प्रणय गान,
हाँ मधुर उषा आगमन सुना
कैसा होगा कंचन विहान।"[२]

राष्ट्रीयता से अनुप्राणित काव्य का गहरा सम्बन्ध उस देश-व्यापी राष्ट्रीय आन्दोलन से है, जो प्रथम महायुद्ध के दिनों में स्वराज्य की निष्फल प्रतीक्षा करके अब स्वतन्त्रता के लिए दृढता से युद्ध करने को तत्पर हो गया था। गांधी के सशक्त और प्रभावशाली नेतृत्व में इसका प्रारंभ हुआ। देश ने गांधी के दृढ स्वर[३] को सुना और सितंबर १९२० में उस वृहत् और व्यापक आन्दोलन का सूत्रपात हुआ, जो अगले १५ वर्षों तक लगातार चलता रहा। इसी वर्ष से भारत के इतिहास में एक नया युग प्रारंभ हुआ। नागपुर कांग्रेस का महत्त्व इसीलिए बहुत अधिक है। इसमें प्रतिनिधियों की संख्या (पुरुष १४४१३, स्त्रियाँ १६९) तो बहुत अधिक थी ही, साथ ही अब प्रकट हुआ कि "निर्बल क्रोध और आग्रहपूर्वक प्रार्थनाओं का स्थान जिम्मेदारी का एक नया भाव और स्वावलंबन की स्पिरिट ले रहे थे।"[४] १९२१ की मार्च में देश भर असहयोग से उबल रहा था। सरकार का दमन-चक्र भी बड़े भयावह और विषाक्त रूप में जारी रहा। यह

[१] "रहस्यवाद का निर्वासन"—'सरस्वती' खंड १७, संख्या, ३, १९३६

[२] तोरन देवी लली-जागृति गायक, पृ० ६९

[३] युद्धान्त में शासकों द्वारा दी गई शर्तें पूरी नहीं की गईं। गांधी पुन मैदान में आये और उन्होंने १० मार्च को असहयोग योजना प्रथम बार प्रकट करते हुए घोषणा की कि 'यदि हमारी मांगें पूरी स्वीकार न हुईं तो हमें क्या करना चाहिए, इस पर विचार कर लेना आवश्यक है। एक जंगली मार्ग खुल्लम खुल्ला या छिपा हुआ युद्ध का है। इस मार्ग को छोड़िये, क्योंकि यह अव्यवहार्य है। आज तो मैं हिंसा के विरुद्ध तर्क पेश कर रहा हूँ सो इस कारण कि परिस्थिति ही ऐसी है, और ऐसी अवस्था में हिंसा बिलकुल व्यर्थ सिद्ध होगी। अतएव हमारे लिए असहयोग ही एकमात्र औषधि है। यदि यह सब प्रकार की हिंसा से मुक्त रखी जाय तो यही सबसे अच्छी और रामबाण औषधि है। यदि असहयोग के द्वारा हमारा पतन और तेजी नाश होती है और हमारे धार्मिक भावों को आघात पहुंचता है, तो असहयोग हमारे लिए कर्तव्य हो जाता है।"

(पट्टाभि सीतारमय्या कांग्रेस का इतिहास, भाग १, अध्याय १, पृ० ११४-११५.)

[४] कांग्रेस का इतिहास-भाग ३, अध्याय २ पृ० १८९

आन्दोलन १९२४ तक चलता रहा, किन्तु १९२४ में गाँधीजी के जेल से छूटने के बाद नेताओं ने असहयोग की विध्वसकारिणी नीति के स्थानपर रचनात्मक ढग से कार्य करना पसन्द किया। बेलगाँव-काँग्रेस (१९२४) में गाँधीजी ने सत्याग्रह के कार्यक्रम को वापस ले लिया, किन्तु १९२८ मे पुन एक सग्राम के बीज बोये जाने लगे। इसका मूल कारण था 'साइमन कमिशन'। इस वर्ष की महत्त्वपूर्ण घटना थी 'बारडोली-सत्याग्रह' और कलकत्ता-काग्रेस, जिसने सरकार को अतिम चेतावनी देते हुए यह प्रस्ताव पास किया- "अगर ब्रिटिश पार्लमेंट इस विधान को* ज्यों का त्यों ३१ दिसम्बर १९२९ तक या उसके पहिले स्वीकार कर ले, तो यह काँग्रेस इस विधान को अपना लेगी, बशर्ते कि राजनैतिक स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन न हो। लेकिन यदि उस तारीख तक पार्लमेट उसे मजूर न करे, या इसके पहिले ही उसे नामजूर कर दे, तो काँग्रेस देश को यह सलाह देकर कि वह करों का देना बन्द करदे और अन्य तरीकों से, जो पीछे निश्चित हों, अहिंसात्मक असहयोग का आदोलन सगठित करेगी"[1] साथ ही इस प्रतीक्षा के समय के भावी-कार्यक्रम की रूप-रेखा भी खींची गई। इसमें एक निर्णय यह था "स्त्रियों की अयोग्यताओं को दूर करने के लिए प्रयत्न किया जायगा और उन्हे राष्ट्र-निर्माण के कार्य में भाग लेने को प्रोत्साहित और आमन्त्रित किया जायगा।"[2]

सन् १९२९ की तीव्रता से घटनेवाली घटनाओं ने शीघ्र ही सविनय-अवज्ञा-आदोलन के दूसरे और पहिले से भी अधिक प्रबल दौर (१९३०) को आमन्त्रित कर लिया। २६ जनवरी १९३० को देश भर में गाँव-गाँव और नगर-नगर में 'स्वाधीनता का घोषणा-पत्र'[3] सुनाया गया, जिसने शैथिल्य को दूर करके देश के जीवन में एक नवीन जागृति, स्फूर्ति और ओज भर दिया। उस दिन प्रकट हो गया कि "ऊपर-ऊपर दीखनेवाली शिथिलता और निराशा की तह में कितनी असीम भावना, उत्साह और स्वार्थत्याग की तैयारी दबी पड़ी थी। स्वदेश-भक्ति और आत्म-बलिदान के अगारे राज-भक्ति या कानून और व्यवस्था की गुलामी की राख से केवल ढके हुए थे। जरूरत इतनी ही थी कि भावना एव उत्साह के लाल अगारों पर जमी हुई राख को फूँक मार कर हटा दिया जाय।"[4] फरवरी मास के मध्य मे "सविनय अवज्ञा" की योजना तैयार की गई और १२ मार्च को साबरमती के रेतीले तट पर हजारों नर-नारी उस महान् राष्ट्रीय घटना को देखने के लिए एकत्र हुए जो 'एक महान् आन्दोलन का महान् आरभ था।' इस आदोलन में गाँधीजी ने देश की महिलाओं के सम्मुख भी कार्य-क्रम रखा था और गिरफ़ार होने से पहिले दान्डी में अतिम सन्देश देते हुए उन्होंने कहा था — मेरी

---

*नेहरू कमिटी की रिपोर्ट में जो शासन विधान की योजना उपस्थित की गई थी।

[1] का० का इ० भाग ३, अध्याय ६, पृ० २८७

[2] ,, ,, ,, अध्याय ९, पृ० २८९

[3] ,, ,, भाग २, अध्याय २, पृ० ३१४—५

[4] ,, , भाग ४ अध्याय २, पृ० ३१५

गिरफ़्तारी के बाद जनता या मेरे साथियों को घबराना न चाहिए। हमारा मार्ग निश्चित है। गाँव-गाँव को नमक बीनने या बनाने निकल पड़ना चाहिए। स्त्रियो को शराब, अफीम और विदेशी कपड़े की दूकानो पर धरना देना चाहिए।"[१] फलत सरकारी दमन-चक्र की अत्यत कठोरता और हृदयहीन अत्याचारो के रहते हुए भी आन्दोलन की शक्ति नेताओं की गिरफ़्तारियों के बाद भी कम नहीं हुई। बम्बई के स्वयसेवक सगठन में कोई कसर बाकी न थी। स्त्रियाँ आती ही गईं और जब ये कोमलांगियाँ केसरिया साड़ी पहन-पहन कर अत्यत विनम्रता के साथ धरना देती थी, तो लोगो के हृदय बात की बात मे पिघल जाते थे। कोई दूकानदार अपने माल पर मुहर न लगवाता तो उसी की पत्नी धरना देने आ बैठती।"[२] २७ जून को कांग्रेस कार्य समिति ने अपनी प्रयाग की बैठक मे जो प्रस्ताव पास किये, उनमे से एक भारतीय महिलाओं को आदोलन मे और महत्त्वपूर्ण भाग लेने के सम्बन्ध मे, बधाई का था।[३] करांची-कांग्रेस मार्च १९३१ के सक्रिय आदोलन के अत मे, उन सब व्यक्तियो, खास कर महिलाओ को, बधाइयाँ दी गईं, जिन्होंने गत सविनय-अवज्ञा-आदोलन मे महान् कष्ट उठाये थे। कांग्रेस ने निश्चय किया कि वह ऐसा कोई शासन-विधान स्वीकार न करेगी, जिसमे मताधिकार के सम्बन्ध में स्त्रियो और पुरुषों मे भेद किया गया हो।[४]

स्वराज्य के लिए आदोलन के इतिहास में चिरस्मरणीय स्तभ रूप सन् १९३० का अत होते-होते, आगामी वर्ष के स्वाधीनता दिवस (२६ जनवरी) की आधी रात से पहले गाधीजी आदि जेल से रिहा कर दिए गए। इस रिहाई का उद्देश्य था शान्तिपूर्वक समझौता करना। अस्तु, गाधी-अर्विन समझौता हुआ (५ मार्च १९३१), जिसके अनुसार सविनय-अवज्ञा आदोलन बद कर दिया गया।

किन्तु यह समझौता कांग्रेस के चरम ध्येय स्वराज की प्राप्ति किसी प्रकार भी न था। ५ मार्च की शाम को अपने युगातरकारी वक्तव्य मे गाधीजी ने कहा था "बात यह है कि कांग्रेस को एक निश्चित उद्देश्य तक पहुँचना है और उस उद्देश्य तक पहुँचे बिना विजय का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। इसलिए मैं अपने सब देशवासियो से और अपनी बहनों से आग्रह करूँगा कि वे फूल कर कुप्पा होने के बजाय —यदि समझौते में फूल कर कुप्पा हो जाने की कोई ऐसी बात है—परमात्मा के आगे सिर झुकाव और उनसे प्रार्थना कर कि उन्हें वह इस समय उनका ध्येय इनमे जिस मार्ग पर चलने का तकाजा करता है, उस पर चलने की शक्ति व बुद्धि प्रदान करे, चाहे वह मार्ग कष्ट सहन का हो और चाहे वह धैर्य

---

[१] कां० का इ०—भाग ४, अध्याय २, पृ० ३७२

[२] ,, ,, ,, ,, ,, अध्याय २, पृ० ३४२

[३] समिति भारतीय महिलाओं को इस बात की बधाई देती है और उनकी प्रशसा करती है कि वे राष्ट्रीय आदोलन में दिन दूने रात चौगुने उत्साह से भाग ले रही हैं और प्रहारों, दुर्व्यवहारों और सजाओं को वीरतापूर्वक सहन कर रही हैं।
(कां० का इ० भाग ४, अध्याय २, पृ० ३७१)

[४] कां० का० इ० भाग, ५, अध्याय १, पृ० ३९६

पूर्वक संधि-वार्ता या विचार-विनिमय करने का हो[1]। अस्तु, समझौते पर हस्ताक्षर होने के बाद कांग्रेस पुन जीवित होकर अपने लक्ष्य की प्राप्ति में प्रयत्नशील हो गई। कशमकश और वाद विवाद, आशा और निराशा, दमन और अहिंसा के बीच भारतीय स्वतन्त्रता का संघर्ष जारी रहा। परिस्थितियों ने पुन सत्याग्रह अनिवार्य कर दिया और जनवरी १९३२ में युद्ध नवीन उत्साह के साथ प्रारंभ हो गया। सरकारी आर्डिनेंसों और अत्याचारों के राज्य के बीच कलकत्ता में कांग्रेस का अन्यन उत्साहपूर्ण अधिवेशन हुआ (१९३३), जिसमें सत्याग्रह और ह्वाइट पेपर के संबंध में महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुए[2]। सत्याग्रह का यह तीसरा दौरा अगस्त १९३३ और मार्च १९३४ के मध्य चोरों पर रहा। इस संबंध में श्री सीतारमय्या का कथन है 'गांधीजी ने जो मार्ग दिखाया था, उस पर १९३३ के अगस्त से १९३४ के मार्च तक देश भर में कांग्रेस-कार्यकर्ता लगातार चलते रहे और सत्याग्रहियों के अटूट ताँते ने युद्ध को जारी रक्खा। आंदोलन के अंतिम युग में हरेक प्रान्त ने कितने सत्याग्रही दिये इसका पूरा ब्यौरा मौजूद नहीं है। केवल इतना ही कहना काफी है कि हजारों ने आह्वान का उत्तर दिया और,जैसी परिस्थिति थी, उसको देखते हुए, हर एक प्रान्त ने स्वतन्त्रता के युद्ध के लिए जितना कुछ वह कर सकता था, किया।[3]

उक्त स्वतन्त्रता-युद्ध का संक्षिप्त सिंहावलोकन स्पष्ट कर देता है कि २० वीं शताब्दी के इन १५ वर्षों में भारतीय मस्तिष्क कितना अधिक विस्तृत और उन्नत हो गया था। जागृति देश के कोने-कोने में पहुँच गई थी और देश के चरणों में असंख्य स्त्रियों ने भी तन-मन और धन की निःस्वार्थ बलि दी जिसके कारण उन्हें अभूतपूर्व प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।

यह १५ वर्ष वह थे जब हमारा परिवर्तन-युग का काव्य अपनी पूर्ण युवावस्था को प्राप्त हो रहा था। अनेक कवियों ने आंदोलन में सक्रिय भाग लिया और उनकी बहुत-सी कविताये तो बंदीगृह के सींखचों के पीछे ही लिखगई। स्वाभाविक है कि ऐसे कवियों की रचना राष्ट्रीयता और स्वतन्त्रता की भावना में ओत-प्रोत हो। "युग का गायक, युग के परिवर्तनों में आँखें मूँद कर अपनी कला को पुरुषार्थमयी नहीं रख सकता।"[4] कवि की वाह्यदर्शी आँखों ने नारी का भी वह रूप देखा, जो युग और देश की आवश्यकता थी। और वह कह उठा —

कवि तू वर्षा न वीर रस गावै
उथल-पुथल कर अखिल लोक में व्यापक गान सुनावै।
कब ते या कल कुसुम कुंज में रमि रमणी छवि ध्यावै॥
करुण किंकिणि झनक सुनत जेहि तेहि प्रमत्त ह्वै धावै॥

[1] का० का इ भाग ५, अध्याय १ पृ० ३८५।
[2] " " " भाग ६, " २, पृ० ४८२।
[3] " " " " " " " पृ० ४८८।
[4] माखनलाल चतुर्वेदी—हिमकिरीटिनी आत्मनिवेदन पृ०२.

अज हूँ किन गभीर नादु कै शक्ति मूर्ति प्रगटावै
किन नख सिख एक कोटि वरणन की कारख धाय मिटावै ॥[1]

समाज-सुधारवादी-भावना के पीछे वह व्यापक आंदोलन था, जिसका लक्ष्य गृहो की बंदिनी नारी को सामाजिक अत्याचारो से मुक्त करके उसके व्यक्तित्व को जागृत करना था। समाज-सुधार-सम्बन्धी आंदोलन गत युग के समान इस युग में भी प्रबल रूप धारण किये रहा। यहाँ परिवर्तन युग में होनेवाले कुछ सुधारों का उल्लेख करना अनुचित न होगा।

इस युग में होनेवाले प्रमुख सुधार बाल विवाह तथा दवदासी प्रथा से सबन्धित थे। १८६० में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के प्रयत्न के फलस्वरूप सरकार ने एक एक्ट के द्वारा लड़कियों की विवाह वयस १० वर्ष निश्चित की थी। किन्तु १६२१ की गणना में देखा गया कि ३६ प्रतिशत लड़कियों का विवाह दस वर्ष की अवस्था से पूर्व ही हो जाता है। १६२८ में शिमला में एज आव कंसेंट कमिटी (Age of Consent Committee की बैठक हुई, इसकी रिपोर्ट आने पर १६३० में राय साहब हरविलास शारदा चाइल्ड मैरिज बिल पास हुआ। इस एक्ट के अनुसार लड़कियों का विवाह १४ वर्ष की अवस्था से पूर्व करना अपराध निर्धारित किया गया।

लगभग तीसरी शताब्दी ई० से चली आती हुई देवदासी प्रथा का अन्त भी इसी युग में हुआ। डा० मुथुलक्ष्मी रेड्डी आदि के प्रबल आंदोलन के फलस्वरूप १६२५ में एक एक्ट पास किया गया जिसके द्वारा भारतीय दण्ड-विधान (Indian Penal Code) की उस धारा को, जो नाबालिग व्यवसाय को फौजदारी अपराध (Criminal offence) सिद्ध करती है, देवदासी-प्रथा के ऊपर भी लागू कर दिया। फल यह हुआ कि इस प्रथा का अंत हो गया।

इन प्रमुख सुधारों के अतिरिक्त अखिल-भारतीय स्त्री सभा आदि अनेक संस्थाओं ने पर्दा, दहेज आदि कुप्रथाओं को, जिसके कारण समाज में नारी की अवस्था अत्यन्त दयनीय थी दूर करने के लिए प्रबल आंदोलन किया, तथा शिक्षा, विधवा-विवाह आदि के प्रचार के लिए प्रयत्न किया। राष्ट्रीय-सभा ने भी स्त्रियों की सामाजिक अवस्था को प्रचार तथा आंदोलन-द्वारा सुधारने का प्रयत्न किया। गांधी युग के प्रमुख नेता थे, जिन्होंने इस ओर प्रचुर ध्यान दिया।

हम देखेंगे कि इस युग के काव्य पर सुधारान्दोलनों की छाया गहरी है। गोपाल-शरणसिंह आदि कवियों ने मानों सुधारकों के स्वरों की ही प्रतिध्वनि की है।

इस प्रकार परिवर्तन-युग की प्रमुख भावधाराओं का सिंहावलोकन करने के पश्चात् अगले अध्यायों में हम इन मूल भाव-धाराओं के आधार पर निर्मित नारी भावना को देखेंगे।

---

[1] वियोगी हरि—वीर-सतसई, वीर वाणी

अध्याय ४

परिवतन-युग में नारी का सत्-रूप

प्रमुख विषय पर आने से पूर्व इस बात को स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि परिवतन युग मे नारी-भावना की अभिव्यक्ति दो ढग से हुई है—[1]सीधे ढग से अर्थात् नारी को ही लेकर तत्सबन्धी दृष्टिकोण का स्पष्टीकरण,[2] रूपकात्मक या प्रतीकात्मक ढग से अर्थात् किसी अमानवीय वस्तु को नारी के रूप मे देखकर भावाभिव्यक्ति। द्वितीय प्रकार को हम अध्याय ८ मे देखेगे। आगे का समस्त अध्ययन सीधे ढग की अभिव्यक्ति पर आधारित है।

अस्तु, परिवर्तन-युग का कवि आदर्शवादी है। यद्यपि मध्ययुगीय आदर्शवाद से उसने छुटकारा पा लिया है, किन्तु कल्पनापेक्षी और पलायन-प्रिय होने के कारण उसने कुछ आदर्शों का निर्माण किया है। इस युग के कवि का आदर्शवाद अत्यन्त प्राचीन भारतीय आदर्शों पर आधारित है, इसलिए हम उसे सास्कृतिक कह सकते हैं।

आदर्शवादी होने के कारण परिवर्तनयुगीय कवि ने नारी को महान् और गौरवमय रूप मे देखा है। वह नारी को हृदय की अकथनीय विभूतियो से सपन्न, सौदर्य और सुखमा से प्रकाशमान् एक अद्भुत अलौकिक शक्ति के रूप में देखता है। "प्रत्येक भवन में नारी बन कर अपनी अभिराम छवि से आलोक" करनेवाली इस महामाया की रचना विधाता ने अपने ही स्वरूप का विस्तार करने के लिए की थी, और साथ ही रचनाकला उसे उपहार-स्वरूप प्रदान कर दी थी।[1] शून्य मूर्तता मे साकार मूर्तता भर कर शाश्वत से चेतन को बाँधे हुए नारी अवतरित हुई।[2]

उसका राशि-राशि सौन्दर्य ससार में बिखर पड़ा और—

"प्रथम श्वास लेते ही तेरे,
लहरी जग में सुरभि तरग।

---

[1]जादूगरनी छविमान।
किया विधाता ने तुमको रच
अपना ही स्वरूप विस्तार।
अपना चमत्कार मायाविनि,
दिया तुझे उसने उपहार।
(हरिकृष्ण प्रेमी-जादूगरनी पृ० ३, १)

[2]फूका ज्योंही शून्य मूर्तता में अमूर्तता भर साकार
शाश्वत से चेतन को बाँधे देवि! हुआ तेरा अवतार।
(नगेन्द्र वनबाला नारी पृ० २२)

देख प्रथम मुस्कान विश्व के,
अंग-अंग में आए रंग ॥
ऊषा ने मधुमय लाली ली,
और साकी ने स्वर्ण अपार।
चन्द्रा ने चाँदी की आभा,
ऋतुओं ने चित्रित शृङ्गार ॥

'ससृति के प्रथम प्रहर से जगत् इसी रूप की वन्दना कर रहा है। अनेक गीतो, छदों, काव्यो, उपन्यासो, नाटको मे इसी छवि का अभिवादन किया गया है।"[२] इस प्रकार वह चिरसुन्दरी विश्व-विपिन में विकसित होती है, और अपने मधुदान से विश्व की ज्वाला को शात करती है। ससार के समस्त ताप उस सौन्दर्य-लहरी मे स्नान करने से नष्ट हो जाते हैं।[३] कवि की दृष्टि में उस छवि मे अपने को लीन करनेवाला भक्त अमर हो जाता है।[४] आधुनिक कवि को नारी के सौन्दर्य से प्रेम है,[५] यहाँ तक कि वह उसका अनुकरण भी कर बैठता है —

घने लहरे रेशम के बाल—
धरा है सिर में मैंने देवि।
तुहारा यह स्वर्गिक शृङ्गार
स्वर्ग का सुरभित भार।[६]

[१] नगेन्द्र—बनबाला नारी, पृ० १२
[२] हरिकृष्ण प्रेमी—जादूगरनी प्राक्कथन।
[३] सुन्दरता की सरिता, तेरे,
सरस स्नेह मे जग स्नान,
पाप ताप अभिशाप शांत कर
हो जाता है मगल अम्लान।
(वही—पृ० ४, ३)
[४] जो करता है तेरी छवि में,
अपना जीवन तन्मय लीन,
वही अमर हो जाता सुन्दर
हो जाता है सीमाहीन। (वही—पृ० ६, १)
[५] स्नेहमयि सुन्दरतामयि
तुम्हारे रोम-रोम से नारि।
मुझे है स्नेह अपार
(सुमित्रानन्दन पन्त—पल्लव नारी रूप पृ० १८)
[६] सुमित्रानन्दन पन्त—पल्लव "नारी-रूप" पृ० १८

कवि नारी के अवयव की कोमलता, सुकुमारता, उसकी मुस्कान की आभा, तथा लज्जाशीलता पर मुग्ध है।[१] नारी-सौन्दर्य सरोवर की एक तरंग है, किन्तु चचल और उच्छृङ्खल नहीं, वरन् लज्जाशीला।[२] कवि की सौन्दर्य दृष्टि जागरण के कारण अलस, नेत्रों, अरुण मुख, निर्बंध केशों और तन द्युति से आकर्षित होती है।[३] उस वीणा से मृदु-सी झंकार के सौन्दर्य का पार पान, उसका प्रतिबिम्ब उपस्थित करना कवि के लिए असम्भव हो जाता है।[४] उसे ऐसा प्रतीत होता है मानो—

कभी स्वप्न का थी तुम प्रसार
अब वसुधा की बाल।'[५]

'फूल सी देह,—द्युति न्यारी,
हल्की तूल सी सवारी,
रेणुओं—भली सुकुमारी,
× × × ×
मुसका दी आभा लादी,
उर-उर में गूँज उठा दी,
फिर रही लाज की मारी,
मौन री रंगी छवि प्यारी।
(सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—गीतिका, पृ० ५८ ५५)

'सौन्दर्य सरोवर की वह एक तरंग,
किन्तु नहीं चचल प्रवाह उद्दाम वेग,
संकुचित एक लज्जित गति है वह।
(सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला—परिमल बहू, पृ० १३४)

[३](प्रिय) यामिनी जागी।
अलस पकज दृग अरुण मुख तरुण अनुरागी।
खुले केश अशेष शोभा भर रहे,
पृष्ठ ग्रीवा बाहु उर पर तिर रहे,
बादलों में घिर अपर दिन कर रहे,
ज्योति की तन्वी, तडित द्युति ने क्षमा माँगी।"
(सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला—गीतिका, पृ० २, १)

[४]एक वीणा की मृदु झंकार।
कहाँ है सुन्दरता का पार।
तुम्हें किस दर्पण में सुकुमारि
दिखाऊँ मैं साकार।
(सुमित्रानन्दन पन्त—पल्लव आँसू पृ० २५)।

[५]सुमित्रानन्दन पन्त—गुजन 'अप्सरा' पृ० ८७)

यौवन सौन्दर्य का पूर्णविकास है, इसलिए कवि भावपूर्ण रीति से उस सुन्दरी का चित्रण करता है, जिसने अभी-अभी ही यौवन-प्रांगण मे चरण रखा है।[1] सौन्दर्य को कवि आत्मा की चिरतन पुकार मानता है, और उसके पाने को दिव्य जीवन।[2]

आधुनिक कवि सरल और भोले सान्दर्य की ओर आकर्षित होता है, जिसमे वचकता और गर्व का अभाव हो। इसलिए प्राय देखा जाता है कि वह ग्रामवासिनी[3] का वर्णन अकसर करता है।[4] कवि ने नारी-सौन्दर्य का आकर्षण अनिवार्य माना है। अपने रूप को दिखाकर जब वह प्राणो को प्रमत्त कर देती है तब उसका सामना करने का साहस किसी को नहीं होता न कोई उस आकर्षण की अवहेलना कर सकता है, वरन्

"तेरे चरणों पर झुक जाता,
विस्मित होते ह नादान।"[5]

जगत् उस अमरता के उपवन को सुन्दर कमल पखुड़ी मे अनायास ही बँध जाता है।[6] किन्तु कवि को इस आकर्षण तथा बन्धन से कोई असन्तोष नहीं है, जैसा कि, हम देखेंगे, प्रगतियुगीय कवियो मे उत्पन्न होता है। इसका कारण यह है कि, परिवर्तन-युगीय कवि नारी के मोहन-रूप का पतन का कारण नही मानता। इसके विपरीत अन्धकारमय जीवन की ज्योति ही मानता है।[7] रूप मे मादकता वह अवश्य पाता है किन्तु उसका विश्वास है कि नारी रूप के बन्धन ही मे मोक्ष है और शत-शत युग के योगी उसके

---

[1] रामकुमार वर्मा—रूपराशि, पृ० ३९-४।
देखिए—गुरभक्तसिंह—नूरजहाँ, ३ सर्ग, पृ० २४।

[2] दिव्य जीवन ह छबि का पान,
यही आत्मा की तृषित पुकार।
रामकुमार वर्मा—रूपराशि, पृ० ८, ७।

[3] सुमित्रानन्दन पत —पल्लव ऑसू पृ० २५।
गोपालशरण सिंह —सागरिका, पृ० १६ और ४८

[4] गोपालशरणसिंह —सचिता ग्रामवासिनी पृ० ९, तथा
सोहनलाल द्विवेदी—चित्रा ग्राम वधू पृ० १०

[5] रामधारीसिंह दिनकर—रसवन्ती पुरुषप्रिया

[6] हरिकृष्ण प्रेमी —जादूगरनी, पृ० ७, १

[7] अरी अमरता की उपवन की
सुन्दरतम कोमल जलजात।
अलि सा विश्व बन्द हो जाता
छवि पखुड़ियों में अज्ञात
(वही पृ० १३, २३)

जलती अन्धकारमय जीवन की वह एक शमा है।
मनोमोहिनी ह, वह मनोरमा है,
(सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला—परिमल बह, पृ० १३४)

द्वार पर इसकी याचना करते हैं। समाधि में भी उसके तीव्र आकर्षण का शर बिध जाता है। कवि की दृष्टि में उसकी ओर दौड़ पड़ने से ही निर्वाण प्राप्त हो सकता है, और अनेक जप-तप, साधन आदि उसके चरणों में नत हो जाते हैं। नारी-सौन्दर्य यद्यपि एक बन्धन है, किन्तु प्रिय ही।[२] जब वह प्रत्यक्ष दर्शन देती है, तो जग की आँखें उसकी ओर इस प्रकार घूम जाती हैं, जैसे सूर्य की ओर सूर्यमुखी, और उस समय मनुष्य द्वन्द्वातीत हो जाता है

'जीवन-मरण, अतृप्ति, तृप्ति औ'
सुख, दुख तृष्णा, प्यास पुकार,
एक घड़ी को छिप जाते हैं,
जब दर्शन देती सुकुमार।[३]

उस महामाया-रूपिणी नारी का अक्षय-सौन्दर्य निरन्तर परिवर्तित होता जाता है, इसलिए कवि छवि की अकथ कथा को लिखवाने में अपने को असमर्थ पाता है[४]

---

[१]तेरे आकर्षण के शर से,
बिध जाते समाधि के प्राण,
तू ही फिरती पलकों में,
'शम्भु' लगाते हैं जब ध्यान।
तेरी ओर दौड़ पड़ने में,
अनायास मिलता निर्वाण।
तेरे चरणों पर झुक जाते,
जप तप साधन व्रत कल्याण।
(हरिकृष्ण प्रेमी—जादूगरनी पृ० १४, ३-४)

[२]री सौन्दर्य-मधुरिमा बनती
तू बन करुणाधारा,
फिर भी तेरा रूप जगत को
लगता है कितना प्यारा!
(वही पृ० ४१, ४)

[३]वही पृ० १९, ४

[४]छवि की अकथ कथा लिख पायें
कब कवि के ओछे अक्षर।"
(हरिकृष्ण प्रेमी—जादूगरनी, पृ० २० १)

नारी सौन्दर्य मे कवि ने ज्योत्सना की उज्ज्वलता, शशि की मादक मुसकान, चपला की चकाचौंध पाई है, किन्तु आधुनिक कवि की दृष्टि मे नारी-सौन्दर्य उपमान-चमत्कार उपस्थित करने का साधन नहीं है। नारी-सौन्दर्य मे उसने वास्तविक महानता देखी है।[1] उस रूप के क्षण-मात्र के दर्शन से नश्वर और असुन्दर जगत् मगलमय हो उठता है।[2] वास्तव में आधुनिक कवि ने सौन्दर्य के मगलमय प्रभाव पर ही विशेष बल दिया है। रीतिकालीन कवि की भाँति आधुनिक कवि नारी के अगों के वाह्य रूप-मात्र की प्रशसा करके नहीं रुक जाता, वरन् अवयव के सौन्दर्य को भाव-सौन्दर्य के साथ रखकर देखता है। उसका विश्वास है कि वाह्य-सौन्दर्य आतरिक सौन्दर्य की उचित पूर्ति है। प्रसाद ने दीर्घकारायण के शब्दों में यही स्पष्ट किया है। पुरुष क्रूरता है तो स्त्री करुणा है, जो अतर्जगत् का उच्चतम विकास है, जिसके बल पर समस्त सदाचार ठहरे हुए हैं, इसलिए प्रकृति ने उसे उतना सुन्दर और मनमोहक आवरण दिया है—रमणी का रूप[3]।" कवि की धारणा है कि हृदय के सौन्दर्य की ही अभिव्यक्ति नारी का शारीरिक सौन्दर्य है "मन की छवि तन पर छन छाई।"[4] सुन्दर कर वरदानों के प्रतीक प्रतीत होते हैं।[5] फलत नारी का रूप आधुनिक कवि के लिए वासना और पतन का सदेश लेकर नहीं आता। इसके विपरीत यह जीवन की प्रेरणा है, कर्म पथ पर अग्रसर होने का सदेश है। अनिद्य-सुन्दरी उषा के सम्बन्ध मे पन्त कहते हैं

"तुम जग की स्वप्न शिराओं में,
नव जीवन रुधिर सदृश छाई,
मानस में सोई, भावों की
लो, अखिल कमल कलि मुस्काई।
आशाकांक्षा के कुसुमों से,
जीवन की डाली भर लाई,

---

[1] वही—पृ० २०, २-३।

[2] एक निमिष को भी यदि, सुन्दरि,
राह भूल कर आती है,
अनृत, असुन्दर, अशिव जगत् को,
अजर-अमर कर जाती है।
(वही—पृ० २०, ४)

[3] जयशकर प्रसाद—अजातशत्रु, ३, ४, पृ० १२६।

[4] सुमित्रानन्दन पन्त—ज्योत्सना, पृ० ४५।

[5] तुम्हारे सुन्दरि, कर सुन्दर,
मिलाए हुए वर अमर मर।
(सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—गीतिका, पृ० ६९, ६६)

जग के प्रदीप में जीवन की,
लौ सी उठ, नव छवि फैलाई।"[१]

'प्रसाद' की काम-दुहिता श्रद्धा मनु के लिए यह सदेश लाती है —

"काम मगल से मण्डित श्रेय,
सर्ग, इच्छा का ह परिणाम।
निरस्कृत कर उसको तुम भूल,
बनाते हो असफल भव धाम।"[२]

'निराला' ने तुलसी की पावन जीवनी में इसी तथ्य को प्रमाणित किया है।[३]

नारी-सौन्दर्य शुभ-सदेश-वाहक ही नहीं, तृप्ति और शाति भी है। अवसाद, वेदना, ईर्ष्या तथा जीवन ज्वाला से ध्वस्त व्यक्ति के लिए वह शीतल छाया है।[४] वास्तव मे नारी के पास सौन्दर्य ही एक ऐसी वस्तु है, जिसको लेकर वह पुरुष के जीवन मे प्रवेश कर पाती है और तब पुरुष की हिसक-वृत्तियाँ भी नम्र हो जाती हैं।[५]

नारी के सौन्दर्य के इस मगलमय प्रभाव के मूल में है, उसका भाव सौन्दर्य और "यत्राकृति तत्र गुण इति लोकेऽपि ज्ञातम्।" आधुनिक कवि इस विश्वास को लेकर नारी की वाह्य आकृति पर ही नहीं रुक जाता, वरन् उसके भाव सौन्दर्य का भी पूर्ण रूप से अवगाहन करता है। वह शरीर और हृदय को पृथक्-पृथक् नहीं, वरन् एक साथ रख कर देखता है।[६] इसीलिए श्रद्धा के रूप-मात्र पर आसक्त मनु की गलती को कवि ने भली-भाँति स्पष्ट किया है, इतना कि स्वय मनु को ही कहना पड़ता है

' अरुणाचल मन मन्दिर की वह,
मुग्ध-माधुरी नव प्रतिमा,
लगी थिरकने स्नेहमयी-सी,
सुन्दरता की मृदु महिमा।

---

[१] सुमित्रानन्दन पन्त — ज्योत्सना, पृ० १२८।
[२] जयशकर प्रसाद - कामायनी श्रद्धा, पृ० ४६।
[३] सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—तुलसीदास, पृ० २७, ४८।
[४] जयशंकर प्रसाद—कामायनी निवद, पृ० १७० तथा वासना, पृ० ६८।
[५] मादक अग उभार, अर्ध-मीलित
नयनों से लख सविलास,
उस हिंसक पशु नर को पल में,
बना लिया चरणों का दास,
(नगेन्द्र—वनबाला नारी, पृ० २३)
देखिए—रामधारीसिह दिनकर—रसवन्ती . नारी पृ० २७।
[६] सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—गीतिका, पृ० ४१, ३८.
सुमित्रानन्दन पन्त—गुजन, पृ० ५६, २७।

उस दिन तो हम जान सके थे,
सुन्दर किसको है कहते।[१]

और इसीलिए इस युग का कवि उस 'आधुनिका' से घृणा करता है जो सौन्दर्य से मडित होने पर हृदय से रहित है।[२]

परिवर्तन-युग के कवि ने नारी का भाव-सौन्दर्य माना है उसके हृदय की शुचिता, सरलता मृदुता-आदि मे। आधुनिक कवि प्रगल्भ नायिका की चतुरता और प्रौढता से अधिक आकृष्ट है भोलेपन अकृत्रिमता और सदश बर्ताव से।[३] इसीलिए वह अपनी नायिका के सम्बन्ध मे कहता है

"उषा का था उर मे आवास,
मुकुल का मुख में मृदुल विकास,
चाँदनी का स्वभाव में भास,
विचारों में बच्चों की साँस।[४]

इस भावना के प्रमुख प्रतिपादक कवि पन्त हैं, जिन्होने जग को आदरणीय तथा यौवन को रमणीय मानते हुए एकमात्र शैशव को ही स्नेह-पात्र और सुन्दर माना है,[५] किन्तु इस युग के अन्य कवि भी इस भावना को अपनाते दृष्टिगोचर होते हैं[६]।

---

[१] जयशकरप्रसाद—निवद, पृ० १६५।

[२] नारी की सौन्दर्य-मधुरिमा औ महिमा से मण्डित,
तुम नारी उर की विभूति से हृदय सत्य से वंचित।
प्रेम, दया, सहृदयता, शील, क्षमा, पर-दुखकातरता।
तुम में तप सयम सहिष्णुता नहीं त्याग तत्परता।
(सुमित्रानन्दन पन्त—ग्राम्या आधुनिका, पृ० ८३

[3] तरल वे कटाक्ष नहीं, सरल हास्य सभी वहीं।
(मैथिलीशरण गुप्त—कुणाल—गीत पृ० ८२, ५४)

[४] सुमित्रानन्दन पन्त—पल्लव आंसू, पृ० २५।

[५] शैशव ही है एक स्नेह की वस्तु सरल, कमनीय
(वही उच्छ्वास सावन- भादों, पृ० ५)

[६] कली सी है सुन्दर सुकुमार, सरलता की छवि है साकार,
तितलियों से हैं उसके प्यार, सीखती है उनसे चुपचाप,
हृदय का वह आदान-प्रदान, बालिका है भोली नादान।
(गोपालशरणसिंह सागरिका पृ० ८५, ४२)
देखिए वही- पृ० १६, ६ और —
सरलता की जो है प्रतिमूर्ति, सहजता है जिसकी प्रिय नीति,
बड़े कोमल हैं जिसके भाव, परम पावन है जिसकी प्रीति,
(अयोध्यासिंह उपाध्याय - वैदेही-वनवास, २, ४२, पृ० २२)

फलत नारी की वह निश्छल छवि, जो योगी के हृदय के समान विकारहीन है, ससार के प्यार का केन्द्र हो जाती है।[1]

सरल और भोली नारी को कवि ने हृदय का प्रतिनिधि माना है। उसके कोमल हृदय को उसने मधुर-भावों का भडार पाया है।[2] नारी का हृदय ही आधुनिक कवि के लिए स्वर्गागार है

तुम्हारा मृदु उर ही सुकुमारि,
मुझे है स्वर्गागार।[3]

जब नारी अपने हृदय के अमर प्रणय के शतदल पर प्राणिमात्र को स्थान देती है, तो स्वभावत कवि कह उठता है—

यदि स्वर्ग कही है पृथ्वी पर,
तो वह नारी उर के भीतर[4]

इस भावना के प्रथम प्रबल प्रतिपादक हैं जयशकर प्रसाद। उनकी निश्चित धारणा है कि नारी-शक्ति उसके हृदय की विभूतियों मे निहित है और उन्हें विकसित करके ही गौरवान्वित होती है। हृदय का विशेष धर्म है भाव-प्रवणता। नारी मे इसका योग होता है। नारी के भावुक हृदय में स्नेह और ममता, अहिंसा और करुणा, विश्वास और उदारता, दया और क्षमा तथा सेवा और त्याग के भावों का समन्वय होता है। इनको लेकर "वे अधिकार जमा सकती हैं उन मनुष्यों पर, जिन्होंने समस्त विश्व पर अधिकार किया हो"[5] 'मनुष्य कठोर परिश्रम करके जीवन सग्राम में प्रकृति पर यथाशक्ति अधिकार करके भी एक शासन चाहता है, जो उसके जीवन का परम ध्येय है, उसका एक शीतल विश्राम है। और वह स्नेह-सेवा-करुणा की मूर्त्ति तथा सान्त्वना के अभय वरद हस्त का आश्रय, मानव समाज की सारी वृत्तियों की कुंजी, विश्व-शासन की एकमात्र अधिकारिणी प्रकृति-स्वरूपा स्त्रियों के सदाचारपूर्ण स्नेह का शासन है।"[6] इतना ही नहीं 'स्त्रियों का कर्तव्य है कि

---

[1] पहली ही भोली चितवन मे,
योगी के उर सी अविकार,
इस अनजान जगत का, सरले,
सहज डुबा लेती सब प्यार।
(हरिकृष्ण प्रेमी—जादूगरनी पृ० २२, २)

[2] तुम्हारा कोमल हृदय विशाल,
मधुर भावों का स्वर्गागार।
(उत्तमचन्द श्रीवास्तव—नारी-गीत, चाँद, नवम्बर, १९३४)

[3] सुमित्रानन्दन पन्त —पल्लव नारीरूप, पृ० १८।

[4] सुमित्रानन्दन पन्त—ग्राम्या स्त्री, पृ० ८२।

[5] जयशकर प्रसाद—अजातशत्रु, ३, ४, पृ० १२४.

[6] वही, पृ० १२५ —१२६,

पाशव वृत्तिवाले क्रूरकर्मा पुरुषों को कोमल और करुणाप्लुत करे, कठोर पौरुष के अनंतर उन्हे जिस शिक्षा की आवश्यकता है उस स्नेहशीलता, सहनशीलता और सदाचार का पाठ उन्हें स्त्रियों से सीखना होता है"[1]। प्रसाद ने अपनी इन धारणाओं को अपने नाटकों की मल्लिका, वासवी, राज्यश्री मालविका आदि पात्रियों मे प्रमाणित किया है। कवि की इस भावना की चरम और सुंदरतम अभिव्यक्ति हम पाते हैं कामायनी मे, जिसमे कवि ने—

"नारी तुम केवल श्रद्धा हो
विश्वास रजत नग पग तल मे,
पीयूष स्रोत सी बहा करो
जीवन के सुंदर समतल मे।"[2]

कह कर नारी के मूर्ति स्वरूप में श्रद्धा को उपस्थित करके अनंत स्नेह और करुणा का प्रवाह बहा दिया है।

काम की पुत्री श्रद्धा दया और ममता का उन्मुक्त और निर्विकार प्रसाद लिए मनु के अवसादपूर्ण जीवन मे प्रवेश करती है।[3] उसके सेवा-भाव मे किसी प्रकार का स्वार्थ और वासना नही है।[4] उसके स्नेह और करुणा का निरंतर विकास होता जाता है, जो पुरुष मनु की हिंसा और ईर्ष्या से प्रताड़ित होने पर भी हत नहीं होता। पुरुष ने नारी के प्रेम को व्यक्ति-विशेष तक सीमित रखना चाहा है। किन्तु वास्तविकता तो यह है कि नारी का शांत संचित प्यार पशु और पाषाण सबके लिए समरीति से विकीर्ण होता है।[5] यही कारण है कि श्रद्धा मनु के यज्ञ, जो स्वार्थ-पूर्ति के

---

[1] वही, पृ० १२२

[2] जयशंकर प्रसाद— कामायनी . लज्जा, पृ० ८४.

[3] समर्पण लो सेवा का सार
सजल संसृति का यह पतवार,
आज से यह जीवन उत्सर्ग
इसी पद तल में विगत विकार।
दया माया ममता लो आज,
मधुरिमा लो अगाध विश्वास
हमारा हृदय रत्न निधि स्वच्छ
तुम्हारे लिए खुला है पास।
जयशंकर प्रसाद—कामायनी श्रद्धा, पृ० ४९-५०

[4] वही—दर्शन पृ० १८८

[5] पशु कि हो पाषाण सबमें नृत्य का नवछंद,
एक आलिंगन बुलाता सभी को सानंद।

लिए हिंसापूर्ण रीति से किये जाते हैं, से खिन्नहो उठती है [1] वह जीवन का चरम सुख अन्यों के सुख मे प्रतिबिंबित देखती है और हिसा रत मनु को समझाने का प्रयत्न करती है –

औरों को हंसते देखो मनु
हसो और सुख पाओ,
अपने सुख को विस्तृत करलो
सबको सुखी बनाओ।[2]

किन्तु मदाध मनु तो एकान्त स्वार्थ की भीषणता को तभी समझ पाते हैं, जब जीवन मे एक के बाद दूसरी ठोकर खाने पर भी, अपराधो और पापा का भडार एकत्र करके भी, श्रद्धा-द्वारा ही क्षमा किये जाते हैं और चिरतन आनन्द की ओर उसका सहारा लेकर बढते हैं।[3] श्रद्धा की क्षमा और उदारता की शीतल छाया मे इडा भी त्राण पाती है और तभी तो मनु उसका अभिनदन करते हैं –

हे सर्वमगले तुम महती,
सबका दुख अपने पर सहती,
कल्याणमयी वाणी कहती,
तुम क्षमा निलय में ही रहती।[4]

प्रसाद के पथ-प्रदर्शन का अनुसरण युग के अधिकाश कवियो ने किया। मैथिलीशरण गुप्त ने –नारी के "प्रेम-परिपूरित सरल कोमल चित्त की अधिकारिणी सीता, उर्मिला, यशोधरा, कौशल्या, यशोदा, राधा, कुती, सुरभि, तथा अनघ माता आदि को उपस्थित किया है। इन नारियों मे हम असीम करुणा पाते हैं, जो दूसरों के दुख को देख

राशि राशि बिखर पड़ा है शांत सचित प्यार,
रख रहा है उसे ढोकर दीन विश्व उदार।
(वही-वासना, पृ० ६९)

[1] वही कर्म, पृ० ९४

[2] वही—कर्म, पृ० १०४

[3] सब की सेवा न परार्ई
वह अपनी सुख संसृति है,
अपना ही अणु कण कण
द्वयता ही तो विस्मृति है।
(जयशंकर प्रसाद—कामायनी दर्शन, पृ० ८१)

[4] वही, पृ० १८९

कर द्रवित हुए बिना नहीं रहती,[१] और चेतन ही नहीं जड़-प्रकृति तक का स्पर्श करती है।[२] इनमें जन-सेवा की तीव्र आकांक्षा है,[३] और क्षमा की तत्परता।[४] इसी प्रकार सियारामशरण गुप्त के श्रेष्ठी की पत्नी में हम दया और विश्व सुख की आकांक्षा देखते हैं। एक पूँजीवादी स्वार्थी और कठोर-हृदय सेठ की सद्भावनामयी, कोमलहृदया पत्नी अपने नवनिर्मित महल के नीचे दबे झोंपड़ों के असंतोष से पीड़ित है। वह पति को सन्मार्ग पर लाने का यत्न करती है।[५] गुरुभक्तसिंह की नूरजहाँ भी शेर अफगन की तलवार के ताण्डव नृत्य के नीचे बिलपती हुई विधवाओं तथा अनाथ बच्चों को देख कर, करुणार्द्र हो उठती है।[६] और वह आश्चर्य से कहती है —

स्नेह नहीं रहा क्या जनों में, प्रेम-हीन है दुनिया सब।

---

[१]पर, दूसरों के दुःख में मेरा हिया
करुणार्द्र होता है स्वयं,
शिशु-तुल्य रोता है स्वयं,
(मैथिलीशरण गुप्त—त्रिपथगा वकसहार, पृ० ४९,९२)

[२]मैथिलीशरण गुप्त - साकेत, नवाँ सर्ग, पृ० २५।

[३]वही, ११ वाँ सर्ग, पृ० ४२३-४२४।
मैथिलीशरण गुप्त—अनघ, पृ० ११४

[४]मैंने उसे क्षमा किया है,
कह देना आशीष दिया है।
जो अपनी सो सब की आत्मा
सबका भला करें परमात्मा।
(मैथिलीशरण गुप्त—अनघ, पृ० ४९)

[५]झोंपड़े वहाँ अनेक अपुष्ट
दबे हैं हो उच्छिष्ट अनुष्ट।
उन्हीं पर स्थित हो यह सुविशाल
काट सकता है कितना काल।
गिरा दो उसे स्वयं ही नाथ,
भाग्य अपना है अपने हाथ।
(सियारामशरण गुप्त - मृण्मयी लाभालाभ, पृ० १२)

[६]कहीं बिलपती हैं विधवाएँ कहीं अनाथ बिलखते हैं,
एक दूसरे को शोणित का प्यासा सबको लखते हैं।
हरे-भरे लहलहे खेत पर किसने डाला है पाला,
हँसते हरे भरे बागों को किसने हाय जला डाला।
(गुरुभक्तसिंह—नूरजहाँ, सर्ग ११, पृ० ८३)

'हरिऔध' तो इस भावना के महारथी ही हैं। जैसा कि हम द्वितीय अध्याय में देख चुके हैं, वे सर्वप्रथम हिन्दी कवि थे जिन्होंने नायिका को लोक-सेविका और जन-सेविका के रूप में उपस्थित किया। उनकी यह भावना सीता (वैदेही-वनवास) में आकर पूर्ण होती है। निज जीवन में सीता ने जिन जन संहार और विनाश-दृश्यों को देखा था, उनसे दग्ध हो वह चाहती है

"अच्छा होता भली वृत्ति जो भव पाता।
मंगल होता सदा अमंगल दुख न दिखाता॥
सबका होता भला फले-फूले सब होते।
हँसते मिलते लोग दिखाते कहीं न रोते॥
होता सुख का राज, कहीं दुख क्लेश न होता।
हित रत कर कोई न बीज अनहित के बोता।
पाकर बुरी अशांति गरलता से छुटकारा॥
बहती भव में शांति-सुधा की सुंदर धारा॥"[1]

यह मानों युद्धाहत वर्तमान संसार के लिए नारी का मंगलमय भरतवाक्य है, जो आवरण में पौराणिक रहते हुए भी भावना सर्वथा नवीन है।

वास्तव में वह युग महात्मा गाँधी की अहिंसा, सेवाभाव, और विश्व प्रेम से बहुत अधिक प्रभावित रहा है। यही कारण है कि हम कवि को स्वयं-सेविका की ओर विशेष रूप से आकृष्ट पाते हैं।

"रागिनी नहीं है पर प्रेम याग रागिनी है,
मंजु मृदु भावना के लोक की है भागिनी।
होकर विरागिनी भी कर्म अनुरागिनी है,
त्यागिनी है किन्तु तू है विश्व क्षेम कामिनी।"[2]

और नारी का एकमात्र बल अहिंसा बताया जाता है —

"हमें भी बल का है अभिमान, किन्तु वह पूर्ण अहिंसा रूप,
नारियों का यह शस्त्र अनूप, करेगा धर्म कर्म का त्राण।"[3]

नगेन्द्र ने करुणा तथा भक्ति, संयम तथा क्षमा के भावों का मूल स्रोत नारी को मानकर भावना की पूर्ति कर दी है।[4]

---

[1] अयोध्यासिंह उपाध्याय—वैदेही वनवास, सर्ग १, पृ० ९, ४९-५८।
देखिए वही सर्ग ६, पृ० ११०, १०—३५, और वही, सर्ग, २, पृ० २ ४१।
[2] गोपालशरणसिंह—संचिता . स्वयं सेविका, पृ० १७४।
[3] रामकुमार वर्मा—चित्तौड़ की चिता, सर्ग १२, पृ० ११८।
[4] करुणा तेरे अश्रु बिन्दु से रसिक हृदय से भक्ति उदार
संयम तेरे आत्म दमन से, क्षमा सहन से क्षमा विचार।
(नगेन्द्र—वन बाला नारी, पृ० २५)

नारी हृदय की उल्लिखित विभूतियों को लेकर आधुनिक कवि उसे एक शक्ति के रूप में देखता है, जो सृष्टि के सृजन और सहार, पालन और कल्याण की मूल कारण है। आधुनिक कवि नारी को मूल सृजनात्मक और सहारात्मक शक्ति के रूप में देखता है। कवि का विचार है कि नारी शक्ति ने ही अपने को विभाजित करके पुरुष की रचना की थी और उसे ओज अश देकर नारी के लिए माधुरी को रखा था।[१] यह कथा उपनिषदों में वर्णित सृष्टि की कथा तथा बाइबिल में कथित स्त्री-पुरुष निर्माण प्रसग से सर्वथा भिन्न है। आधुनिक कवि की दृष्टि मे नारीरूपिणी महत् शक्ति का सयोग ही सृष्टि का अवलम्ब है।[२] नारी के लघु शरीर मे सृजन, पालन और सहार की समष्टि है। अधरों में सुधा है, अचल में पयस्विनी और नेत्रों में विष।[३] प्रलय और सृजन पर उसका समान अधिकार है,[४] उसके एक सकेत से सृष्टि और एक से प्रलय हो सकती है।[५] इच्छा मात्र से वह क्षण भर में सहस्रों विश्वों को बना देती है और पल भर मे सब को मिटा देती है।[६] उसके प्रलयकर रूप के सम्मुख विधाता भी नत मस्तक हो जाता है, तथा जब उसकी दृष्टि मे मृत्यु और नूपुरों में विनाश का राग बज उठता है, और भृकुटी बकिम हो जाती है तो समस्त विश्व काँप उठता है।[७] जब वह प्रलयकर ताडव रूप धारण कर लेती है तो

"तेरी ताल-ताल पर तारे, टूट-टूट कर गिरत हे।
तेरी आँखों के इगित पर, रवि शशि के रथ फिरते हैं"।

---

[१] पर जब तेरी रूप ज्वाल को विश्व न पल भर सका सभाल,
अपने को बस दो अगों में बाँट लिया तुमने तत्काल।
होने लगा पृथक् उस क्षण से, ओज माधुरी का सम राज,
नर ने लिया रुधिर का प्याला तुमने मधु मदिरा का साज।
(नगेन्द्र—वन-बाला नारी, पृ० २३)

[२] सकल सृष्टि का अवलब है, शक्तिमयी तेरा संयोग।
(हरिकृष्ण प्रेमी—जादूगरनी, पृ० ९९, १)

[३] सुधा अधर में, विष आँखों मे, आँचल में पयस्विनी धार,
देखा इस छोटे से तन मे, जग ने सृजन और संहार।
(नगेन्द्र—वनबाला नारी, पृ० २५)
देखिए—विश्वभित्र, नवबर १९४३ मोहनलाल महतो नारी, ३, तथा
मैथिलीशरण गुप्त—शक्ति- पृ० १२ और ३३

[४] हरिकृष्ण प्रेमी—जादूगरनी पृ० ६८ १

[५] वही—पृ० ९३, २

[६] वही—पृ० ६३, ४.

[७] मृत्यु चमकती है चितवन में नूपुर ध्वनि में बजता नाश,
काँप उठता है विश्व देखकर तेरा बकिम भृकुटि विलास।
(हरिकृष्ण प्रेमी – जादूगरनी, पृ० ६६, २)

[८] वही पृ० ६६, १

जरा और मृत्यु, यौवन और जीवन, प्रलय और सृष्टि उसकी दृष्टि परिवर्तन के ही रूप हैं।[१] अत कवि ने नारी में ज्वालामुखी विनाश और क्रान्ति के साथ विजय वरदान, प्रलय के साथ सृष्टि विधान का सयोग देखा है।[२] देवता भी उसके इस रूप पर मुग्ध हो गये थे।[३] किन्तु इस जगद्धात्री का क्रोध समय पर ही उमड़ता है। आसुरीवृत्तियो के नाश के लिये इस दैवी शक्ति का अवतार होता है

उद्धत होकर असुर करेंगे, जब जब अत्याचार,
तब तब जगदुद्धार करूगी लूगी मैं अवतार।[४]

विनाश उसकी स्वभावगत वस्तु नहीं है। "रोष समय पर किन्तु तोष की धारा बहे सदैव"।[५] वह स्वय विध्वस के पश्चात् अवसाद का अनुभव करती है और जगत को अपनी करुणा से पुन नवजीवन प्रदान करती है।[६] जीवन में नव चेतना का सचार करके वह प्राणदा के रूप में आती है।[७] इतना ही नहीं, वह वरदा देवी भी है। जब विविध सकटों से ग्रस्त होकर मनुष्य उसकी याद करते हैं तब वह अपना वरद हस्त बढ़ा कर आशीर्वाद देती हैं।- यदि उसके आलोक से स्तम्भित होकर मनुष्य मनोवाछित नहीं मांग पाता तो वह अन्तर्यामिनी अज्ञात रूप से ही उसके अभावों को दूर कर देती है।[९] उसका वरदान पीड़ा को सुख और भय तथा मृत्यु को अमरता में परिवर्तित करने वाला

[१]जरा मृत्यु, यौवन जीवन औ, प्रलय सृष्टि अवसान विहान,
तेरी चितवन पर उठते हैं सुख-दुख के कितने तूफान।
(वही पृ० ५९, ४)

[२]तुम्ही हो ज्वालामुखी विनाश,
क्रान्ति की हल-चल युग निर्माण।
तुम्ही हो महाप्रलय की रात,
तुम्ही हो शक्ति, विजय वरदान॥
(चाँद, नवबर १९३४ उत्तमचन्द्र श्रीवास्तव नारी गीत)

[३]मैथिलीशरण गुप्त—शक्ति, पृ० १५

[४]वही पृ० २९

[५]मैथिलीशरण गुप्त शक्ति, पृ० २८

[६]जब विनाश का नशा उतरता, तू मन में पछताती है,
एक बूद आँसू से दुनिया को तू पुन जिलाती है।
(हरिकृष्ण प्रेमी—जादूगरनी, पृ० ६८, ३)

[७]मर हुए भी जो उठते हैं होता नव चेतन सचार
अरी प्राण दे तुझे निरख कर होता है निहाल ससार। (वही, पृ० ७१, ४)

[८]वही—पृ० ९२, ३.

[९]जो उर की अभिलाषाओं को कहते कहते रुक जाता
उसकी झोली में जाने कब चिर वाछित धन भर जाता।
(वही, पृ० ७५, ३)

होता है।[1] वह उदार हृदया अपने कोमल पाणि को पसार कर—

"स्नेह सान्त्वना, शान्ति मुक्ति सी तू हर लेती है दुख भार।"[2]

अस्तु, नारी शक्ति एक कल्याणी शक्ति है। उसकी शुभ दृष्टि भुक्ति मुक्ति प्रदायिनी है और उसी के कारण सृष्टि अमर है।[3] उसके प्रताप में सत्य, शिव और सुन्दर का संयोग है,[4] उसकी मुस्कान से .—

"झंकृत हो उठते प्राणों में मोद मधुरिमा, प्रेम प्रकाश,
मद, मधु, सुरभि, सुधा, शीतलता, तृप्ति, शांति, उल्लास, विकास"।[5]

उसके प्रफुल्ल रूप में जगत की समस्त पावन और सुखद वस्तुओं का समन्वय है[6] अपनी एक स्मृति, एक पुलक और एक अमृतमय दृष्टि से वह मृतप्राय संसार पर नवीन सृष्टि कर देती है,[7] और "मन में नवजीवन धारा" का प्रवाह होने लगता है। वह उदार बन कर समस्त लोक मे मंगल को भर देती है और उसके स्नेह से पृथ्वी आकाश धुल जाते हैं।[8] वह गङ्गा के समान पवित्र और त्रिभुवन को पवित्र करने वाली है। जहाँ उसका प्रवाह है वहीं तृप्ति है, उसी के तट पर तीर्थ है। उसके पावन सरल स्नेह मे स्नान करने के पश्चात् ज्ञान, ध्यान, पूजा, सेवा, व्रत, जप, तप, दानादि की आवश्यकता नहीं रहती। एक ही बार के स्नान से समस्त कल्मषों का नाश हो जाता है, और अमरत्व की प्राप्ति

---

[1] तेरा ही वरदान व्यथा को सुन्दरि, सुन्दर करता है,
मृत्यु अमरता बन जाती है, पीड़ा में रस भरता है।
(वही, पृ० ७७, ४)

[2] वही, पृ० २५, ४.

[3] मुक्ति-मुक्ति देती है दोनों माँ तेरी शुभ दृष्टि,
जीती है तुझमे ही जननी अमर हुई सब सृष्टि।
(मैथिलीशरण गुप्त, शक्ति, पृ० २८)

[4] हरिकृष्ण प्रेमी जादूगरनी पृ० ५, २

[5] हरिकृष्ण प्रेमी-जादूगरनी पृ० २२, १

[6] पुण्य, प्रेम, वरदान, अमृत, सुख, आशा अभिलाषा, कल्याण,
मुक्ति, योग, साधन—सा पावन, दिखता तेरा रूप महान,
जब तू छिटकाती मुस्कान। (वही, पृ० २३, ४)

[7] वही, पृ० ३८, ३, और —
जब जरा-मरण का तम फैला, जीवन की सुषमा शेष हुई,
तुम मुस्काईं फिर अणु अणु में, छाई वसन्त की सुघराई,
तुमने सोहाग की सुषमा से भरदी वसुधा में अमर कान्ति।
(मोहनलाल महतो—नारी विश्वमित्र, नवंबर १९४३)

[8] तू उदार बन कर भर देती, भुवन भुवन में स्निग्ध सुवास।
तेरे सरल स्नेह कण निर्मल, कर देते अवनी आकाश॥
(हरिकृष्ण प्रेमी—जादूगरनी, पृ० ७९, १)

होती है।[1] वह पतित-पावनी है, उसके स्नेह पूर्ण परिचय को पाकर मानव नयन जल से अपने कल्मषों को धोकर सर्वथा निर्मल हो जाता है।[2] इसलिए जगत् श्रद्धा, भक्ति और प्रेम के फूल चढा कर उस पवित्र और मगलमयि की उपासना करता है।[3] उसकी पवित्रता की कल्पना मे कवि स्वर्गंगा में स्नात किरणों की और पुण्य जलधर धौत-दामिनी को याद करता है।[4] जब ससार अशुभ स्वप्नों मे सो जाता है तो उसे जगाती है, "हाथ पकड़ कर जग को मार्ग दिखाती है" और

'मगलमय, तेरे इगित पर चलता है जब जग अनजान,
अनायास ही मिल जाता है उसको चिर दुर्लभ निर्वाण'।[5]

वह असीम वात्सल्यमयी अधकार से भयभीत प्राणों को हृदय से लगाकर आश्वासन, प्रदान करती है।[6] कर्णधार का रूप धारण करके वह जग की चक्कर खाती हुई जीर्ण जीवनतरी को क्षण भर मे पार लगाती है, तथा —

"जब सकट के गर्जन से शिशु सी दुनिया घबरानी है
तब जग शक्तिमयी तेरा ही सहज सहारा लेता है।"[7]

युग-युग से जीवन सग्राम मे जूझते हुए श्रमित मानव की समस्त भ्रातियों का नाश नारी की एक दृष्टि से हो जाता है, और वह चरम मुक्ति और शाति के रूप मे उपस्थित होती है।[8] वह उस कल्पलता के सदृश है जो मानव को दिव्य फल प्रदान करती है।[9] वह

---

[1] वही, पृ० ८०—८१

[2] पतितपावनी, तेरा परिचय, पल में मां के स्नेह समान।
बहा नयन जल में सब कल्मष, निर्मल कर देता है प्राण॥
(हरिकृष्ण प्रेमी – जादूगरनी, पृ० २६, ३)

[3] आँखों में भर कर भावुकता, श्रद्धा, भक्ति, प्रेम के फूल।
जगत आरती करता तेरी, अयि पावनि! अयि मगल मूल॥
(वही पृ०, ३७, ३)

[4] गगन-गगा-स्नात किरणों से, पुनीत विकासिनी।
पुण्यजलधर धौत दिवि की सहचरी द्युति-दामिनी॥
(मोहनलाल महतो—नारी विश्वमित्र, नवबर, १९४३)

[5] हरिकृष्ण प्रेमी – जादूगरनी, पृ० ८१, २

[6] वही, पृ० ८२, ३

[7] वही, पृ० ८५, १

[8] युग युग से मानव जूझ रहा, हे जीवन का सग्राम घोर,
थक गया अभागा, हाथों से टूटी आशा की तुनुक डोर,
जिस ओर तुम्हारी दृष्टि फिरी हो गई शेष विषमयी भ्राति!
तुम चरम मुक्ति, तुम चरम शांति।
(मोहनलाल महतो—नारी विश्वमित्र, नवंबर १९४३)

[9] कल्पवल्ली-सी तुम्ही चलती हुई, बांटती हो दिव्य फल फलती हुई।
(मैथिलीशरण गुप्त—साकेत, सर्ग १, पृ० १६)

वसुधा को ऋद्धि सिद्धि से भरने वाली है। निर्धन कुटीर में भी उसकी स्मित से सिद्धियाँ सुलभ हो जाती हैं। लक्ष्मी और सरस्वती भी उसकी सेविकायें हैं।[1] वह ज्योतिस्वरूपा है, उसके प्रकाश से जग उद्भासित होता है और —

"अंधकार उज्ज्वल हो जाता नभ में तनता स्वर्ण वितान"।[2]

सूर्य और चंद्र उसी के शुभ्र रूप के ज्योति पुंज हैं जो रात्रि और दिवस में आलोक विकीर्ण करते हैं।[3] वह संसृति के भंवर में पड़ी हुई जीवन नौका के लिए एक प्रकाशस्तंभ है जो मार्ग प्रदर्शित करती है।[4] इसीलिए कवि कह उठता है 'तुम हो प्रकाश, तुम हो आशा, तुम हो जीवन, तुम हो संबल।'[5]

इसीलिए कवि ने नारी को 'भूतल पर स्वर्गीय किरण' माना है। कवि कल्पना करता है कि जब पीयूष मोहिनी अपने सुधा घट को स्वर्ग में लिए जा रही थी, तब थोड़ा अमृत छलक कर मर्त्य लोक में गिर पड़ा, और वही नारी रूप में परिवर्तित हो गया, स्वर्ग देखता ही रह गया।[6] इस प्रकार जब यह स्वर्गीय शक्ति मर्त्यलोकमें आती है तो अपनी असीमता को सीमा में लय कर लेती है इसीलिए उसका रूप लघु तथा ससीम होने पर भी अनंत है।[7]

इस स्वर्गीय किरण के ही कारण यह भूतल सुंदर सुखद, और शांतिप्रद है, उसी से "सुरभित यह संसार है" वह "सृष्टि का स्वर्ण सुहाग" है। उसके अभाव में वसुधा श्मशान के समान लगती है और —

---

[1] तुम कुटिया में भी मुस्काई, तो वहां सिद्धियां बिखर पड़ीं।
दिन-रात रमा वाणी सादर, मुंह जोहा करती खड़ी-खड़ी॥
(मोहनलाल महतो नारी, विश्वमित्र, नवंबर १९४३

[2] हरिकृष्ण प्रेमी—जादूगरनी पृ० ६९, २

[3] वही पृ० ७०, २

[4] वही पृ० ७२, ६

[5] मोहनलाल महतो—नारी, विश्वमित्र नवंबर, १९४३

[6] पीयूष मोहिनी के घट से, सहसा थोड़ा सा छलक पड़ा,
वह मर्त्य लोक में गिरा, स्वर्ग रह गया देखता खड़ा खड़ा,
हो गया सुधा का विधि गति से नारी स्वरूप में परिवर्तन।
(मोहनलाल महतो—नारी विश्वमित्र, नवंबर १९४३)

[7] अमर लोक से उतर मर्त्य जग में, कोमल पग पर धरती है,
ममतामयि, अपनी असीमता, सीमा में लय करती है।
(हरिकृष्ण प्रेमी—जादूगरनी, पृ० २१, १)

[8] बिंदु में थी तुम सिंधु अनंत, एक सुर में समस्त संगीत।
एक कलिका में अखिल वसंत, धरा में थी तुम स्वर्ग पुनीत॥
(सुमित्रानंदन पंत—पल्लव आँसू, पृ०, १५,)

'दशों दिशाओं का सुहाग लुट जाता जब करती प्रस्थान"[1]

समस्त प्रकृति उसके वियोग में व्याकुल हो उठती है, और पृथ्वी विधवा-सी हीन मलीन प्रतीत होती है नारी उस मधुवन के समान है, जिसके कारण जग उपवन के फूल विकसित होते हैं।[2] उसके इन्द्रधनुषी अचल की छाया हटते ही :—

"विश्व गीत की तान टूटती जीवन वीणा होती मौन।[3]"

कवि ने इस इन्द्रधनुषी रंगों से सम्पन्न विचित्र शक्ति का स्वरूप बड़ा कौतूहल-जनक और रहस्यात्मक पाया है। इसीलिए उसका सामंजस्य कबीर की माया से कर दिया है।[4] किन्तु हमें यहाँ इतना ध्यान रखना चाहिए कि जो वंचकता और अमंगल कबीर ने अपनी माया में देखा था, वह 'प्रेमी' ने अपनी "जादूगरनी" में नहीं। परवर्ती ने उसे सत्य, सुंदर और शिव माना है और उसके रूप और शक्ति को पूजनीय।

अस्तु नारी 'इंद्रधनुष सी रंग बिरंगी जादू की लकड़ी' लिए हुए एक जादूगरनी है। अपनी इच्छा से वह अनेक रूप धारण करती है, और एक ही समय में जगत के द्वारा अनेक रूपों में देखी जाती है।[5] अपने रूप को वह कभी आच्छादित कभी अनाच्छादित रीति से प्रदर्शित करती है। जब वह दर्शन दान देती है तब —

---

[1] हरिकृष्ण प्रेमी—जादूगरनी पृ० ९४, १

[2] वही, पृ० ९७

[3] वही, पृ० ९८, ४

[4] हरिकृष्ण प्रेमी—जादूगरनी . प्राक्कथन

[5] (क) वही सजनि, छाया बन जाती, कहीं धूप चमकाती है,
अश्रु बहाती किसी जगत में, कहीं मधुर मुस्काती है।
किसी हृदय में आग लगाता है, तेरा अनुपम अनुराग,
तेरी तान किसी को भैरव राग, किसी को करुण विहाग।
(वही, पृ० १००, १—२)

(ख) अनज्योति विरत योगी ने, भक्तों ने राधा अभिराम।
चतुर नायिका कवि के मन ने, साधक ने सायुज्य ललाम॥
बनी अप्सरा स्वर्ग लोक में स्वप्न लोक में परी अजान।
वन्य लोक में लता लचीली, वरुणों में सरिता गतिवान॥
मर्त्य लोक में बन व्रज वनिता, कीर्त्यों ही माया विस्तार॥
निर्विकार भी रूप लुब्ध हो, बना स्वयं मानव सविकार॥
(नगेन्द्र—वनबाला : नारी, पृ० २४)

(ग) क्रीतदासी, स्वामिनी, आराध्य हो, आराधिका भी,
प्राण मोहन कृष्ण हो तुम, शरण अनुगत राधिका भी।
सहचरी हो, अनुचरी, औ वंदनीया अंबिका भी,
भक्ति की कृति हो, स्वयं फिर भक्त की प्रतिपालिका भी॥
(नरेन्द्र शर्मा—प्रवासी के गीत, पृ० १२, ७)

"गोपन का आवरण गगन से तत्क्षण झट हट जाता है।
घूँघट घन-पट सा घट जाता, छवि का रवि मुसकाता है॥"[1]

और वह मनुष्य से सामीप्य स्थापित करके पहचान करती है। उसके अदृश्य गीत अब आखों को परिचय हो जाते हैं। वह अपरिचिता प्रथम चितवन में ही निकटतम और गूढ स्नेह की पात्री हो जाती है।[2] किन्तु दूसरे ही क्षण अपनी एक झलक को दिखा कर प्यास को मिटाए बिना वह चल देती है। जब ससार जीवन से विरक्त होकर उसे अपनाना चाहता है तो वह "दे अमर व्यथा अबर में छिप जाती हैं"। उसकी निष्ठुरता से अतृप्ति, विकलता और दुख का जन्म होता है।[3] वह चचला समीप लाने पर भी दूर-दूर रह कर प्राणों की प्यास बढ़ाती है इसीलिए वह नित्य नवीन और सदैव अपरिचित सी दिखाई देती है। यही उसका उर्वशी रूप है।[4] इस प्रकार वह पर्दे की आड़ में एक रहस्यमय रूप धारण करके एक गूढ पहेली और जिज्ञासा बन जाती है।[5] वह अपने प्रेम को गुप्त रख कर अनेक प्राणों को उलझन में डाल देती है।[6] जब इस प्रकार वह रहस्यमय रूप धारण कर लेती है तो दुनिया अपनी कल्पना की उड़ान से बहुत कुछ सोचने का प्रयत्न करती है, किन्तु निरर्थक। वास्तव मे ससार उसे गलत समझता है। उसके प्रेम गोपन को ससार प्रेम का अभाव समझ बैठता है। दूसरी ओर वह ससार की मूर्खता पर हँसती है[7]

---

[1] हरिकृष्ण प्रेमी—जादूगरनी पृ० १९, १

[2] तुझे निकटतम कह, मानव उर, गूढ स्नेह का तुझ पर सार,
अपरिचिते, पहली चितवन में, करता निस्सकोच निसार॥
(वही, पृ० २५, १)

[3] तेरी निष्ठुरता के फल बन, छलना का लेकर आधार।
विरह अतृप्ति, विकलता, आँसू, जग में उतरे रहली बार।
(वही, पृ० ४९, ४)

[4] केवल प्यास जगा कर उर में, अरी उर्वशी, उड जाती।
उच्छ्वासों से दुनिया उर कर, तुझे संदेशा पहुँचाती॥
(वही, पृ० ४९, ४)

[5] जब परदा न करती गुणवान,
चिर रहस्य सी गूढ प्रश्न सी, चिर जिज्ञासा सी अनजान,
कितने उत्कठित हृदयों में, भर लती युग युग का ध्यान।
(हरिकृष्ण प्रेमी—जादूगरनी, पृ० ४४, १)

[6] जब रहस्य बन जाती, सुन्दरि, अपना प्यार छिपाती है।
उलझन में कितने प्राणों को, री पागल उलझाती है॥
(वही, पृ० ४५, २)

[7] री रहस्य, जब मूक पहेली, बन कर तू छिप जाती है।
भांति भांति के अर्थ लगाकर, दुनिया धोखा खाती है॥
कौन देखता पट के पीछे दो प्यासे नीरव लोचन।
एक अनत अतृप्त वासना, एक हृदय उन्मद यौवन॥

यह कौतूहलमयी कभी अदम्य शक्तिशाली रूप में आती है तो कभी अवश अबला का रूप धारण कर लेती है। तब वह अतीव कोमल और करुण हो उठती है मलय पवन से भी काप जाती है, कुसुम पखुड़ियाँ भी उसे छेद जाती हैं, उषा की किरणे भी। उसे दग्ध कर देती है।[१] वह एक दम परावलबिनी और परवश हो जाती है, और

"एक कदम चलने को भी जग का, मुँह तकती रहती है"[२]

किन्तु दूसरे समय वह मानिनी का रूप धारण करके अपनी मौह की कमानों को तान लेती है, तब ससार का हृदय आशकित हो उठता है

कौन जान सकता नयनों के, घन का छिपा हुआ भडार।
वज्र गिरावेगा या शीतल, विमल बहावगा जलधार।[३]

इसके विपरीत कभी-कभी वह उदारता से नत हो जाती है। विनम्र होकर वह स्नेह की वर्षा करती है जिसमे मानवता निष्पाप होकर प्रफुल्लित हो उठती है।[४] कभी-कभी वह झझा का रूप धारण कर विश्व में चचलता भी उत्पन्न कर देती है। वह उस तूफानमय सागर के समान बन जाती है जिसकी एक तरग अनेक पोतो को भग कर देती है, अनेक आशाओं के भवन टूट जाते हैं अधकार सदृश उसके केश ससार को उलझन में फँसा देते हैं।[५]

इस प्रकार अपनी ही इच्छा से (क्योंकि वह शक्ति है) नारी विविध रूपों को धारण करती है। कभी सरल और नम्र, कभी कठोर और अभिमानिनी, कभी रहस्यपूर्ण और कभी भोली नादान[६] बन कर वह मनुष्य को, भ्रमित कर देती है। वह अपने हृदय के रत्न भडार को गुप्त ही रखती है, फलत ससार उसके हृदय की वास्तविकता जानने के लिए अथक परिश्रम करके भी उसे अगम ही पाता है।[७]

गोपन को अभाव रह जग का, फूला फिरता है अज्ञान।
छिपी छिपी हसती तू उस पर, पर न व्यक्त होती छविमान॥
(वही, पृ० ७६, २—४)

[१]वही, पृ० ३९—४०

[२]वही, पृ० ४१

[३]हरिकृष्ण प्रेमी – जादूगरनी पृ० ५६ २

[४]तेरे स्नेह सलिल मे सिच कर, हृदय हरे हो जाते है।
कलुष धुल जाते, शतदल खिलते, रस-पावन लहराते है॥
(वही, पृ० ४३ २)

[५]वही, पृ० ६१—६२

[६]अभी सरलता और नम्रता, अभी कठिनता औ अभिमान।
पल भर में रहस्य बनकर तू, आकुल कर देती है प्राण।
पलभर पीछे ही बन जाती है, तू भोलापन, अज्ञान॥
(वही, पृ० १००, १—२)

[७]छद्मवेशिनी, नक्षत्रों की, छाया से करती शृङ्गार।
किन्तु छिपाये रहती उर में, अनुपम रत्नों का भंडार॥

"रही सदा तू अगम अजान" को हम तुलसी के "नारि चरित जलनिधि अवगाहू" के समीप पाते हैं, किन्तु जहाँ प्राचीन कवि ने वचकता, असत्यता, नीचता आदि को सामने रख कर वह बातें कही थीं, वहाँ आधुनिक कवि ने नारी की गोपन और लज्जा की स्वाभाविक कलात्मक प्रवृत्ति तथा तद्गत सौंदर्य को देखते हुए कहा है। इसीलिए कवि अंत में कहता है :—

'तू रहस्य है, इसीलिए तो, लगती है जग को प्यारी।"[1]

इस प्रकार की भावना पर हम बगला कवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर की "चित्रा" का प्रभाव देख सकते हैं। रवीन्द्र ने 'चित्रा' उस "एका एकाकिनी", अंतर व्यापिनी को कहा है जो जगत् मे अपने विचित्र रूपों का विकास करती है, जो चचल चरणों से द्युलोक और भूलोक में विहार करती है तथा जिसकी असख्य गाथायें नाना प्रकार से कही और सुनी जाती है। कवि रवीन्द्र नाथ की चित्रा से प्रभावित होकर इलाचद्र जोशी ने "कवि की चिर सहचरी, आजीवन परिचिता तथापि चिर अज्ञाता" के लीला वैचित्र्य को 'विजनवती' नामक कविता में अकित किया है। जोशी जी की कल्पना अत्यन्त तीव्र है, इसलिए वस्तु ने एक अनोखा रूप धारण कर लिया है, जो हिन्दी काव्य-साहित्य में अपने ढंग का अकेला है। इलाचद्र जोशी ने एक ऐसी रहस्यमयी कुहुकनी का चित्र हमारे सम्मुख उपस्थित किया है जो साख्य की माया मे अपना साम्य स्थापित कर लेती है। इस मायाविनि विजनबाला को कवि ने पर्वत निकुज में पाया है। वह एकाकी तथा चिंतित थी—संभवत किसी "चिर परदेशी" के ध्यान मे। उसके अगों में यौवन था और आँखों में उत्सुकता। विस्मृति निमग्न उस बाला के करों में केतकी कटक की माला थी, और मुख पर "अविदित विस्मित विषाद"। वह अकारण ही हँसती और रोती थी, मेघों की वर्षा और दामिनी सग-सग उसके मुख पर छा जाते थे। कवि ने प्राणों से उसकी पूजा की और उसे "चिर विषादमय गृह के अधिवासी की" प्रिया बनाया। विजनवती कुज भवन को छोड़ गृह में मग्न हो गई। किन्तु वह 'अथिरा' एक स्थान पर कब रह सकती थी। उसके मन में परिवर्तन हुआ, वह पिजरे में छटपटाने लगी और विजन की ओर चल पड़ी। वह सागर की सुखद गोद को युगों तक न छोड़ सकी। किन्तु असह्य करुणा के कारण उसे गिरि निकुज के निभृत नीड़ का ध्यान हो आया और वह —

"छोड़ पुलिन की सैकत माया पुन चली पर्वत की ओर,"[2]

पर्वत मे उसका कीलित कूजन पुन मुखरित हो उठा और विजन देश हर्ष से कल्लोलित हो उठा। किन्तु धीरे धीरे विजनवती म्लान होकर शीर्ण होने लगी। वह मानस की कल-हसी महाकाश के विपुल प्रसार की ओर दौड़ पड़ी और अचानक अदृश्य हो गयी। उसके रोदन को कुररी ने अपना लिया, उसके मद कल कूजन को वन-कपोत ने अपना

तेरे उर का कूल खोजने, जग का कितना कौशल ज्ञान।
असफल यात्रायें कर हारा, रही सदा तू अगम, अजान॥
हरिकृष्ण प्रेमी—जादूगरनी पृ०, ६२, २—३.

[1] वही, पृ०, १००, ४.
[2] इलाचन्द्र जोशी—विजनवती . विजनवती, पृ०, ९.

लिया। निर्झर ने उसका संगीत ले लिया और वनस्थली ने "उसका-सुमधुर स्वप्न पुनीत" चुरा लिया। उसके "लीलामय लावण्य विलास" को मधुऋतु ने छीन लिया, उसके तेजोदीप्त प्रकाश से निदाघ का विकास हुआ। उसके अश्रु पावस में प्रकट हुए और नेत्रों की शांत छाया शरत् में प्रतिभासित हुई। उसके निर्मल, शुभ्र, नीहार के समान शीतल, निष्कलंक और हीरे के समान उज्ज्वल चरित्र को हेमन्त ने ले लिया। शिशिर वायु में उसकी सकरुण ठंडी आह सुनाई दी। इस प्रकार उसकी गति ऋतुओं की गति में प्रवाहित हो गई।[२]

कवि ने नारी को रहस्यमयी भुवनमोहनी के रूप में देखा है। उसकी इस रहस्य-पूर्णता में वह प्रबल आकर्षण है जो अनिवार्य रूप से मनुष्य को अधिकृत कर लेता है।[२] उसके आकर्षण में मादकता है जो बरबस ही न जाने कितने हृदयों को वश में कर लेती है। तब जग इतना विवश हो जाता है कि जादूगरनी (नारी) चाहे ठुकरा दे अथवा जिला दे। उसके पास इन्द्रधनुषी रंगों की एक जादू की लकड़ी है जिसे कौतूहल मात्र से फेर देने पर जीवन में पागलपन छा जाता है।[३] और —

"तेरी सतरंगी सीमा को, छूने को अकुलाते प्राण।"[४]

सृष्टि के कण-कण में उसी की ओर चलने की प्रबल आकांक्षा जाग जाती है और समस्त शृंखलाएँ अपनी व्यर्थता में पड़ी रह जाती हैं।[५] इस प्रबल आकर्षण को लेकर वह पुरुष की प्रेरणा बन जाती है। उसकी दुःख भरी आहें महलों को धूल में मिला देती हैं और वीर उसके चरणों पर भूतल के राज्य को जय कर उत्सर्ग कर देते हैं।[६] उसके मूक इंगित मात्र पर जग उसके चरणों पर चढ़ जाता है।[७]

जो नारी इतनी शक्ति सम्पन्ना है, जिसके "निमेषोन्मेषाभ्याम् प्रलयमुदय याति

---

[१] वही, पृ०, २—१२

[२] इस आकर्षण की धारा में, चलता क्या कोई चारा है।
(मोहनलाल महतो—नारी विश्वमित्र, नवंबर १९४२)

[३] हरिकृष्ण प्रेमी—जादूगरनी, पृ०, ८, २ ४

[४] वही पृ०, '०, २

[५] सारी जंज़ीरें पैरों में, लिपटी ही रह जाती है।
पागल बन कर तुझे खोजने की, घड़ियाँ जब आती है॥
अनायास ही दशों दिशाओं के,
खुल पड़ते हैं द्वार।
(वही पृ०, ११—१२)

[६] मोहनलाल महतो—नारी, ४, विश्वमित्र, नवंबर, १९४३.

[७] तेरे मूक इशारे पर, सखि, मंत्र मुग्ध होकर संसार,
चरणों पर चुपचाप चढ़ाता, चरम साधनाओं का सार।
(हरिकृष्ण प्रेमी—जादूगरनी, पृ०, ६, ४)

जगती", उसको कवि अबला मानने को प्रस्तुत नहीं है।[1] यद्यपि नारी अवयव में कोमल है किन्तु करुणा, ममता, सेवा और क्षमता को लेकर वे ससार चला सकती है।[2] कवि की धारणा है कि संसार का गौरव कोमल वस्तुओं पर ही आधारित होता है :—

जग के गौरव के सहस्र दल, दुर्बल नालों ही पर प्रतिपल
खिलते किरणोज्ज्वल चल अचपल, सकल अमगल खो।'[3]

नारी के गुणों से मोहित आधुनिक कवि यहीं नहीं रुक जाता। नारी को शक्ति रूप में देखते हुए वह दार्शनिक हो उठा है। उसका दार्शनिक आदर्शवाद नारी को एक विराट् रूप प्रदान कर देता है। पीछे देख चुके हैं कि नारी को कवि ने स्वर्गीय अलौकिक शक्ति का अवतार माना है। उस दैवी शक्ति के स्वरूप का चित्रण करता हुआ कवि कहता है कि उसका विस्तार अमापनीय है।[4] सूर्य और चन्द्रमा उसके ज्योतिमान नेत्र हैं, आकाश उसका वस्त्र है, तारागण शृगार के फूल हैं, विद्युत उसका अस्त्र है।[5] उसकी सीमायें आकाश से भी अधिक विस्तृत हैं, उसकी झोली में अनेक लोक तारों के समान हैं।[6] उसके वक्ष में भूगोल-खगोल की स्थिति है।[7] अनेक ब्रह्माड उसके हार के समान हैं, जो भृकुटी के कपन मात्र से बनते मिटते हैं। उसी की शक्ति से यह विश्व संचालित है —

---

[1] अबला अवश तुम ! सकल बल वीरता, विश्व की गंभीरता ध्रुव धीरता,
बलि तुम्हारी एक बांकी दृष्टि पर, मर रही है जी रही है सृष्टि भर।
भूमि के कोटर, गुहा, गिरि गर्त भी, शून्यता नभ की, सलिल आवर्त भी,
प्रेयसी, किसके सहज ससर्ग से, दीखते हैं प्राणियों को स्वर्ग से।
(मैथिलीशरण गुप्त साकेत, सर्ग २, पृ०, १५—१६)

[2] माना कि अबला नारियाँ, होती सहज सुकुमारियाँ,
पर वे चला सकती नहीं ससार क्या, करुणामयी, ममतामयी,
सेवामयी क्षमतामयी, वे कर नहीं सकती यहाँ उपकार क्या।
(मैथिलीशरण गुप्त—त्रिपथगा वकसहार)

[3] सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—गीतिका, १०,१०.

[4] किस में इतनी शक्ति नाप ले जो तेरा विराट् विस्तार।
(हरिकृष्ण प्रेमी—जादूगरनी, पृ० ६३, १)

[5] रवि शशि हैं आलोकित आँखें, यह विराट् है अंबर वस्त्र,
है शृगार सुमन ये तारे, बिजली महाशक्ति का अस्त्र।
(हरिकृष्ण प्रेमी—जादूगरनी पृ०, ६१, ४)

[6] वही, पृ०, ६१, २.

[7] हृदय पर भूगोल और खगोल ले उतरीं धरा पर।
(मोहनलाल महतो- नारी विश्वमित्र, नवंबर, १९४६)

तेरे आकर्षण से ही घूमा, करते हैं रवि शशि अविराम।
करती रहती उन्हें प्रकाशित ज्योतिर्मयि, तू ही अभिराम।'[1]

इस प्रकार वह चराचर धात्रि है जो अशेष है, जिसका "अथ" असीम है और "इति" चरणों में नत है।[2] वह एक व्यापक शक्ति है जो सुवास की भाति प्रत्येक स्थान पर बसी हुई है।[3]

आधुनिक कवि ने नारी के शक्ति रूप में कला का समन्वय देखा है। कविवर रवीन्द्र ने लिखा था "जब विधाता पुरुष का निर्माण कर रहा था तब वह एक स्कूलमास्टर था और उसके बस्ते में उपदेश और सिद्धान्त भरे हुए थे, किन्तु जब वह नारी निर्माण के लिए उद्यत हुआ तो वह सहसा एक कलाकार हो गया और उसके हाथ में केवल रग और तूली थी"।[4] हिन्दी का आधुनिक कवि इन शब्दों की प्रतिध्वनि करता हुआ नारी को विधाता की कलाकृति साक्षात काव्य-रूपा कहता है।[5] नारी को कलाकृति इसलिए माना गया है कि नारी के चरित्र में कुछ ऐसी विशेषतायें हैं जो वास्तव में कलात्मक हैं "नारी की आत्मा एक कलाकार की आत्मा होती है। उसमें सौंदर्य है जो एक सदेश-वहन करता है। उसमें शोभा, सुघरता और भावों की निर्मलता है जो कला की अभिव्यक्ति है।"[6] इसी दृष्टिकोण से निराला ने "कला और देविया" नामक निबध में समुद्रमथन के रूपकात्मक रहस्य का उद्‌घाटन करते हुए उर्वशी को "कला, गति और गीति की प्रतिमा" के रूप में देखा है। यह उर्वशी रूप, लक्ष्मी रूप (स्नेह, सेवा तथा रक्षा भाव से मचित गृहस्वामिनी) के साथ-साथ प्रत्येक नारी में पाया जाता है और प्रियाभाव में उसकी अभिव्यक्ति होती है। "प्रिया भाव में गीति और गति के साथ रचना भी आती है, वह ललित वाक्य रचना हो या छद रचना। यह शब्दों के साथ भी मिली हुई है और

---

[1] हरिकृष्ण प्रेमी—जादूगरनी, पृ०, ६०,१

[2] तुम चराचर धात्रि, मृदुबाला, प्रमत्ताभामिनी
रवि विभामय है तुम्हारी मांग के सिन्दूर से ही,
तुम अशेष असीम 'अथ' हो इति' प्रणत है दूर से ही।
(मोहनलाल महतो—नारी विश्वमित्र, नवंबर १६४३)

[3] कण कण में तेरी सत्ता है, उर-उर में है तेरा वास,
भुवन भुवन के उपवन में तू, बसी हुई बन सुमन सुवास।
(हरिकृष्ण प्रेमी जादूगरनी, पृ०, ९२, ४)

[4] "When man was being made the Creator was a schoolmaster, his bag full of commandments and principles, but when He came to woman He turned an artist with only His brush and paint"
(शचिन सेन कृत 'पोलिटिकल फिलासफी आव रवीन्द्रनाथ' में उद्‌धृत)

[5] तुम नियंता की कलाकृति काव्यरूपा कामिनी हो।
(मोहनलाल महतो—नारी विश्वमित्र, नवंबर १९४३)

[6] श्यामकुमारी नेहरू—अवर कॉज़ रुक्मनी देवी—वुमन ऐज़ आर्टिस्ट पृ० ११६

ताल के साथ नृत्य। उर्वशी के इसी भाव का आरोप देवी सरस्वती पर किया गया है इसलिए कि भाव में शुद्धता रहे।"[1] इस प्रकार देवियों के रूप में कला की सात्विक विवेचना करता हुआ कवि कहता है "कला अपने नाम से ही नारी स्वभाव की सूचना देती है, उसकी कोमलता और विकास में महिलाओं की प्रकृति है।"[2]

अस्तु आधुनिक कवि ने नारी में कला का सहज समन्वय पाया है। व्यापक रूप से उसकी भाव प्रवणता, स्नेह और ममता में, सेवा और त्याग की क्षमता में, तथा सृजन-पालन और संहार की शक्ति में, और संकीर्ण रूप से ललित कलाओं के ज्ञान मे है। प्रसाद की श्रद्धा ललित कलाओं का ज्ञान प्राप्त करने के लिए ही गधर्व देश में आई थी।[3] गुप्त जी की उर्मिला को हम एक दक्ष चित्रकार के रूप मे पाते हैं।[3] शुक्ल जी की दमयती चित्रकला, हस्तकला, गान विद्या आदि में निपुण है।[4] प्रेमी ने "जादूगरनी" की वीणा में समस्त कलाओं का सार पाया है और उसके महागान में समस्त प्रकृति के तत्व।[5]

आधुनिक कवि की दृष्टि में नारी न केवल कलाकृति और कलाकार है वरन् कला की मूल प्रेरणा भी है।। कवि रवीन्द्र की तो यह धारणा थी कि पुरुष की समस्त कलात्मक रचनाओं के पीछे नारी का प्रभाव रहा है।[6] इसीलिए कवि कलामयी को सबोधित करके कहता है —

"तुम कलामयी, तुम गीतमयी।'

---

[1] सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला'—चाबुक. कला और देवियाँ

[2] जयशंकर प्रसाद—कामायनी : श्रद्धा पृ०, ४४

[3] मैथिलीशरण गुप्त—साकेत, सर्ग १, पृ०, १८—२१, सर्ग ९, पृ०, २५१.

[4] शिवरत्न शुक्ल—नल नरेश, पृ०, १५०.

[5] ले जागृति का राग उषा से, निशि से ले मोहनी महान,
मादकता शशि की, शिशु की ले पावनता जल का कल गान,
निर्झर का स्वर, सरिता की लय, सागर का लेकर तूफान,
अपने महागान में भर कर गा देती है जब छविमान।
(हरिकृष्ण प्रेमी—जादूगरनी, पृ०, १६—१७)

[6] "Had men's mind not been energized by the inner working of woman's vital charm, he would never have attained his success of all the higher achievements of civilization—the devotion of the toiler, the valour of the brave, *the creation of the artist*—the secret is be found in woman's influence" (कीसलिंग कृत "ए बुक ऑव मैरिज" रवीन्द्रनाथ ठाकुर—दि इडियन आइडियल ऑव मैरिज)

देखिए —श्यामकुमारी नेहरू कृत 'ऑवर कॉज' . श्रीमती रुक्मनीदेवी —विमन ऐज़ आर्टिस्ट, पृ०, ११७.

हे देवि तुम्हारे चरणों का जब छुम छुम छुम पायल बोला,
तब कवि की नवल कल्पना ने हौले हौले घूघट खोला,
नीरवता को झकझोर, स्वरों की मादक उठी हिलोर नई।[1]

शिल्पी का सौंदर्यबोध नारी रूप में आकृति पाता है और रसानुभव आनद उसके बधन में यति और छद।[2] उस सौंदर्य और शील की मूर्ति के चरणों में कवि अनायास आत्मसमर्पण करके सुख पाता है। उस ज्योतिष्मती के प्रति कवि के भाव शलभ की भाँति आकर्षित होते हैं, और तब कवि के भाव भी ज्योतिर्मय हो उठते हैं। कवि ने स्वय स्वीकार किया है कि अपने गीतों के लिए वह उन प्रिया के नयनों का ही कृतज्ञ है —

आज दे रहा हूँ वाणी जिन भावों को लिख गीत मधुर,
है उनके हित ही चिर कृतज्ञ, उन नयनों के प्रति मेरा उर।[4]

तुलसी के उदाहरण को हमें भूलना न चाहिए जिन्होंने निज पत्नी में ही सरस्वती के दर्शन पाये थे :—

देखा, शारदा नील वसना
है सम्मुख स्वय सृष्टि रशना,
जीवन समीर शुचि निश्वसना, वरदात्री,
वीणा वह स्वयं सुवादित स्वर
फूटी तर अमृताक्षर निर्झर
यह विश्व हंस, हैं चरण सुघर जिस पर श्री।[5]

इस प्रकार परिवर्तन युग के कवि ने अपनी आदर्शवादी तथा छायावादी प्रवृत्तियों के कारण नारी को सर्वगुणसम्पन्ना महान शक्ति के रूप में देखा है। उसके बाह्य तथा आतरिक सौंदर्य, उसकी रहस्यपूर्णता तथा कलात्मकता को देखते हुए एक कौतूहलपूर्ण पूजात्मक दृष्टिकोण का निर्माण किया है।

— — —

[1] मोहनलाल महतो - नारी . विश्वमित्र, नवबर १९४३
[2] हरिकृष्ण प्रेमी जादूगरनी, पृ०, ५७, ४.
[3] नरेन्द्र शर्मा — पलाशवन · आत्म समर्पण, पृ०, १०
[4] नरेन्द्र शर्मा - प्रवासी के गीत, पृ०, २१, १४
[5] सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' तुलसीदास, पृ० २१, १४.

अध्याय ५

विविध सम्बन्धों में सत् रूप का विकास

पीछे हमने देखा कि इस युग के कवि ने नारी शक्ति को एक विराट् और व्यापक रूप प्रदान कर दिया है। कवि की धारणा है कि यही विराट शक्ति विविधरूपों मे विभक्त होकर गृह में अपने आलोक का प्रसार करती है[1] उसकी शक्तियों का विकास उन विविध सम्बन्धों में होता है जो वह पुरुष के साथ स्थापित करती है। मुख्य सम्बन्ध तीन हैं १. प्रेयसी और प्रणयिनी २. पत्नी ३. माता।[2] यद्यपि प्रेयसी तथा पत्नी दोनों ही भावनाओं का मूल रतिभाव है तो भी इनमें भेद है। प्रेयसी भावना में स्वच्छंद प्रेम की भावना अतर्निहित रहती है। उसमें एक प्रकार से जीवन की एक अतृप्त वासना अभिव्यक्ति होती है। इसके विपरीत पत्नी एक सस्कारबद्ध रूप है जिसके पगों में कर्तव्य की पुकार का उत्तर है और जिसके जीवन में वह तृप्ति है जो मातृत्व का चरम मार्ग है। नारी के यह तीनों ही रूप आपस में परस्पर अभिन्न रूप से हुए हैं। प्रत्येक पत्नी का भी एक प्रेयसी और प्रणयिनी रूप होता है जिसे निराला ने नारी का "उर्वशी भाव' कहा है।[3] साथ ही प्रत्येक पत्नी में मातृभाव भी पाया जाता है। एक दृष्टिकोण से नारी के ये तीन रूप उसके जीवन की तीन अवस्थाएँ हैं। किन्तु आधुनिक युग में प्रबन्ध काव्यों की कमी है, और प्राय गीतों मे ही नारी के विविध रूप बिखरे हुए मिलते हैं। फलत. उक्त रूपों से सम्बन्धित कवि की भावना को पृथक्-पृथक् रूप से देखना ही उचित होगा।

१ प्रेयसी और प्रणयिनी रूप

छायावादी काव्य मे नारी के इस रूप ने विशेष प्रधानता पाई है। पहले भी संकेत किया जा चुका है[4] कि इसका मूल है अभाव की भावना में—अभाव उस द्वितीय

---

[1] घर घर में तेरी ही प्रतिछवि, भरती है आलोक अनूप।
अगणित अणुओं में बट जाता, एक महत्तम नारी रूप॥
(हरिकृष्ण प्रेमी—जागृगरनी, पृ०, २६, ४)

[2] यहा तीन सम्बन्धों –भगिनी, भ्रातृ-जाया और कन्या का उल्लेख नहीं किया गया है। प्रथम का इसलिए कि उसका महत्व आधुनिक काव्य में केवल राष्ट्रीय भावना के साथ है जिसको हम पृथक् रूप से देखेंगे। द्वितीय बहुत कम मिलता है। जहाँ है भी वहाँ मातृत्व ही लेकर आता है क्योंकि भारतीयों ने ज्येष्ठ भ्राता की पत्नी को मातृवत् ही माना है। तृतीय का कोई महत्वपूर्ण स्थान आधुनिक काव्य में नहीं मिलता।

[3] निराला –चाबुक · 'कला और देवियाँ".

[4] अध्याय १, पृ० १३—१४

का जो निजगत आवश्यकताओं की पूर्ति हो, जो मानसिक और शारीरिक सुख की प्राप्ति में सहायक हो, शरीर विज्ञान के शब्दों में तथा मनोविज्ञान के दृष्टिकोण से, जो भिन्नलिंगी हो। वास्तव में यह भावना सृष्टि का बीजतत्व है। इसीलिए उपनिषद्कार ने भी ब्रह्मा के संबंध में इस प्रकार की कल्पना की थी।[1]

छायावादी कवि दु खवाद का पल्ला पकड़े पलायन-प्रिय हैं। फलत· उसके जीवन में अभावों की कमी नहीं। "सपने की प्रतिमा"[2] का निर्माण कर वह अपने अभावों की काल्पनिक पूर्ति करना चाहता है और अपने हृदय का भार किसी अन्य के जीवन में उतारने की इच्छा रखता है।[3] जब कवि प्रकृति में प्रीति का आदान प्रदान देखता है तो निज एकाकीपन से विह्वल हो उठता है[4] फलत. वह अपने अभाव की अनुभूति को दूर करने के लिए "सपने की प्रतिमा" की रचना करता है। कवि के गान इस स्वप्निल मोहिनी छवि पर केन्द्रित हो जाते हैं।[5]

अस्तु प्रेयसी पुरुष के सपने की प्रतिमा होने के साथ अभिलाषा की प्यास भी है।[6] वह उसके "भूले हृदय की चिर खोज" है।[7] इसलिए कवि कह उठता है:—

"मेरी आँखों पर सुकुमारी की आँखों का चितवन हो।
मेरी साँसों में उसकी साँसों की सुरभित स्पदन हो।
उसके स्वर से संचालित ही मेरे मन की धड़कन हो।
विस्मृति की मादकता से मेरा मन ही उसका मन हो।"[8]

---

[1] स वै नैव रेमे तस्मादेकाकी न रमते सद्वितीयमैच्छत्। स हैतावानास यथा स्त्री पुमांसौ सपरिष्वक्तौ स इममेवात्मान द्वेधा पातयत्तत. पतिश्च पत्नी चाभवता तस्मादिदमर्धवृगला इव स्व इति स्माह याज्ञवल्क्यस्तस्मादयमाकाश स्त्रिया पूर्यत एव ता सम्भवत्ततो मनुष्यो अजायन्त।

(बृहदारण्यक उपनिषद् १, ४, ३)

[2] भगवतीचरण वर्मा—प्रेम सगीत, पृ० ३१, ११५

[3] हाय किसके उर में उतारू अपने उर का भार,
किसे अब दू उपहार गूथ यह अश्रु कणों के हार।
(सुमित्रानन्दन पन्त—पल्लव . आँसू, भादों की भरन पृ० १७)
देखिए शम्भूनाथ सिंह कृत—रूपराशि : पृ०, १४ १५६

[4] पन्त—पल्लव : आँसू . भादों की भरन पृ०, १९।

[5] तैरती स्वप्नों में दिन रात मोहिनी छवि-सी तुम अम्लान,
कि जिसके पीछे-पीछे नारि! रहे फिर मेर भिक्षुक गान।
(रामधारीसिह दिनकर—रसवंती : नारी, पृ०, ३०)

[6] भगवतीचरण वर्मा—मधुकण : स्वागत.

[7] जयशंकर प्रसाद—कामायनी . वासना, पृ०, ७०
देखिए —नरेन्द्र शर्मा—मिट्टी और फूल : "कौन है", "किस विधि".

[8] रामकुमार वर्मा—रूपराशि, पृ०, ७, ६.

हृदय में उस अनुपम प्रेम-मूर्ति का प्रवेश अज्ञात रूप से ही अनायास हो जाता है, वह धीरे से आकर हृदय के द्वारों को खोल देती है।[१] तब कवि जानता है कि जिसे वह मधुप की भाँति खोज रहा था वह यही चिरपरिचिता है।[२] आदान-प्रदान की सहज आकांक्षा से कवि प्रेयसी से अपने सुख-दुख की गाथा कहना तथा अमर संदेश सुनना चाहता है।[३] कवि मरु की तरंगिणी के समान उस संगिनी के स्नेहावलंब का इच्छुक है जिसका विकास द्वेष, दंभ और दुःख पर विजय पाकर हुआ है और जिसकी दृष्टि स्नेह का संभार लिए हुए है।[४] जीवन क्षणिक और अचिर है, उसमें प्रेयसी के सामीप्य का क्षण, उसके रूप का दर्शन और गान का श्रवण मधुरता भर देता है।[५] बादल के समान लघुतम जीवन को अपनी शीतल किरणों से उज्ज्वल बनाने के लिए कवि प्रेयसी को ही पुकारता है।[६] प्रेयसी जीवन के सूनेपन में विद्युत् के समान, और निराशा में आशा के समान प्रवेश करती है।[७] कवि ने इसका प्रमाण प्रकृति के कार्य कलापों में पाया है. यों तो उपवनों और वनों मे धूल उड़ती रहती है, क्यारियों में शूल बिछे रहते हैं—

"पर जब आता नव वसंत है, खिल उठते वन फूल
सजती डाल, पवन चलता है, डाल डाल पर फूल।"[८]

इसलिए कवि प्रिया से सूने जीवन को नूपुरों की झंकार से भर देने के लिए तथा प्यासे

---

[१] दबे पांव आई तुम रानी बिना वचन कुछ बोले
आकर द्वार हृदय के तुमने आहिस्ते से खोले
(गोपालसिंह नैपाली—नीलिमा · दबे पांव आई तुम रानी, पृ० ४४)

[२] तुम ऐसे मिल गयी कि जैसे हो तुम पहचानी सी। (वही)

[३] तुम एक अमर संदेश बनो मैं मन्त्र मुग्ध सा मौन रहूँ।
तुम कौतूहल सी मुस्का दो जब मैं सुख दुख की बात कहूँ।
(भगवतीचरण वर्मा—प्रेम संगीत, पृ० २८, ४)

[४] द्वेष दंभ दुख पर जय पाकर खिले सकल नव अंग मनोहर,
चितवन संसृति की सरिता तट खड़ी स्नेह के सिंधु किनारे।
जग के रंग मंच की संगिनि, अयि परिहास हास रस रंगिनि,
उर मरु पथ की तरल तरंगिनि, दो अपने प्रिय स्नेह सहारे।
(सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—गीतिका, पृ० ४१, १८)

[५] राजेश्वरगुरू—शेफाली, पृ० ३६, १९

[६] मैं तो लघु बादल हूँ जीवन है क्षण दो चार
प्रेयसी तुम चन्द्र कला सी आजाओ मेरे द्वार
उज्ज्वल अक्षरों से दे दो उज्ज्वल जीवन का सार।
(रामकुमार वर्मा—रूप राशि, पृ० २५, २२)

[७] भरे हुए सूनेपन के तम में विद्युत की रेखा सी,
असफलता के पट पर अंकित तुम आशा की लेखा सी।
(भगवतीचरण वर्मा—प्रेम संगीत, पृ० १८, १)

[८] गोपालसिंह नैपाली—नीलिमा अनुरोध, पृ० ४.

प्राणों को प्रेम की सजीवनी सुधा पिलाकर ममता-जल छिड़क कर तृप्त करने तथा जीवित करने की प्रार्थना करता है।[1] जिस प्रकार वन मे निर्झरिणी का गान गूँजता है, अधकार-मयी रात्रि में कोकिल की तान गूँजती है उसी प्रकार निज गूँज से. —

"जीवन की इस अर्धरात्रि में आओ राह सुझाओ ना।"[2]

जब पीड़ा आँसुओं में बहने लगती है तब प्रेयसी साड़ी के छोर से उन्हें पोंछ दे तथा करुणा-दृष्टि की छाया से आच्छादित कर ले यह आज के दुखी कवि की आकाक्षा है।[3] इस समय वह समस्त भव बाधाओं को भूल जाता है।[3] यह क्षण ही दुख और निराशा से भरे जीवन में विजय के क्षण हैं। प्रेयसी से कवि युग-युग व्यापी उत्पीड़न से प्राणों की रक्षा करने का अनुरोध करता है।[4] एकाकी निर्बल और श्रांत जीवन को ज्योति और शांति देने के लिए कवि ने प्रेयसी-रूपा किरण को ही पुकारा है।[5] जीवन में उसका प्रवेश विषाद की काली घटा को नष्ट कर देता है, मलिन भावनाएं विलीन हो जाती हैं और:—

"होजाता है पल में मेरा कुछ और, और से और रूप।"[6]

प्रेयसी के मधुराधरों में दुखों का निर्वाण है, सुन्दर शरीर की छाया में पीड़ित मन की शांति है और हँसी में प्रसन्नता की स्फूर्ति।[7] करुणा और सुख की साकार मूर्ति प्रेयसी जीवन

---

[1] वही.

[2] आओ मेरे पलक पोंछ दो,
प्रिय! अपने सुकुमार करों में ले साड़ी का छोर।
बड़े बड़े करुणार्द्र दृगों से देखो ना इस ओर।
(नरेन्द्र शर्मा—मिट्टी और फूल. स्वप्न की बात, पृ० १८)

[3] देता बिसार सब दोष रोष अपने और परायों के,
मैं नयन मूद अलका नगरी के स्वप्न देखता पल भर को।
(नरेन्द्र शर्मा—मिट्टी और फूल: पलभर को, पृ० ३९)

[4] जन्म जन्म की हार और यह दो दो क्षण की जीत
युग युग व्यापी उत्पीड़न से मेरे प्राण बचाओ ना।
(गोपाल सिंह नेपाली—नीलिमा. अनुरोध, पृ० ४)

[5] जब निर्बल ओस बिंदु सा पड़ा रहूँगा श्रांत
एक किरण सी आजाना तुम मेरे उर में शांत
प्रिये, रहूँगा फिर भविष्य में नहीं अकेला।
(रामकुमार वर्मा—रूपराशि, पृ० २८, २५)

[6] नरेन्द्र शर्मा—पलाशवन तुम आती हो, पृ० २

[7] प्रेय, मधुराधर की सुधा पिला कितने दुःख भुला चुकी हो तुम
× × ×
दुलरा भव-भार-भरा मानस कर नई लालसा से सालस,
नयनों की श्यामल माया में, काया की कंचन छाया में,
सहला तन सुला चुकी हो तुम सहसा दामिनी सी हंस, मोहनि।
तुम हंसा चुकी हो घन सा मन
(नरेन्द्र शर्मा—कर्णफूल: तुम, पृ० १०—११)

में ज्योति बन कर आती है। इसलिए कवि ने उसका साम्य चादनी में पाया है जो:—

"डूबते दिल को उबार सवार कहती, जल नहीं हूँ, ज्योति हूँ मे चाँदनी।"[1]

यह ज्योतिशिखा ही जीवन के अधकारपूर्ण भाग को आलोकित कर सकेगी इतना कवि को मालूम है।[2] अत वह उससे किरण बन कर नव आशा का सदेश देने की प्रार्थना करता है।[3] "विश्वतम मे ज्योतिकण" के रूप में ही आधुनिक कवि प्रेयसी नारी के प्रेयसी रूप को पहचान सका है।[4] "सतम अत करण" को इस सौदामिनी को कवि कैसे भूल सकता है जब कि वह "मृत्युतम सागरतरण" को तरणी है और जब —

"पार वैतरणी करू गा नाम मैं लेकर तुम्हारा,
फिर तुम्हीं कर पकड़ पकिल तीर पर दोगी सहारा।"[5]

इतना ही नहीं प्रेयसी जीवन की उलझनों की सहज सुलझन भी है।[6] उसकी अनुपस्थिति में भी उसके स्नेह और गौरव का ध्यान मात्र जीवन की बाधाओं का सामना करने का बल प्रदान करती है।[7]

---

[1] नरेन्द्र शर्मा—पलाशवन चाँदनी में अग, पृ० ९

[2] (क) प्रेयसी जग है एक भटकता शून्य सतम अज्ञात,
एक ज्योति सी उठो गिरो पथ पथ पर बन प्रात
(रामकुमार वर्मा—रूपराशि, पृ० ४, ५)

(ख) मेरे सूने जीवन नभ की तुम विरल चांदनी रख करुणा,
(नरेन्द्र शर्मा—पलाशवन : तुम, पृ० ४)

[3] देखो प्रकाश की रेखा ने यह तम में किया प्रवेश प्रिये।
तुम एक किरण बन दे जाओ नव आशा का सदेश प्रिये।
(भगवती चरण वर्मा—प्रेम सगीत, पृ० २८, ६)

[4] प्राण तुम मेरे लिए क्या हो, तुम्हें कैसे बताऊँ
मैं नहीं जाना स्वय ही, तुम्हें किस आसन बिठाऊ
विश्वतम में ज्योतिकण को किन्तु मै पहचानता हूँ।
(नरेन्द्र शर्मा—प्रवासी के गीत, पृ० १२, ७)

[5] वही, पृ० ११, ७.

[6] (क) जीवन के मौन रहस्यों की तुम सुलझी हुई कहानी हो।
(भगवती चरण वर्मा—प्रेम सगीत, पृ० २९, ४)

(ख) प्रश्न था यदि एक, तो उत्तर द्वितीय उदार
(जयशंकर प्रसाद—कामायनी श्रद्धा, पृ० ६५)

[7] तुम मेरे न हो सके, फिर भी आज तुम्हारे बल पर निर्भय
मैं जीवन पथ पर बढ़ता, शत बाधाएँ स्वीकार करूँ।
(नरेन्द्र शर्मा—मिट्टी और फूल किस विधि, पृ० ४८)

वह प्रेमलोक की रानी[1] अपने अपार स्नेह और असीम करुणा को लेकर जीवन की निकटतम वस्तु बन जाती है[2] उसके अक्षय अनुराग को कवि अपने प्राणों में भरना चाहता है।[3] और उसका पूर्ण वर्णन करने के लिए अपनी कल्पना, अनुभूति और भाषा को छोटा पाता है।[4] यहाँ कवि की दृष्टि अत्यन्त परिष्कृत और महान् हो जाती है। वह प्रेयसी को इन्द्रिय ज्ञान से, अंत करण के ध्यान से, यहाँ तक कि कल्पना से भी परे पाता है, नाम, रूप, गुण सम्पन्न होने पर भी उसे सबन्ध बधन से मुक्त देखता है और उसे अजर अमर मानता है।[5] ऐसी प्रेयसी को हृदय में धारण करके कवि अपने को अकिंचन नहीं पाता[6] और उसके मिलन के अमर क्षण में महानंद को प्राप्त करता है[7] फलत प्रेयसी के अभाव में

---

[1]भगवती चरण वर्मा—प्रेम संगीत, पृ० २६, ४.

[2]केवल एक करुण चितवन छू सकी सदा जो अन्तर्तम,
खिल प्रकट हुये जिसके जादू से मेरे उर के छिपे भरम।
मेरे मस्तक की क्षणिक शिकन को भी पढ़ सकी वही चितवन,
वह देख सकी मेरी आखों में धूप छाह का परिवर्तन।
× × ×
उससे क्या छिपा रह सका कुछ मन, आत्मा, या पार्थिव शरीर?
हम दोनों ऐसे हिले मिले थे, जैसे चचल जल समीर।
वह मुझे जानती थी जितना क्या जानेगी शिशु को माता?
(नरेन्द्र शर्मा—प्रवासी के गीत, पृ० २१, २४, १४)

[3]अपना अक्षय अनुराग सुमुखि मेरे प्राणों में तुम भर दो
(भगवती चरण वर्मा—प्रेम संगीत, पृ० २८, ४)

[4]यदि तुम्हारे स्नेह के अनुरूप कुछ शुभ शब्द पाता,
प्राण तब मैं हृदय से अनुराग के कुछ गीत गाता,
किन्तु सीमाबद्ध हैं सब, कल्पना, अनुभूति, भाषा,
बंदना में सफल हूगा, हो मुझे किस भाँति आशा,
(नरेन्द्र शर्मा—प्रवासी के गीत, पृ०. ११, ७)

[5]इन्द्रियों के ज्ञान से अंत करण के ध्यान से भी,
हो परे तुम कल्पना के व्योम रत अनुमान से भी,
देवि यद्यपि दृश्य हो तुम देह भी धारण किये हो,
नाम, गुण औ रूप से, सबध बधन से परे हो,
हो अजर तुम काल क्रम में हो अमर जीवन भरण में।
(नरेन्द्र शर्मा—प्रवासी के गीत, पृ० १२, ७)

[6]वही, पृ० ६, ४.

[7]कैसा था अद्भुत अपूर्व वह महानद का एक अमर क्षण,
विश्व भर गया था जब मधु से क्षण भर का वह प्रेमालिंगन।
(वही, पृ० १९, १२)

पाषाणत्व का सा, उजड़े उपवन का सा अनुभव होता है,[1] और प्रिया की स्मृति से विह्वल कवि कह उठता है

"मेरे सूने नभ मे शशि था, थी ज्योत्स्ना जिसकी छवि छाया,
जीवित रहती थी जिसको छू मेरी चन्द्रकान्त मणि-काया,
ठोकर खाते मलिन ठीकरे सा तब में निष्प्राण नहीं था।'[2]

आधुनिक कवि ने प्रेयसी में न केवल स्नेह और करुणा तथा सौहार्द्य और सहानुभूति ही पाई है वरन् अपार सौंदर्य भी जिसके संबंध में कवि ने कहा है .—

"अकेली सुंदरता कल्याणी सकल ऐश्वर्यों का संधान"[3]

प्रेयसी के सौंदर्य की छटा की कवि ने प्रकृति में मुकुलित और कुसुमित पाया है।[4] कवि की कल्पना में प्रिया की मंजुल मूर्ति को देख कर मधुवन की ईर्ष्याग्नि किंशुक अनार और कचनार में फूट पड़ी है, कपोलों की मदश्री का पान करके गुलाब रक्तिम हो उठे हैं, नासिका को देख शुक लज्जित है, और पलाश पुष्प झुक गए हैं, चंचल चरणों के स्पर्श से अशोक मंजरित है, और प्रियंगु स्पर्श से पुलकित, चंपक ने प्रिया की सुवास को चुरा लिया है और वह गर्वित हो भ्रमर को पास नहीं आने देती।[5] आधुनिक कवि की यह प्रिया रूप-कल्पना रीति-कालीन कवियों की याद दिलाती है। किन्तु वस्तुत दोनों में भेद प्रचुर है। रीति-कालीन कवियों ने तो अतिशयोक्ति मात्र के दृष्टिकोण से उक्त प्रकार के भाव व्यक्त किए थे, किन्तु आधुनिक कवि तो नारी को निखिल प्रकृति की जननी के रूप मे देखता है।[6] प्रेयसी को एक विराट् और विश्ववंद्य रूप में देखता हुआ वह संध्या की छवि, गगन की नीलिमा, स्वर्णराग और रक्त मेघ, वनरेखा की श्यामलता, का समन्वय उसमें पाता है।[7]

---

[1] नहीं, पृ० ५३, ३७.

[2] सुमित्रानंदन पंत—पल्लव. नारी रूप, पृ० ७९.

[3] आज मुकुलित कुसुमित चहुं ओर तुम्हारी छवि की छटा अपार
(सुमित्रानंदन पंत—गुंजन मधुवन, पृ० ४८)

देखिए क) नरेन्द्र शर्मा—कर्णफूल भावी पत्नी का ध्यान, पृ० १०८
(ख) क्षण क्षण में तुमको देखेंगे जग के कन कन में अंकित कर
(वही, नयन भिखारी, पृ० १५)
(ग) सुमित्रानंदन पंत—गुंजन, पृ० ३८, २७.
(घ) रामकुमार वर्मा—रूपराशि, पृ० ११, १०

[4] सुमित्रानंदन पंत—गुंजन . मधुवन, पृ० ४८

[5] "मेरी थी तुम प्रिया, प्रकृति की जननी,
(इलाचंद्र जोशी—विजनवती · "तारा", पृ० ३७)

[6] अकस्मात् क्या रूप तुम्हारा देखा !
हरण किए संध्या की छवि मन मोहक शोभित थीं तुम अविकल आकृति लेखा।
नयनों में थी नील गगन की छाया, मुख मंडल में स्वर्णराग की माया,
शुभ सिंदुर में रक्त मेघ था भाया, बिखरे बालों में श्यामल वन रेखा।
(वही, पृ० ३३)

उसकी तनुता में सृष्टिभर का सौंदर्य एकत्र हो गया है, उसके नेत्रों में रवि-शशि का प्रकाश है। तारक उसके आभरण हैं, इस अखिल सौंदर्य ने कवि को बरबस मुग्ध कर लिया है।[1] इस महत् रूप को देख आश्चर्य नहीं यदि प्रकृति भी लज्जित हो जाय[2] तथा विहगगान, जल, पुष्प के साथ उसकी वंदना में प्रवृत्त हो जाय।[3] कवि समझ जाता है कि प्रेयसी का ही "दिक् दिगंत में व्याप्त चरण रज परिमल स्तब्ध प्रकृति में फूक रहा था चेतन"[4] और जग में उसी प्रिया का सौंदर्य व्याप्त है जिसका शैशव सागर में और यौवन नंदनवन की कलिकाओं में विकसित हुआ है।[5] यहां हम देखते हैं कि आधुनिक कवि की रोमांटिक रूप-कल्पना रीति-कालीन कवियों की स्थूलता को पीछे छोड़ कहीं अधिक ऊंचे और दार्शनिक स्तर पर पहुँच गई है। "कोमल छवि का मोल" कवि ने "वासना ही के उपहारों में" नहीं किया है।

दार्शनिकता को छोड़ कर जब कवि सहज अनुभूति के स्तर पर उतर आता है तो उसकी मधुर, कोमल, सरल और निश्छल प्रिया को हम निसर्ग कन्या शकुंतला की सीमा का स्पर्श करते हुए पाते हैं जिसके संबंध में कालिदास ने कहा था.

"अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहै
रनाविद्धं रत्नं मधुनवमनास्वादित रसम् ॥"[6]

---

[1] कर एक सुनहली रेखा में, सीमित सब अगजग की छवि को,
जाने किस जादू से बंदी कर नयनों में शशि को रवि को,
तारों को जैसे मोह लिया फिर गूंथ लिया आभरणों में
कर लिया बंद उर शत दल में मकरंद मुग्ध अलि कवि को।
(नरेन्द्र शर्मा—पलाशवन . तुम, पृ० ४)

[2] उठती जब नमित चकित चितवन विद्युत सलज्ज छिप जाती
पाटल की लाल पखुरियों सी वह अरुण उषा शरमा जाती।
(वही)

[3] (क) विहग वृंद नीड़ों में पाकर आश्रय, भजन गा रहे थे करके कल कूजन,
स्खलित कुंज कुसुमों से मृदु सौरभमय होता था देवि! तुम्हारा पूजन
जल प्रपात के स्फटिक सलिल से निर्मल धौत हो रहे थे पद-कमल सुकोमल
(इलाचंद्र जोशी—विजनवती · तारा पृ०, ३३)
(ख) भक्ति सहित तुम करते थे पुष्पार्चन, फहराया वन वन में तब जय केवल।
(वही, पृ०, ३५)

[4] वही, पृ० ३३.

[5] क्षीर सिंधु की लहर हिंडोलों में बीता जिसका बालापन।
नंदन वन की कलिकाओं में खिला अखिल जिसका नवयौवन
अब तक क्यों न समझ पाया मैं, थी किसकी जग में छवि छाया?
(नरेन्द्र शर्मा - पलाशवन भावी पत्नी का ध्यान, पृ० ११०, १११)

[6] कालिदास—अभिज्ञान शाकुंतलम्, २, १०

इस संबध में पत की "भावी पत्नी' तथा ग्रंथि की नायिका विशेष रूप से दर्शनीय है।

किन्तु सरलता का अर्थ, आधुनिक कवि की भावना में लीला भाव और लालित्य का अभाव नहीं है। लज्जा, गोपन, कौतुक-प्रियता, चातुर्य आदि उसके उपकरण हैं। किन्तु आधुनिक कवि की प्रेयसी का चातुर्य उस नायिका के चातुर्य से दूर है जो गली के कोने में रुक कर बहाने से बाह उठा कर नायक को नाभि दिखाती है या गुरुजनों से छिप कर रात्रि के अधेरे में दीवार के छेद में से हाथ डाल कर पड़ोसी नायक का हाथ पकड़ती है।[1] आधुनिक कवि की नारी भावना अधिक अरेंद्रिक और सौंदर्य दृष्टि अधिक परिष्कृत होने के कारण उसकी प्रेयसी का लालित्यगुण भी अश्लीलता नहीं है। नरेन्द्र की "चादनी', "तुम" "मानिनी"[2] आदि कविताओं मे यह भावना स्पष्ट है। निराला ने भी "जग के रगमच की सगिनि' के लिए "परिहास हास रस रगिनी" विशेषण का प्रयोग किया है।[3] इस प्रकार की भावना पर रवीन्द्र की "आह्वान" आदि कविताओं का प्रभाव देखा जा सकता है।

'प्रेयसी' जिसका पुरुष पक्ष है या परगत दृष्टिकोण (Objective view) है, प्रणयिनि उसी का नारी पक्ष या निजगत दृष्टिकोण (Subjective view) है। उसमें हम देखते हैं कि आधुनिक कवियों ने रीतिकालीन ऊहात्मकता का परित्याग कर नारी के भाव-पक्ष देखने का प्रयत्न किया है।

आधुनिक कवि के विचार में प्रेम "स्त्री-जीवन का सत्य है—जो कहती है मैं नहीं जानती वह दूसरे को धोका तो देती ही है, अपने को भी प्रवचित करती है"[4] कवि का विश्वास है कि 'जीवन में वह आलोक का महोत्सव' प्रत्येक नारी के जीवन में आता है "जिसमे हृदय हृदय को पहचानने का प्रयत्न करता है, उदार बनता है और सर्वस्व दान करने का उत्साह रखता है।"[5] नारी के जीवन मे शैशव के अवसान में जिस तारुण्य का प्रवेश होता है उसका भावात्मक मूल्य कवि ने परखा है यौवन के आगमन से पूर्व जो मन अनविधे मोती के समान प्रतिमारहित मदिर के सामान[6] होता है उसी में यौवन

---

[1] बिहारी रत्नाकर - ८८, २४२, ५७१, तथा ५०५.

[2] नरेन्द्र शर्मा—कर्णफूल

[3] सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—गीतिका, पृ० ४१, ३८

[4] प्रसाद—चद्रगुप्त, ४, ९, पृ० १९३

[5] प्रसाद—ध्रुवस्वामिनी, ३, पृ० ६६

[6] इस आबदार मोती में था तार न सोया।
था प्रणय सूत्र को इसके मनमुक्ता में न पिरोया।
यह मुकुल अभी ही खिल कर मुख खोल अवाक हुआ है।
है अभी अछूता दामन मधुपों ने नहीं छुआ है॥
मन मंदिर सुरुचि बना है, है प्रतिमा अभी न थापी।"
(गुरुभक्त सिंह, नूरजहाँ, ६ सर्ग पृ०, ७५)

देखिए—सुमित्रानंदन पंत 'ग्रन्थि' पृ० १४-१५

"प्रथम प्रणयरश्मि"[1] कर लेकर आता है और हृदय "बहुरंग भाव" से भरजाता है। चारों ओर आनंद झरने लगता है और अंतर कलरव की पुलक से भर जाता है। "विस्तृत दिगंत के पार प्रिय बद्ध दृष्टि" "अलख सखा के ध्यान"[2] को लेकर अमल खुल जाती है। उस उषाकाल में वह देखती है -

प्रथम किरण कंप प्राची के दृगों में
प्रथम पुलक फुल्ल चुंबित बसंत की
मंजरित लता पर,
प्रथम विहग बालिकाओं का मुखर स्वर
प्रणय मिलन गान,
प्रथम विकच कलिद वृत पर नग्न तनु
प्राथमिक पवन के स्पर्श से कांपती।"[3]

और उसके भावक्षेत्र में एक आकांक्षा जाग्रत होती है —

"सर्वस्व समर्पण करने की विश्वास महातरु छाया में"[4]

उर्मिला के इन शब्दों में इसी भाव की मुखर व्यंजना है . —

"खोजती हैं किन्तु आश्रय मात्र हम, चाहती हैं एक तुम सा पात्र हम।"[5]

जब कल्पना को आकारप्राप्त हो जाता है और मन "फैला समष्टि में खिंच स्तब्ध"[6] हो जाता है तब "इच्छा से प्राण वे दूसरे के हो गए"[7] और

"मिली ज्योति छवि से तुम्हारी ज्योति छवि मेरी"[8]

तब सामाजिक बाधाएँ उपस्थित होकर मार्ग कुंठित कर देती हैं। नारी को "कुल, मान ग्रंथि में बंध कर" 'मूक संताप हृदय में' लिए अपने से विमुख हो कर—"बद्ध संसार के"[9] संस्कारों के वश में होना पड़ता है। "प्रथुल प्रणय भार"[10] के रहते भी: -

"रूढ़ि, धर्म के विचार, कुल, मान, शीलज्ञान,
उच्च प्राचीर ज्यों घेरे जो थे मुझे जब मैं संसार में रखती थी पदमात्र
छोड़ कल्प-निस्सीम पवन विहार मुक्त।"[11]

गुरुभक्त सिंह ने अनारकली और नूरजहां की जीवन गाथाओं में इन्हीं समस्या चक्रों में पड़े नारी-जीवन पर प्रकाश डाला है। किन्तु उनकी नायिकायें इन उलझनों पर विजय नहीं पासकी हैं। प्रेम के मार्ग में समाज की क्रूरताओं से दलित हो कर भी वे विद्रोह

---

[1] निराला — अनामिका · 'प्रेयसी' पृ १, देखिए (क) नूरजहां-६ सर्ग पृ० ४५ "जब शैशव . फूला"
(ख) सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' परिमल: गीत १७.
[2] सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—गीतिका, पृ० १७, १७.
[3] सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—अनामिका : प्रेयसी, पृ० २०
[4] जयशंकर प्रसाद—कामायनी : लज्जा पृ० ८२.
[5] मैथिलीशरण गुप्त—साकेत, सर्ग १, पृ० १६
[6] सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—अनामिका : प्रेयसी।

नहीं करती। किन्तु निराला जैसे स्वच्छंदता-प्रिय कवियों ने इन विवशताओं को तोड़ने का प्रयत्न किया है। उनकी अनामिका की "प्रगल्भ प्रेम" और "मुक्ति" नामक कविताओं में तथा गीतिका के ३३ वें गीत[1] में उनकी विद्रोहमयी प्रवृत्ति का परिचय मिलता है, यह प्रवृत्ति 'प्रेयसी' में प्रतिफलित होती दिखाई देती है जब वह प्रिय के आह्वान को सुनकर घर और समाज के बंधनों की उपेक्षा करके जीवन के पथ में अग्रसर होती है। नारी के नारीत्व (हृदय) को तथा कल्याणी रूप की रक्षा करने हुए कवि ने मुक्त प्रेम के मार्ग को स्वीकार किया है। यहाँ पर पंत की "ज्योत्स्ना" का उल्लेख करना संभवत अनुचित न होगा जिसमें कवि ने "मनुष्य जाति की सभ्यता में नवीन स्वर्ण युग का समारंभ" करने के लिये जाति वर्ण की सीमाओं को तोड़कर प्रेम के लिए एक स्वच्छ और प्रशस्त मार्ग निर्मित किया है।[2] प्रसाद ने भी कामायनी मे अज्ञात रूप से इसी भावना का प्रतिपादन किया है।

किन्तु नारी-जीवन की कहानी का अंत यहीं नहीं हो जाता। उसने अपने अश्रुजल के संकल्प से जीवन के समस्त स्वर्ण स्वप्नों को दान किया है।[3] उसके जीवन का सत्य तो यह है :—

"एक क्षण का मिलन, चिर दिन याद री
एक क्षण सुख, फिर अमर अवसाद री।"[4]

उसका अमर प्रश्न यही रहा है —

"मिलन का सुख भी विरह की ओर है, मिलन पथ वह, विरह जिसका छोर है"[5]

नारी-जीवन का यह सत्य आधुनिक काव्य मे राधा,[6] गोपी[7], अनारकली,[8] सीता,[9] आदि को लेकर उपस्थित होता है। आदर्शवादी कवि ने विरह मे नारी-प्रेम की पूर्णता पाई है। जिस प्रकार अग्नि में तप कर स्वर्ण निखर आता है उसी प्रकार वियोग की कसौटी पर प्रेम की उज्ज्वलता, दृढता और वासनाहीनता का विकास होता कवि ने देखा है। वह तो यहाँ तक कह देता है :—

---

[1] टूट गए सब आट ठाट, घर छूट गया परिवार
× × ×
कर्म कुसुम अपने सब चुन चुन, निर्जन में प्रिय के गिन गिन गुण
गूँथ निपुण कर से, उनको सुन, पहनाया था हार।"
(सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—गीतिका, पृ० ३६, ३३)

[2] सुमित्रानन्दन पन्त —ज्योत्स्ना, पृ० ६९ ७७, पृ० ११७—१३१.

[3] क्या कहती हो ठहरो नारी, संकल्प अश्रुजल से अपने।
तुम दान कर चुकी हो पहले जीवन के सोने से सपने।
(जयशंकर प्रसाद —कामायनी : लज्जा, पृ० ८३)

[4] राजेश्वर गुप्त —शेफाली, पृ० १६.

[5] मैथिलीशरण गुप्त—द्वापर.

[6] गुलाबभक्त सिंह—नूरजहाँ.

[7] आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव —झांकी : पार्वती और सीता।

धन्य दूरता ही प्रिय की, जो और निकट ले आवे,
चर्म चक्षुओं के बदले यह आत्मा उसको पावे।"[1]

अस्तु, मिलन और विरह के उभय तटों के मध्य आधुनिक कवि की प्रणयिनी अपने अक्षय प्रेम के सागर को लेकर उपस्थित होती है। वह स्नेह की सरिता के तट पर अपार रस अपने वक्ष में लेकर चलती है। उस समय उसके नयनों मे निष्कप ज्ञान है, भाव में नम्रता है और मुख पर प्रफुल्लता। और इस प्रकार वह 'अविचलित" होकर जीवन-पथ पर अग्रसर होती है।[2] प्रेम के प्रथम प्रदर्शन में स्वभावजन्य लज्जा एक आवरण हो जाती है।[3] किन्तु उसका आत्मसमर्पण पूर्ण है,[4] और तन्मयता अपूर्व[5]। नारी-जीवन की सपूर्ण कथा इसी में निहित है। नारी के आत्मसमर्पण में किसी प्रकार की स्वार्थ भावना नहीं है।[6] नारी के इस निरपेक्ष और निष्काम प्रेम को स्वयं सुभद्राकुमारी ने "ठुकरा दो या प्यार करो" नामक कविता में व्यक्त किया है —

"मैं उन्मत्त प्रेम की लोभी हृदय दिखाने आई हूँ।
जो कुछ है बस यही पास है, इसे चढ़ाने आई हूँ॥
चरणों पर अर्पित है इसको चाहो तो स्वीकार करो।
यह तो वस्तु तुम्हारी ही है, ठुकरा दो या प्यार करो॥"[7]

---

[1] मैथिलीशरण गुप्त—द्वापर।

[2] स्नेह की सरिता के तट पर चल रही युगल कमल घट भर।
नयन ज्योति में ज्ञान अकपित, चली जा रही नत मुख, विकसित,
जीवन के पथ पर अविचलित, छवि अपार सुदर।
(सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'—गीतिका, पृ० ४२, १९)

[3] सुभद्राकुमारी चौहान—मुकुल. कलह कारण, पृ० ३.

[4] (क) राधा—शरण एक तेरे मैं आई धरे रहे सब काम हरे।
तुझको एक तुझी को अर्पित राधा के सब कर्म हरे॥
(मैथिलीशरण गुप्त—द्वापर. राधा, पृ० ३)
(ख) गोपी —सिर माथे इस मनोज्ञ को हमने यहाँ लिया था।
लोक और परलोक सभी कुछ अपना सौंप दिया था॥ (वही)
(ग) जीवन को न्यौछावर करके तुच्छ सुखों को लेखा।
अर्पण कर सब कुछ चरणों पर तुममें ही सब देखा।
थे तुम मेरे इष्ट देवता, अधिक प्राण से प्यारे।
तन से, मन से, इस जीवन से कभी न थे तुम न्यारे।
(सुभद्राकुमारी चौहान—मुकुल : आहत की अभिलाषा, पृ० २९)
(घ) सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—गीतिका, पृ० ५, ५

[5] मैथिलीशरण गुप्त द्वापर, पृ० १७६ : "क्या मतवाले वह वंशीधर" आदि।

[6] जयशंकर प्रसाद - कामायनी. लज्जा, पृ० ८३ : "इस अर्पण...झलकता है।"

[7] सुभद्राकुमारी चौहान—मुकुल : ठुकरा दो या प्यार करो।

नारी के प्रेम मे तृप्ति है।[1] वह सात्विक और शुद्ध है।[2] साध्वी साधें क्षणिक व तड़प से रहित हैं, स्निग्ध मधुरभाव दाहकता से दूर हैं, अभिलाषायें उन्माद न होकर सुस्थिर हैं, और:—

"है अटूट यह प्रेम शृंखला दुर्बल पीड़ित प्यार नही ॥"[3]

आश्चर्य नहीं कि ऐसे प्रेम को लेकर प्रणयिनी नारी-प्रकृति से ही विरक्त पुरुष को ललकार सके .—

'तुम कहते हो आ न सकोगे, मैं कहती हूँ आओगे।
सखे! प्रेम के इस बधन को यों ही तोड़ न पाओगे।[4]

इतना ही नहीं उसे यह भी विश्वास है कि —

"मुझे छोड़कर तुम्हे प्राणधन सुख या शांति नही होगी।"[5]

प्रणयिनी के रूप मे नारी न केवल प्रेम करती है, वरन् पथ-प्रदर्शक, हृदय का हर्ष, उज्ज्वल स्फूर्ति और अभिलाषाओं की पूर्ति भी है।[6] अत वह पूर्णत जानती है कि उसके अभाव का अनुभव अवश्य होगा —

"मैं न रहूँगी जब, सूना होगा जग, समझोगे तब वह मंगल कलरव रव
था मेरे ही स्वर से सुन्दर, जगमग, चला गया सब साथ।"[7]

प्रिय की निष्ठुर उपेक्षा भी उस अचल प्रेम पर आघात नहीं कर पाती[8] और न जग के उपहास और निराशा के झोंके ही उसको लक्ष्य भ्रष्ट कर पाते हैं—

---

[1] मेरे तृप्त प्रेम से तेरी बुझ न सकेगी सुधा हरे।
निज पथ धरे चले जाना तू अलं मुझे सुधि सुधा हरे।
(मैथिलीशरण गुप्त—द्वापर . राधा, पृ० ४)

[2] मेरे इस पवित्र बन्धन मे मोह नही है, राग नही
मेरे इस स्नेही स्वभाव में है कलुषित अनुराग नही ॥
(सुभद्रा कुमारी चौहान—त्रिधारा—प्रेम शृंखला, पृ० ५१)

[3] वही.

[4] वही पृ० ५३ .

[5] सुभद्राकुमारी चौहान—मुकुल . स्मृतियाँ, पृ० १२

[6] सुभद्राकुमारी चौहान—मुकुल . स्मृतियाँ, पृ० १३.

[7] सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—गीतिका.

[8] उस निस्वार्थ प्रेम की पूजा को तुमने ठुकराया ॥

× × ×

अब जीवन का ध्येय यही है तुमको सुखी बनाना।
लगी हुई तेरी सेवा में चरणों पर बलि हो जाना ॥
(सुभद्राकुमारी चौहान—मुकुल : आहत की अभिलाषा, पृ० १०)

[1]प्रणयिनी नारी अपनी अमर प्रेम की निधि हृदय मे लेकर अन्य समस्त ससार को धूलिमात्र समझती हुई अविचल और निश्शक भाव से अग्रसर होती है। छल, भय, या लोभ उसे पतित नहीं कर पाते। उसके कोमल शरीर के अदर जो दृढ और अनाहत हृदय का कोट है उस पर विजय पाना दुस्तर है।[2] उसकी एक निष्ठता[3] चिर विरह मे भी आशा का दीप जलाये प्रेम की ज्वाला को जाग्रत रखती है और प्रिय के प्रति सतत् शुभाकाक्षाये विकीर्ण करती है।[4] अपने कारण प्रिय का अनिष्ट उसे किसी प्रकार भी ग्राह्य नहीं है।[5] वह त्याग-मयी है, न तो वह प्रेम का प्रतिदान चाहती है और न अपने कारण प्रिय को कष्ट देना[6]।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिक कवि ने नारी के प्रति अपने प्रेमभाव को भली भाति व्यक्त किया है, तथा नारी के प्रेम का आदर किया है। इस प्रकार की नारी-भावना हिन्दी काव्य में इससे पहले नहीं मिलती है। इसके विकास में विशेष रूप से

---

[1]आशाओं अभिलाषाओं का एक एक कर ह्रास हुआ
मेरे प्रबल पवित्र प्रेम का इस प्रकार उपहास हुआ
दुख नहीं सरबस हरने का, हरते हैं, हर लेने दो,
हे विधि इतनी दया दिखाना मेरी इच्छा के अनुकूल
उनके ही चरणों पर बिखरा देना मेरा जीवन फूल।
(सुभद्राकुमारी चौहान)

[2]तू फिर भी समझ न पाया है हृदय अभी नारी का।
उस पर न विजय पा सकता छल बल अत्याचारी का॥
उस कोमल तन के भीतर है हृदय कोट का मडला।
जिसमें न कभी घुस पाये हैं विश्व लुटेरों के दल॥
ये नयन पताकायें हैं अति गर्व सहित फहरातीं।
जब तक, न प्रेम की चोटें, उसमें घर कर, जय पातीं।
(गुरुभक्त सिंह—नूरजहा, सर्ग ४, पृ० २२)

[3]मैथिलीशरण गुप्त—द्वापर . गांधी, पृ० १७४.
देखिए –गुरुभक्त सिंह —नूरजहां, सर्ग ४, पृ० २९.

[4]हम सौ वर्ष जियेंगी अपनी आशा लेकर उर में
वह प्रसन्नता से प्रमोदरत रहे प्रतिष्ठित पुर में।
(मैथिलीशरण गुप्त—द्वापर गोपी, पृ० १८८)

[5]करना क्षमा भूल सब मेरी अब मै और न जीऊँगी।
तुम्हें धर्म सकट में रख कर विष की घूट न पीउगी॥"
(गुरुभक्त सिंह—नूरजहां, सर्ग ५, पृ० ४१)

[6]इन आँखों के मोती से मिट्टी को नहीं भिगोना।
मत मेरे लिए ज़रा भी प्यारे तुम रोना धोना॥
तुम भूल मुझे यों जाना ज्यों बालक स्वप्न सवेर।
पर हा भुला न मै पाऊँगी तुमको प्रियतम मेरे॥
(वही, सर्ग पृ० ३०४)

अंग्रेजी काव्य तथा बंगला काव्य प्रेरक रहे हैं। प्रेम के क्षेत्र में नायिकाओं के भेदाभेद को छोड़ कर कवि की दृष्टि एक शाश्वत् रूप की परख में अधिक सूक्ष्म हो गई है स्थूल ऐन्द्रिकता का परित्याग कर भावना की सूक्ष्मता की ओर अग्रसर हुई है, तथा सुन्दर का संयोग शिव से कर रही है। इस प्रकार वह भारत के अव्यवस्थित समाज तथा द्वंद्वपूर्ण नवयुवक मस्तिष्क के लिए एक नवीन संदेश भी है।

२—पत्नी रूप :

आधुनिक कवि रीतिकालीन कवि की भाँति नारी को केवल प्रेमिका के रूप में ही नहीं देखता, वरन् उसके उस रूप का अन्तर्मन से आदर करता है जो गृह तथा कुटुम्ब के मध्य विकसित होता है —अर्थात् पत्नी रूप। भारतीय अर्धांगिनी और गृह-लक्ष्मी की गरिमा ने उसकी कल्पना को अत्यंत परिष्कृत, सुरुचिपूर्ण तथा गौरवमय बना दिया है। कवि की भावना का झुकाव पूर्णतः गृह और परिवार सम्बन्धी प्राचीन भारतीय पावन आदर्शों की ओर है। किन्तु पौराणिक नायिकाओं को अपनाकर भी आधुनिक कवि ने जान बूझ कर स्मृतियों और पुराणों की उस भावना का परित्याग किया है जो स्त्री के प्रेम को अस्थिर और मिथ्या उसको ऐन्द्रिक तृप्ति मात्र का तथा संतानोत्पत्ति का साधन भर बताती है और उस पर पति-भक्ति के क्रूर नियमों को लाद कर, उसे निर्जीव छाया बना कर उसके व्यक्तित्व और स्वातन्त्र्य का हरण करती है।[1] इसके विपरीत वह उन सम्मतियों की ओर आकृष्ट है जो पत्नी को गृह का केंद्र, दुःखों में सबसे बड़ी औषधि, लक्ष्मी-स्वरूपा, तथा गृहस्थाश्रम का सुख-मूल बताती है।[2] वास्तव में इस प्रकार की भावना मूल तथा वैदिक है। ऋक् और अथर्व में हमें गृह और परिवार की सरस शांत कल्पना के मध्य पत्नी भी एक गौरवपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित मिलती है। वैदिक ऋषियों की नारी-भावना से आधुनिक कवि प्रभावित है, फलतः वह पत्नी को गृह-लक्ष्मी और अर्धांगिनी के रूप में देखता है।

---

[1]क. महाभारत—१३ : ३७ : १३, १५, २७.
ख. महाभारत—१३ . ४१ . ३५.
ग. मनुस्मृति—९ : १४ . १५.
घ. नारद स्मृति—१२ : १९.
च. पद्म पुराण—सृष्टि खंड ४९ २० आदि
[2]क. महाभारत—१३ : १४४ : ५.
ख. वही—१३ १४४ : १०—१६
ग. महाभारत—१३ : ८१ : १५.
घ. मनुस्मृति—३ : ५९.
च पद्म पुराण—उत्तरखंड . २२३ १७
छ. रघुवंश—८ . ६७ आदि।

इस युग के कवियों ने यशोधरा[1] और उर्मिला,[2] सीता[3] और दमयती,[4] मांडवी[5] और श्रद्धा[6] कांचनमाला[7] और रत्नावली[8] नूरजहाँ[9] और इयुओसिया,[10] सारधा[11] और द्रौपदी[12] आदि पौराणिक और ऐतिहासिक पात्रियों को लेकर पत्नी रूप में नारी की जिन विशेषताओं को आदर भाव से देखा है, तथा जिन विशिष्ट धारणाओं का प्रतिपादन किया है वह निम्नलिखित हैं :—

१. भारतीय पत्नी का एकात, स्थिर, वासनाहीन, त्यागमय, कर्तव्यतत्पर, धर्मनिष्ठ और तपस्वी प्रेम।

२. नारी का सतीत्व . सती शक्ति।

३. नारी का अर्धा गिनी तथा सहचरी रूप।

४. नारी का शक्ति रूप · प्रेरणा तथा सत्पथ प्रदर्शन।

५. नारी का गृहिणी रूप।

जैसा कि हम नारी के प्रणयिनी रूप की व्याख्या करते हुए देख चुके हैं, प्रेम नारी-जीवन का प्रथम सत्य है, और "जब से स्त्रियाँ प्रेम करना शुरू करती हैं तभी से उनका कर्तव्य भी शुरू हो जाता है। उनकी चिन्ता, विचार, युक्ति, कार्य आदि के प्रारभ होने का वही समय है।"[13] साथ ही इस युग के कवि के विचार से —
"उसे स्वातत्र्य पूर्णतम तब मिलता है, जब उसका मन पद्म प्रेम रवि से खिलता है।"[14] प्रेम की पूर्णता भारतीय कवि ने उस कोमल बधन में पाई है जहाँ नारी का आत्म-समर्पण

---

[1]मैथिलीशरण गुप्त—यशोधरा।

[2]मैथिलीशरण गुप्त—साकेत, शिवरत्न शुक्ल—भरतभक्ति,

[3]मैथिलीशरण गुप्त—साकेत, अयोध्यासिह उपाध्याय—वैदेही वनवास।

[4]प्रतापनारायण—'कविरत्न"-नल नरेश।

[5]मैथिलीशरण गुप्त—साकेत, शिवरत्न शुक्ल—भरतभक्ति।

[6]जयशकर प्रसाद—कामायनी।

[7]मैथिलीशरण गुप्त—कुणालगीत।

[8]सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'—तुलसीदास।

[9]गुरुभक्तसिह—नूरजहाँ।

[10]मैथिलीशरण गुप्त—अर्जन और विसर्जन।

[11]द्वारकाप्रसाद रसिकेन्द्र—सती सारधा।

[12]मैथिलीशरण गुप्त—सैरंध्री तथा वनवैभव, शिवदास गुप्त—कीचक वध।

नोट :—सती स्त्रियों के प्रति विशेष आकर्षण होने पर भी इस युग के काव्य में सती सावित्री तथा तपस्विनी पार्वती सबंधी काव्य का आश्चर्य जनक अभाव पाते हैं इसका कारण स्पष्ट नहीं हैं।

[13]रवीन्द्र नाथ ठाकुर—विचित्र प्रबंध : स्त्री पुरुष, पृ० २१३।

[14]प्रतापनारायण कवि-रत्न—नल नरेश, सर्ग १५, पृ० २७१।

अपनी चरम परिणति को प्राप्त करता है,[1] और उसकी विभूतियाँ घर के आगन को आलोकित करती हुई ससार मे भी अपनी ज्योति बिखेर देती हैं। किन्तु इस अवस्था में उसका प्रेम एक भावना मात्र नहीं रह जाता, वरन् कठोर कर्तव्य के साथ अपनी उज्ज्वलता और विशालता प्रकट करता है। वियोग, जो प्रेम की अनिवार्य स्वीकृति है, नारी-जीवन की परीक्षा है; और क्योंकि वियोगिनी में ही नारी का अप्रच्छन्न निजी व्यक्तित्व स्पष्ट होता है, आधुनिक कवि प्राय उसे ही अपनाता हुआ देखा जाता। वास्तव में इस युग का कवि प्रेम से सबल, और रीतिकालीन नायिका की निश्चेष्टता के विरुद्ध, सचेष्ट, धीर, प्रशात, त्यागमयी नारी मूर्ति की ओर अधिक आकर्षित है। आधुनिक कवि ऐन्द्रिक सुख के समर्थक मिलन की अपेक्षा कर्तव्यमय वियोग की ओर अधिक झुका है।

वियोग जैसे नारी के जन्मजात अधिकार के रूप में आता है, किन्तु भारतीय नारी उसे ईश्वरीय दान के रूप में ग्रहण करती हुई देखी जाती है[2]। "निर्दयी पुरुषों के पाले पड़कर हम अबला जनों के भाग्य में रोना ही लिखा है"[3] जैसे विद्रोहात्मक वचन भी उसे अपने प्रेम-पथ से विचलित नहीं करते। इस अवस्था में पत्नी का जीवन एक साधना हो जाता है। प्रिय की इच्छाओं में ही अपने को लीन करके[4] मिलन की मादक आकाक्षा को भूलकर, वह असीम धैर्य और दृढता का परिचय देती है। वह उपेक्षिता अनुरागिनी जीवन में एक आशामय दृष्टिकोण लिए हुए "दुख को सुख कर लेती"[5] हुई सब कुछ सहन करती है, फिर भी उसकी समस्त शुभाकाक्षायें प्रिय की दिशा में विकीर्ण होती हैं। मिलन के ऐन्द्रिक तृप्ति वियोग में अतर्मुखी होकर प्राणों में ढल जाती है।[6] विरहिणी वियोग को परीक्षा का अवसर समझती है किन्तु वह भयभीत नहीं होती। ऐसे अवसर पर "कुसुमादपि सुकुमारी" 'वज्रादपि कठोर' होकर निज योग्यता को सिद्ध करती है।[7] पति

---

[1] वर तरु से लतिका सी तरुणी लिपट एक हो जाती है।
उसके ही सग अपनी लीला कर समाप्त सो जाती है॥
(गुरुभक्तसिंह—नूरजहाँ, सर्ग ११, पृ० ९०)

[2] सिर माथे तेरा यह दान, है मेरे प्रेरक भगवान।
(मैथिलीशरण गुप्त—साकेत, सर्ग ९, पृ० ३१८)

[3] मैथिलीशरण गुप्त—यशोधरा : राहुल जननी, पृ० १०२.

[4] मैथिलीशरण गुप्त—यशोधरा शुद्धोधन, पृ० ३१—३३, यशोधरा, पृ० ४१

[5] जयशंकर प्रसाद—कामायनी दर्शन, पृ० १७९.

[6] दिव्य मूर्ति वंचित भले चर्म चक्षु गल जाएँ
प्रलय पिघल कर प्रिय न जो प्राणों में ढल जाएँ
जैसे गध पवन में। (मैथिलीशरण गुप्त—यशोधरा : यशोधरा, पृ० ७५)

[7] (क) अब कठोर हो वज्रादपि, ओ कुसुमादपि सुकुमारी।
आर्यपुत्र दे चुके परीक्षा, अब है मेरी बारी। (वही, पृ० ४१)
(ख) यदि मैं पतिव्रता तो मुझको कौन भार-भय भारी
आर्यपुत्र दे चुके परीक्षा अब है मेरी बारी। (वही, पृ० ४४)

को निज कर्तव्यपथ पर सर देख कर सतुष्ट होती हुई वह आत्मशक्ति का परिचय देती है।[1] एक निरीह अबला के रूप में वह दया की भीख नहीं मागती। उसमें गर्व है, आत्माभिमान है, तथा विश्वास की दृढता है। उसके आत्माभिमान का मूल है उसका अर्धागी भाव। उसी के बल पर पति की अनुपस्थिति में भी वह अपने को अनाथ नहीं पाती।[2] अपने अर्धभाग के अधिकार की चेतना लिए हुए वह कह पाती है.—

'देखू एकाकी क्या लोगे गोपा भी लेगी तुम दोगे।"[3]

अपने प्रेम और सतीत्व को लेकर उसे गर्वभरा विश्वास है कि. –

"नाथ तुम जाओ, किन्तु लौट आओगे, आओगे, आओगे।"[4]

जिस प्रकार भक्त आत्मसमर्पण करने के बाद भगवान की दया में पूर्ण विश्वास रखता है उसी प्रकार नारी अपनी निश्चल पति-भक्ति के बल पर कह सकती है —

'उन्हें समर्पित कर दिए यदि मैंने सब काम
तो आवेंगे एक दिन निश्चय मेरे राम।
यहीं, इस आंगन में,"[5]

इसी अचल प्रतीति को लेकर तो वह मान भी कर सकती है।[6] यह मान रीतिकालीन नायिका के मान से बहुत भिन्न है। इसके पीछे काम प्रेरणा नहीं वरन् सिद्धांतोंयुक्त विचारधारा है। यह मान नारी के व्यक्तित्व का परिचायक है।

वियोग में आधुनिक कवि की नारी का प्रमुख सिद्धान्त कर्तव्य-पालन है। मोह उसकी बुद्धि को आवृत्त नहीं कर पाता,[7] समाज मे अपने उत्तरदायित्व को समझती है और वह वधूवश की लज्जा सुरक्षित रखने के लिए दृढ भाव से उद्यत हो जाती है।[8] किसी रूप

---

[1] जायें, सिद्धि पावें वे सुख से, दुखी न हों इस जन के दुख से,
उलाहना दूँ मै किस मुख से आज अधिक वे भाते। (वही, पृ० २३)
देखिए – मैथिली शरण गुप्त--साकेत, सर्ग ९, पृ० ३१३.

[2] अर्ध विश्व में व्याप्त शुभाशुभ मेरी भी कुछ मति है।
मैं भी नहीं अनाथ जगत में, मेरा भी प्रभु पति है। (वही, पृ० ४४)

[3] वही, पृ० २५.

[4] वही, तथा पृ० २४ "मेरे यह निश्वास व्यर्थ यदि तुमको खींच न लाये"

[5] वही, पृ० ४६.

[6] उद्धारक चाहे तो आवें, यहीं रहे यह चेरी।" (वही, पृ० २०२)

[7] वही, पृ० ३३, तथा साकेत, सर्ग ६, पृ० १४७.

[8] यशोधरा के भूरि भाग्य पर ईर्ष्या करने वाली,
तरस न खाओ कोई उस पर, आओ भोली भाली।
तुम्हें न सहना पड़ा दुःख ग्रह, मुझे यही सुख आली।
वधूवश की लाज दैव ने आज मुझी पर डाली।
(मैथिलीशरण गुप्त- यशोधरा : यशोधरा, पृ० ४४)

में भी वह उस प्रिय की, जो समाजहित में प्रवृत्त है, बाधा बनना उसे स्वीकार नहीं है; इस प्रकार उसका स्वार्थ त्यागपूर्ण तथा अनुराग-विरागमय हो उठता है।[1] बाधा बनने के स्थान पर श्रेयस्पथ के पथिक को समुचित विदा देना ही वह चाहती है।[2] प्रिय का गौरव ही उसका गर्व हो जाता है, और वियोग की विकलता उसमें सफलता पाती है। समाज के सुख में उसके आँसू डूब जाते हैं।

आधुनिक कवि ने पत्नी के प्रेम में वासनाहीनता और विवेकपूर्णता पाई है। यह भावना परपरागत नारी भावना के सर्वथा विरुद्ध है तथा नवीन है। पुरुष नारी को "वासना की मधुर छाया" के रूप मे देखता है किन्तु नारी की वास्तविकता यह नहीं है। "नव वय में विश्लेष" होने पर भी काम उस पर विजय पाने मे असमर्थ है। "सती शिवा सी तपस्विनी" सयमित जीवन व्यतीत करने के लिए अलकारों और शृगारों का परित्याग करती है,[3] किन्तु उसका सिंदूरविंदु एक जलता अगार है जो पति-पथ के विघ्नों को दूर करने[4] के साथ साथ काम के लिए हरनेत्र भी है। अभिमानिनी विरहिणी काम को ललकार कर कह उठती है :—

"नही भोगिनी यह मै कोई, जो तुम जाल पसारा
बल हो तो सिंदूरविंदु यह, यह हरनेत्र निहारो।
रूप दर्प कंदर्प तुम्हे तो मेरे पति पर वारो,
लो यह मेरी चरणधूलि, उस रति के सिर पर धारो।"[5]

उर्मिला जो विदेह की पुत्री तथा एक प्रतिष्ठित कुल की वधू है, "देह भोग" की लालसा से लक्ष्मण को एक गौरवमय व्रत से वंचित नहीं करती।[6] इसके विपरीत वह यही कहती है —

"रहते घर नाथ, तो निरा कहती स्त्रैण उन्हे यह गिरा।
जिसमें पुरुषार्थ गर्व था, मुझको तो वह एक पर्व था।"[7]

उर्मिला की कर्तव्य-भावना इतनी प्रबल है कि अचेतन अवस्था मे भी जब उसे भ्रम हो जाता है कि लक्ष्मण प्रेमवश कर्तव्य च्युत हो गए हैं, तो वह चिल्ला उठती है —

प्रिय, फिरो, फिरो हा फिरो फिरो। न इस मोह की धूम से घिरो।
विकल मैं यहाँ किन्तु गर्भिणी। न कर दो मुझे नष्टपत्निणी।

---

[1] मेरी नयन मालिके माना तूने बधन तोडा।
पर तेरा मोती न बनें हा प्रिय के पथ का रोडा। (वही, पृ० ९०)
देखिए—मैथिलीशरण गुप्त साकेत, सर्ग ४, पृ० ९३

[2] साकेत सर्ग ६, पृ० १४८, तथा यशोधरा यशोधरा, पृ० २१. २२.

[3] यशोधरा यशोधरा, पृ० ३८.

[4] बस सिंदूरविंदु से मेरा जगा रहे यह भाल।
यह जलता अंगार, जला दे उनका सब जंजाल॥ (वही, पृ० ३८)

[5] साकेत—सर्ग, ६, पृ० २९२

[6] साकेत, सर्ग १०, पृ० ३६२.

[7] वही, पृ० ३६१.

च्युत हुए अहो नाथ जो यथा, धिक्, वृथा हुई उर्मिला-व्यथा।
× × ×
तुम मिलो मुझे धर्म छोड़ के, फिर मरूँ न क्यों मुड फोड के।"[1]

अविचल भाव से कर्तव्य और धर्म का पालन करती हुई पत्नी पति की शुभ प्रेरणा र पथ-प्रदर्शक हो जाती है। इस युग के कवि ने पुरुष मे नारी से अधिक विलास-प्रेम ा वासना की प्रधानता देखी है। "मत्त गज बनकर" जब वह विवेक छोड़ने के तट होता है तब स्त्री ही उसको सन्मार्ग दिखाती है।[2] जब दमिश्क अरबों के आक्रमण से त है तब सीरियन सेनानायक की पुत्री इयुडोसिया मातृभू के सकट-निवारण को प्रथम ेय जानती हुई भावी पति जोनस के विवाह प्रस्ताव से पीड़ित हो उठती है।[3] उस समय मुकता के अभाव में कर्तव्य-प्रेरणा से पूर्ण नारी का कठोर रूप साक्षात चडी के समान वता है।[4] इसी प्रकार रसिकेन्द्र की सारधा पति की विलासिता को दूर कर र्तव्यच्युत होने से कई बार बचाती है[5] और निराला की रत्नावली तुलसी को वासना-क करके चिर शाति की ओर अग्रसर करती है।[6]

इतनी कर्तव्यनिष्ठा से भरी नारी को कवि वियोग मे असहाय की भाति रोते और ाध होते कैसे देख सकता है। आधुनिक कवि की नायिका तो क्षणिक आवेश पर जय पाकर पतिहित और लोकाराधन हेतु निर्वासन को भी सहर्ष स्वीकार कर लेती है,[7] र चाँदनी भी जो पूर्ववर्ती काव्य मे विरहिणियों के लिए दाहक कही जाती रही है, अब ग्र, भावों की वाहक हो जाती है।[8]

---

[1] वही, सर्ग ९, पृ० ३१३.

[2] जहाँ जहाँ पर पुरुष अंध बन कर ठोकर खाता,
वहाँ वहाँ मस्तिष्क काम में स्त्री का आता।
मानव का उद्धार किया करती है नारी,
मे ही क्या, यह बात कथाएँ कहती सारी।
(प्रतापनारायण कविरत्न—नलनरेश, सर्ग १५, पृ० २७८, ७१)

[3] अजमिति हृय सबे, आज जब सबके सम्मुख उपस्थित ह जीवन मरण का
प्रश्न, तब व्यक्तिगत स्वा- क्या उचित है? कातर हमारी मही माता दस्यु पालिता।
× × ×
और हम उसकी प्रसूति युवा युवती, कामियों का क्रदन कर हा! यहाँ बैठके!
प्रेम के प्रलय रहे, आज सब ओर से, निष्ठुर कर्तव्य ही पुकारता ह हमको।
(मैथिलीशरण गुप्त—अजन और विसजन अजन, पृ० ५)

[4] वही, पृ० ७—८

[5] द्वारकाप्रसाद 'रसिकेन्द्र'—सारधा, सर्ग, ५, पृ० ४४—४५.

[6] सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—तुलसीदास, ८५ - ८६

[7] अयोध्यासिंह उपाध्याय—वैदेही वनवास, सर्ग ६, पृ० ५९—६०, २५—३१,
तथा पृ० ६३—६४, ४७—५७.

[8] वही, सर्ग १०, पृ० १२१.

नारी को इतना कर्तव्य-तत्पर और धर्मनिष्ठ देखने का तात्पर्य यह नही है कि कवि ने उसे मानवी न मान कर आदर्शों की प्रस्तरमूर्ति माना है। कवि ने नारी के हृदय में प्रेम का अगाध सागर देखा है मानव सुलभ दुर्बलताये भी देखीं हैं, किन्तु नारी को उसने महत् और लोककल्याण की ओर लक्ष्य करनेवाली शक्ति के रूप मे देखा है। फलत उसका प्रेम कामुक दुर्बलता मात्र नहीं है। त्याग और सयम के आदर्श लेकर वह वास्तविक मगलमय लक्ष्य की ओर अग्रसर होती है।

इस युग के कवि ने नारी के पतिव्रत और सतीत्व को अत्यत प्रशस्त दृष्टिकोण से देखा है। किन्तु अब उसका आदर्श सहमरण तक ही सीमित[3] नही रह गया है, इसके विपरीत वह कहता है —

"सहमरण के धर्म से भ ज्येष्ठ, आयु भर स्वामि-स्मरण है श्रेष्ठ।"[4]

आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव ने एक पग और आगे बढाया है। उनकी नूरजहाँ पति की स्मृति को अमर बनाने के लिए ही तथा अपनी दुर्बलता पर विजय पाने के लिए शेर अफगन की मृत्यु के पश्चात् जहाँगीर का वरण करती देखी जाती है।[5]

---

[3] साध्वीनामिह नारीणामग्निप्रपतनादते।
नान्यो धर्मो स्त्र विज्ञेयो मृते भर्तरि कुत्रचित्॥
(याज्ञवल्क्य स्मृति में अपरार्क द्वारा उद्धृत १, ८७)

[4] मैथिलीशरण गुप्त—साकेत, सर्ग ७, पृ० १९३

[5] उनकी पत्नी होने का सौभाग्य भी
मुझे प्राप्त था, उनका कठिन वियोग जो
था असह्य, मेरे मन ने उनको सहा जो
मैने वर लिया पुन सम्राट को।
वह उनके प्रति उदासीनता थी नहीं,
थी कठोरता नही, दोष उसमें न था,
किन्तु सबलता थी वह मेरे हृदय की
मुझ मे थी पति-भक्ति नहीं कम आज भी
मन मे उनकी स्मृति ज्वलत है अग्नि सी,
किन्तु बैठ कर गाना उनके लिए
मानवता के थी अयोग्य गुरु-दीनता।
वीर श्रेष्ठ थे वे, मुझको भी वीरता
धारण कर जीवित रहना था जगत् में
हृदय कडा कर लिया इसी से शीघ्र ही
कर लेने को स्वीय सफल ससार को।
यदि कोने में एक पडी रहती कहीं
दीन हीन मे, निबल बन, असहाय बन,
कौन पूछता मुझे, उन्हे भी जानता
कौन जगत में?

× × ×

मन था जिसका रहा उसी का नित्य ही, तन मे क्या वह एक तुच्छ सी वस्तु है।
(आनदीप्रसाद श्रीवास्तव झाँकी, पृ० ५३—५६)

एकनिष्ठ और स्थिर प्रेम ही नारी को सती बना देता है। सतीत्व नारी की शक्ति है जिसको लेकर कामी तथा अत्याचारी के नाश के लिए कोमल अबला भी चंडिका हो जाती है[1]। "पतिव्रता के कोपानल" मे ससार को भी भस्म कर देने की शक्ति वर्तमान है [2]। विभीषण ने रावण का ध्यान इस ओर आकर्षित करने का प्रयत्न किया था[3] किन्तु मदान्ध रावण ने उसकी सत् सम्मति को न माना, उसका परिणाम तो हमे ज्ञात ही है।

आधुनिक कवि ने पत्नी को अर्धा गिनी और सहधर्मिणी के रूप मे देखा है और उसे पति की शक्ति माना है। कवि के सम्मुख आदर्श देवताओं का है —

"शिव शक्ति हीन शव हों जो छोड दे भवानी।"[4]

पूर्वजों के कथनों की प्रतिध्वनि करता हुआ कवि कहता है कि विवाह एक अनिवार्य आवश्यकता है क्योंकि उसके बिना मनुष्य अधूरा ही है[5] और —

"माता, भगिनी, पत्नी, कन्या नारी ही नर कुल धन धन्या
पत्नी रूप प्रकृत नारी का, मूलभूत इस फुलवारी का
जब मेरे सम्मुख आवेगा सहधर्मिणी उसे पावेगा।"[6]

अर्धा गिनी के बिना पुरुष कोई कार्य सफलतापूर्वक कर सकता है इसमे भी कवि को सदेह है[7]।

---

[1] जो सकप तनुयष्टि फूलती रज्जु सदृश थी,
शिथिल हुई निर्जीव दीख पडती अति कृश थी,
आहा अब हो उठी अचानक वह हुँकरिता,
दाव-पेंच खा बनी काल फणिनी फुकरिता,
मैं अबला हूँ किंतु न अत्याचार सहूँगी,
तुझ दानव के लिए चडिका बनी रहूँगी।
(मैथिलीशरण गुप्त—त्रिपथगा सेरिडी, पृ० ३९—४०)
देखिए—मैथिलीशरण गुप्त—काबा और कर्बला काबा न्याय पृ० ५५
गुरुभक्त सिंह—नूरजहाँ, सर्ग १५, पृ० ११३, तथा
प्रतापनारायण कविरत्न—नलनरेश, सर्ग १२, पृ० २२०, ६६

[2] पतिव्रता के कोपानल मे भस्म हो सके यह ससार,
सती शक्ति है सती स्वरूपा, सदा सर्वदा अपरपार।
(नलनरेश, सर्ग १२, पृ० २१८, ८८)

[3] उड़ जाव। दग्ध देश का सती श्वास से ही बल वित्त,
राम और लक्ष्मण तो हागे कहने भर के लिए निमित्त।
(साकेत, सर्ग ११, पृ० ३९१)

[4] मैथिलीशरण गुप्त—स्वदेश सगीत 'आर्य भार्या', पृ० ८१

[5] मुझ अर्धा गिनी के बिना अभी है अर्धा ग अधूरे ही,
(साकेत, सर्ग ४, पृ० १००)

[6] मैथिलीशरण गुप्त—अनघ, पृ० ५२

[7] हूँ मैं आधा अग तुम्हारा, मेरे बिना कभी कुछ काम
कर सकते तुम नहीं कहीं पर, सच कहती हूँ हे छविधाम।
(नल नरेश, १२ सर्ग, पृ० २०९)

जनसेवा, जो आधुनिक युग की प्रबल माँग है, वह भी सहधर्मिणी के बिना अपूर्ण ही है।[1] सहधर्मिणी को आधुनिक कवि ने प्रत्येक कार्य मे पति का सहयोग देते हुए देखा है, यहाँ तक कि राजनीति भी उसके विचार के बाहर की वस्तु नहीं समझी गई है। नीति-निपुण और न्याय निरत राम को भी कभी कभी गूढ समस्यायें विचलित कर देती हैं,[2] तब सीता ही उनकी सहायता के लिए पहुँचती हैं।[3] इसीलिए कवि कहता है —

'हे विपिन निधि पोत स्वरूपा। सहकारी सिद्धियों की है॥
हे पत्नि न केवल गेहिनी। सहधर्मिणी मन्त्रिणी भी है।[4]

इस प्रकार सहयोग देती हुई कल्याणी नारी पति की सच्ची मित्राणी,[5] सुख तथा दुख की सगिनी,[6] छाया के समान उसको शीतलता और सुख प्रदान करने वाली,[7] अवलब[8] और शक्ति हो जाती है।[9] निराशा के अवसर पर वह आशा और उत्साह का सदेश लेकर उपस्थित होती है, राक्षसी माया से 'आलोक किरण" बनकर रक्षा करती है, और साथ ही साथ "जीवन जलनिधि से मुक्ता निकालने" का प्रयत्न करती है, वह पुरुष की पाशविक वृत्तियो का शमन करके उसमें मानवता का समावेश करती है, हिंस क्रूरता को

[1] मुझे ह इष्ट जन सेवा, सदा सच्चा भुवन सेवा।
न होगी पूर्ण वह तब तक न हो सहधर्मिणी जब तक।
(मैथिलीशरण गुप्त—अनघ, पृ० ०१)

[2] अयोध्यासिंह उपाध्याय—वैदेही वनवास ६ सर्ग, पृ० ७२, ४२

[3] वही—पृ० ७२, ४३
देखिए—नलनरेश ९ सर्ग, पृ० १५२

[4] वैदेही वनवास, ६ सर्ग, पृ० ७२, ४४

[5] पत्नी सदृश नहीं त्रिभुवन मे कहीं मिलेगा सच्चा मित्र।
(प्रतापनारायण कविरत्न—नल नरेश, सर्ग १२, पृ० २०९, ४१)

[6] सुख दुख के सगी सखा से यों अपना मन मोड़ चले। (वही, पृ० २०१, ४२)

[7] मनमुग्ध हो तुम छाया मेरी, कितनी शीतल सघन अंधेरी।
तो क्यों मेरा भ्रमणशील यह जीवन कहीं डरे?
(मैथिलीशरण गुप्त—कुणालगीत, पृ० ६३, ४०)

[8] पथ हो विषम रात हो काली, तुम जो हो ले चलने वाली।
जब अचल का छाया वाली, तब क्या तप, क्या वृष्टि। (वही, पृ०, ६४, ४०)

[9] जिसकी तुम हो शक्ति स्वरूपा। जो तुमसे पौरुष पाता॥
जिसकी सिद्धिदायिनी तुम हो। तुम सच्ची गृहिणी हो जिसकी॥
× × ×
कैसे काल कटेगा उसका, उसको क्यों न वेदना होगी।
(अयोध्यासिंह उपाध्याय—वैदेही वनवास, सर्ग ६, पृ० ७१ ३७-४०)

विश्व-प्रेम और क्षमा में परिवर्त्तित करने के लिए 'जग-मगलमय सगीत सुनाती है।"[1] विविध अवसरों पर विविध रूपों में आकर वह स्नेहदान करती है—कभी माता-रूपिणी है, तो कभी भगिनी-सदृश और कभी सेविका है तो कभी सुखदा कामिनी।[2] साथ ही कभी-कभी वह प्रेरणामयी उत्तेजना भी हो जाती है —

"रवन वह जो जिलाती है, और झोंके भी लाती है।"[3]

अपमानिता द्रौपदी के अश्रुओं ने पाडवों के वैराकुरों को सींचा था,[4] और उसके वचन तो मृत को भी उत्तेजित कर देने वाले हैं —

"करो सजगता की न नाथ, तुम और टटोली।
आज आत्म सम्मान तुम्हारा जाग रहा क्या!
आघात हुए इतने तदपि नहीं हुआ प्रतिघात कुछ।
× × ×
जिसके पति हों पाच-पाच ऐसे बलशाली,
सुरपुर में भी कर कांत जिनकी उजियाली।
काली हो अरि कांति देखकर जिनकी लाली,
सहूँ लाछना प्रिया उन्हीं की मैं पाचाली।'[5]

किन्तु यह प्रेरणा प्राय पतन की ओर ले जाने वाली नहीं होती, वरन् पौरुष और महत्वाकाक्षा का सचार ही करके आत्मोन्नति की ओर अग्रसर करती है।[6] इस प्रकार पथ-भ्रष्ट को मार्ग-प्रदर्शन करती हुई, पतन से उसकी रक्षा करती हुई नारी न केवल

---

[1] जयशकर प्रसाद—कामायनी, पृ० ५६, ८७-८८, पृ० १०१ १०५ आदि
[2] मैथिलीशरण गुप्त—कुणालगीत, पृ० ४३, २५, तथा
प्रतापनारायण कविरत्न—नलनरेश, सर्ग १०, पृ० १८१
[3] मैथिलीशरण गुप्त—त्रिपथगा वन वैभव, पृ० १४, २२
[4] विषम वैराकुर पतियों के, न सींचें क्यों दृग सतियों के।
मैथिलीशरण गुप्त—त्रिपथगा वन वैभव, पृ० १३, २१
[5] वही पृ० ५१.
[6] दशा दलित हो गई यहाँ तक तुम्हें सूझती हरी हरी,
पौरुषहीन बने हो कब तक सेवोगे यो लालपरी।
× × ×
देवो समझो निज मर्यादा, अपने पुरुषों का सम्मान,
यो मत मिट्टी में मिल जाने दो अपने गौरव का ज्ञान।
× × ×
इस संसार समर प्रांगण में जीवन है क्या इक सग्राम,
रंगमच पर नायक बनकर दिखलावें हम अपना काम।
हम मनुष्य हैं, क्यों निराश हो बैठें, धरे हाथ पर हाथ,
यहाँ नहीं तो और देश में परखें भाग धैर्य के साथ।
(गुरुभक्त सिह—नूरजहाँ, ११ सर्ग पृ० ६—७)

लौकिक श्रेय की प्राप्ति मे सहायक होती है वरन् मोक्ष मार्ग की भी नष्ट हो जाती है। मध्य-कालीन भक्त कवियों ने नारी को भक्ति पथ और मोक्ष प्राप्ति की बाधा माना था। उन्होंने नारी के योनि-मात्र के रूप मे देखा था। नारी का शरीर भर कवि की दृष्टि का आश्रय था। किंतु आज का कवि नारी को मस्तिष्क, तर्क बुद्धि, कर्तव्य-शक्ति से युक्त एक मानवी के रूप में देखता है, फलत उसकी दृष्टि फैल गई है, और वह नारी को निर्वाण मार्ग की बाधा के स्थान पर सहायक के रूप मे देखता है। इसलिए उस [illegible], रत्नावली, कंचनमाला और श्रद्धा जैसी नारियों की ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुआ है। गौतम-पत्नी शोधरा को हम इस युग के तीन काव्यों मे पाते है। "बुद्धचरित" (रामचंद्र शुक्ल), "सिद्धार्थ" (अनूप शर्मा) तथा 'यशोधरा" (मैथिलीशरण गुप्त)। प्रथम मौलिक ग्रंथ नहीं किन्तु गौतमबुद्ध की कथा का परंपरा मुक्त रूप उपस्थित करके उसमें गोपा के क्रमपूर्ण स्थान पर अवश्य प्रकाश डालता है। "सिद्धार्थ" नवीन युग की मौलिक रचना है किन्तु इसमे विशेष मौलिकता न पाकर आश्चर्य होता है। इसमें भी हम शोधरा का प्रेमाधिक्य, धैर्य और गंभीरता से रहित कुछ कुछ उच्छृंखल सा व्यक्तित्व पाते है —

छलिनी वह भाग समान थी, [illegible] सुप्त शायक के अविवेक की।[1]

वह "अपाग निशानन पंडिता" प्रकृति के [illegible] के मानस को तरंगित करके शुद्धोदन
रणाओं को सत्य ही सिद्ध करती है, ज्यों [illegible] यशोधरा में सिद्धार्थ का प्रेम
त होने पर 'नारी की भुज वल्लरी वज्र की शृंखला कारागार समान
के सिद्धार्थ बनी।"[2]

---

[1] अनूप शर्मा—[illegible] पृ० ७४

[2] [illegible] के मार्ग [illegible] है,
समोग ही सफ [illegible] बिछा दो,
सिद्ध [illegible] का।
मधुर चाल [illegible] पीदास [illegible] अनेखा,
मानी [illegible] मूल प्रेरणा,
काता कटा [illegible] देख [illegible] मन मे बच जा,
[illegible] रोम।
आकृ [illegible]-चाप १६ ×
× [illegible] / तथा गिरा सुना [illegible]
जो स्वर्ग-प [illegible]" न लेगी।
सि [illegible]" रूपवती बनेगी,
सिद्धार्थ के [illegible] बाँधने की,
[illegible] ता तरुण जनों की
है पाश मे [illegible] बाँध लेती।" (वही, ५ सर्ग, पृ० ६७

[3] वही, ७ [illegible]

गुप्त जी की यशोधरा इस भावना का वैषम्य उपस्थित करती है। वास्तव में गुप्त जी भगवान बुद्ध के केन्द्र गो नके अमृत-तत्व की ओर इतने आकृष्ट नहीं हैं जितने उस समस्त तपस्या के त्याग कर नहीं जा की ओर। गुप्त जी की गोपा को महाभिनिष्क्रमण करते हुए सिद्धार्थ सिद्धार्थ के चले ते। उसे न जगाने का कारण यह है कि "अब भी है अप्राप्त मार्ग की बाधा समझ।"[1] ाने पर यशोधरा इस भावना मे सिहर उठती है कि उसे सिद्धि- एक कुत्सित आक्षेप हो ज। उसके हृदय पर सिद्धि हेतु जाने वाले का छिप का जाना भी गहन हो जाता है और ि। ।[3] और भलीभाँति विदा देने के अवसर का चू जाना गौतम के प्रत्यागमन का समाचा यशोधरा का प्रेम गौतम के महत् रूप को देख और है -"आलो उन्हें सिद्धि तो मिली के स्थान पर वह यही चाहती है — परिणति गौतमबुद्ध के ही शब्दों में दुखी न हों इस जन के दु ख से।"[4]

"आया जब मार मु· कर सखी से यशोधरा का सर्वप्रथम प्रश्न यह होना
अप्सरा अनीकिनी स यशोधरा की सहानुभूति और सद्भावना चरम
तुम तो थीं यहाँ क होती है —
जूझा मुझे पीछे ारने को बारबार
इस प्रकार गुप्त जी ने एक प्रा·, जये हेम हीर से।
उद्भावना की है। उन्होंने पत्नी को , धीर ध्यान तुम्हारा वहाँ
कर पंचशर वीर से।"[5]
न आख्यान को लेकर ही मौलिक भावना
में देखा है। उनका कुणाल निर्वाणमार्ग की बाधा के रूप मे नहीं वरन् सहयोगी
माला भक्ति रूप में ग्रहण भी, इसी प्रकार, अ विरक्त जीवन मे पत्नी क च
कहता है :— करता है और उसमे परलो की ओर ले चलने

'लोक जाय परलोक खड़ा है, चलो, सीचती बोती

इस भावना ने आधुनिक कवि की कल्पना में तुल की पत्नी रत्नावल
स्मृति जागृत कर दी है, जो तुलसी की भक्ति-भावना की णा हुई। देश पर
करते हुए तुलसी में देश की दुरावस्था और लोगों की अज्ञता र अज्ञान नारी

---

[1]मैथिलीशरण गुप्त—यशोधरा महाभिनिष्क्रमण, पृ·
[2]सिद्धि मार्ग की बाधा नारी। फिर उसकी क्या गति ।—
"हाय स्वार्थिनी थी मै ऐसी, रोक तुम्हे रख ल
जहाँ राज्य भी त्याज्य, वहाँ मै जाने तुम्हे न
(मैथिलीशरण गुप्त—यशोधरा . यशोधरा, पृ· तथा पृ० ४१
[3]वही, पृ०, २१, तथा पृ० ४०.
[4]वही, पृ० २३
[5]वही, बुद्धदेव, पृ० २११
[6]मैथिलीशरण गुप्त—कुणालगीत . पृ० ४१, २३

की व्याकुल प्रेरणा है, किन्तु पत्नी के रूप पर आसक्त और मुग्ध तुलसी अपनी इच्छा को क्रिया रूप मे परिणत नहीं कर पाते। उनके मस्तिष्क मे बनी हुई रत्नावली की मूर्ति बाधक हो जाती है। उसके करुण नयन "निर्वाण के पथिक के वारण' से प्रतीत होते हैं। किन्तु यह प्रेमाध तुलसी की कल्पना को छलना ही है जो नारी का मोहक रूप उपस्थित करके तुलसी को विचलित कर रही है। वास्तविकता तो तब व्यक्त होती है जब तुलसी अपनी समस्त शिक्षा और ज्ञान को प्रिया के चरणों मे न्योछावर करने पहुँचते हैं, और रत्नावली उन्हें इस पर धिक्कारती है। इस समय वह साक्षात अनल प्रतिमा बन जाती है, जिसकी ज्वाला में समस्त अज्ञान और वासना जल जाती है, और तुलसी को ज्ञान का प्रकाश प्राप्त होता है —

"इस ओर ज्ञान, उस ओर ज्ञान, हो गया भस्म वह प्रथम मान,
छूटा जग का जो रहा पान, जड़िमा वह।"[1]

अब तुलसी को रत्नावली साधारण नारी—काम के आलबन—के रूप मे नही वरन् ज्योति की तारिका के रूप मे दृष्टिगोचर होती है और —

"जिस कलिका में कवि रहा मत्त वह आज इसी मे खुली सद्य।"[2]

काम की पुत्री श्रद्धा को चिरतन आनद की पथप्रदर्शक के रूप में उपस्थित करके प्रसाद ने इस प्रकार की नारी भावना को और भी चमत्कृत कर दिया है। श्रद्धा "महा-ज्योति की रेखा सी बन कर" अपने मुख पर "विश्वास भरी स्मिति निश्छल" लिए हुए दग्ध और भ्रात मनु को निज अवलब देकर इच्छा, कर्म और ज्ञान भूमियों का दर्शन कराती हुई वहाँ ले जाती है जहाँ —

"समरस थे जड़ या चेतन सुन्दर साकार बना था,
चेतनता एक विलसती आनन्द अखड घना था।"[3]

इस प्रकार आधुनिक कवि ने पत्नी को न केवल भौतिक क्षेत्र मे वरन् आध्यात्मिक उन्नति के लिए भी एक प्रेरक, सहायक और दीपस्तभ के रूप मे देखा है।

पत्नी रूप में नारी प्रेमिका है, सहचरी है, पतिव्रता है, अर्धांगिनी है, और सती है, साथ ही वह गृहिणी भी है। इस युग का कवि भारतीय कुटुंब भावना का प्रेमी है[4]। फलत स्त्री जो कुटुंब का केन्द्र है, प्राय गृहलक्ष्मी के ही रूप में कवि की भावना मे अवतरित होती है। इस युग का आदर्शवादी कवि 'आर्यनारी' को लक्ष्मी रूप में देखना

---

[1] सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' तुलसीदास, पृ० ८६, ८७.
[2] सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' तुलसीदास, पृ० ४८, ९०
[3] जयशकर प्रसाद—कामायनी आनद, पृ० २२०
[4] जाति बड़ी है, देश अभी बड़ा, विश्व का क्या कहना.
जल में थल में और जगत में मैं हूँ कौटुम्बिक कवि मात्र। (मैथिलीशरण गुप्त)

है।[1] स्त्री में लक्ष्मीत्व की व्याख्या करते हुए निराला लिखते हैं "लक्ष्मी से नारी की महिमा व्यंजित होती है। जिस प्रकार सुलक्षणता से वह गृह की कर्तृ है, ऐश्वर्य को स्थितिशील करती है, और दूसरों को भोजन-पान और स्नेह देकर तृप्त करती है और गृह के समस्त वातावरण को शांति से ढके हुए चारुता देती हुई वह पति तथा दूसरों की दृष्टि में महिमा मूर्ति बन कर आती है, वह उसका लक्ष्मी भाव है। रक्षा, सेवा आदि इसके अंतर्गत हैं। इसी का विकास मातृत्व में होता है। मनुष्य का पालन करने वाले विष्णु की शक्ति लक्ष्मी इसी मातृत्व में पूर्णत्व प्राप्त करती है।[2] फलतः दुखदग्ध भारत के उद्धार के लिए कवि "जीवन और स्फूर्ति" तथा 'सुख और सपद की पूर्ति" गृहलक्ष्मी को ही पुकारता है :—

' घर की लक्ष्मी तुम्ही हमारी, लो तन पालन करो उठो,
पुन्य भूमि भारत के सारे, दु ख शोक हरो, उठो।"[3]

नारी में जो निर्माण और ममता की मनोवृत्ति है वह परिवार में ही सफलता पाती है। आधुनिक कवि ने उस स्वभाव का आदर किया है। इसीलिए कवि की आदि मानवी गृह के उपकरण जुटाती[4] हुई देखी जाती है जब मनु "काम के सदेश से ही भर रहे थे कान।" जब मनु श्रद्धा से "एकान्त दुलार" की याचना करते हैं तब श्रद्धा उन्हें निज निर्मित कुटीर दिखाती है जहाँ —

"उस गुफा समीप पुआलों की लाजन छोटी सी शांति पुज,
कोमल लतिकाओं की डाले मिल सघन बनाती जहाँ कुज।
थे वातायन भी कटे हुए प्राचीर पर अमिय रचित शुभ्र,
आवें क्षण भर तो चले जायँ रुक जाय कहीं न समीर, अभ्र।"[5]

इस कुटीर में बैठ कर गान के साथ श्रद्धा चिरनग्न प्राणों को ढकने के लिए ऊनी वस्त्र

---

[1] तू धन्य आर्य भार्ये, तू प्रेम राज्य रानी।
प्रत्येक धाम तेरी है रम्य राजधानी।
लक्ष्मी स्वरूपिणी तू सुख है सदैव देती,
बनता अहा! अमृत है तेरा पुनीत पानी॥
× × ×
हे देवि, घर हमारे मंदिर बने तुझी से,
सब दुःख दूर करती सतोषपूर्ण वाणी।"
(मैथिलीशरण गुप्त—स्वदेश संगीत, पृ० ८१)

[2] सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' चाबुक कला और देवियाँ, पृ० ६१.

[3] मैथिलीशरण गुप्त—स्वदेश संगीत मातृ मंगल, पृ० ८२
देखिए, प्रतापनारायण कविरत्न—नलनरेश, पृ० २१०

[4] इधर गृह में आ जुटे थे उपकरण अधिकार,
शस्य पशु या धान्य का होने लगा संचार।
(जयशंकर प्रसाद—कामायनी : वासना, पृ० ११६)

[5] वही, ईर्ष्या, पृ० ११६

बुनती है।[1] यद्यपि निज ममत्वमात्र चाहने वाले पुरुष को 'यह गृह-लक्ष्मी का गृह विधान" अच्छा नहीं लगता, तो भी इस विधान के पीछे जो भावी नवागतुक की मधुर कल्पना है और "मीठी अभिलाषाए" हैं वह पत्नी का धन है। क्योंकि वह पत्नी ही नहीं 'जाया" भी है। जाया शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए ऋषियों ने कहा है "जायायास्तद्धि जायात्वं यदस्या जायते पुन"। अस्तु भारतीयों मे प्रेम का आधार केवल 'स्त्रीभाव" नहीं वरन् स्त्री भाव मे छिपा हुआ मातृभाव था, जो गृह और परिवार में अपनी अभिव्यक्ति पाता है।

३. मातृ-रूप :—

कुटुब की कल्पना में मुग्ध और नारी के जाया रूप के उपासक आधुनिक कवि के लिए माता रूप मे नारी की कल्पना अत्यन आकर्षक हो गई है। अदिति मे वैदिक कवियों ने जिस निखिल मातृरूप का समावेश किया था, वह इस युग मे पुन कविप्रिय हो उठा है।

प्राचीन मनीषियों ने नारी जीवन की सफलता मातृत्व में देखी थी। पत्नी के आदर का विशेष कारण उसका पुत्रवती होना था।[2] इस कृषि प्रधान देश मे जब समाज निर्माण की अवस्था में ही था, उर्वरता की पूजा करते हुए भारतवासियो ने स्त्री को 'क्षेत्र' कहा था[3] और उसे 'सीता' (= पृथ्वी) नाम भी दिया था। पुत्र को नरक से तारने वाला कह कर[4] प्राचीन भारतीयों ने पुत्रवती माता के पद को पुत्रहीना की तुलना मे बहुत ऊँचा उठा दिया था।[5] किन्तु आधुनिक कवि का दृष्टिकोण इस सबन्ध मे कुछ भिन्न और अधिक उदार हो गया है। आधुनिक कवि के मस्तिष्क में पुत्र की वर्तमानता तथा तर्पण आदि के लिए पुत्र की अनिवार्यता ही नारी के मातृरूप के आदर का कारण नहीं है वरन्, नारी की स्वभावज ममता, स्नेह, वात्सल्य, सेवाभाव आदि अपना चरम उत्कर्ष माता मे ही पाते हैं, नारी की पालन-पोषण की शक्ति मातृरूप मे विशेषतया व्यक्त होती है, नारी का मातृरूप लोक-कल्याण की क्षमता रखता है—इन भावनाओं से प्रेरित होकर इस युग के लगभग समस्त कवियों ने शाश्वत मातृरूप की उपासना की है। उनकी भावना "विश्व मातृ-मूर्ति" मे विकसित होकर अधिक व्यापक और उज्ज्वल हो गई है।

आधुनिक कवि ने नारी से एक जन्म-जात मातृत्व पाया है। स्वभावज मातृत्व के कारण नारी "जीवन के शैशव प्रभात में गुड़िया" बनाती है, उसी को नव यौवन मे गोदी

---

[1] वही, ईर्ष्या, पृ० ११७.
देखिए—मैथिलीशरण गुप्त, साकेत, पृ० २०४—२०९

[2] अल्टेकर—पोज़ीशन आव विमैन इन हिन्दू सिवलीज़ेशन, अध्याय ३, पृ० ११८.

[3] स्त्रीक्षेत्रबीजिनो नरा —नारदस्मृति, १२, १९.।

[4] पुन्नाम नरकात् त्रायत इति पुत्र ।

[5] अल्टेकर—पोज़ीशन आव विमैन इन हिन्दू सिवलीज़ेशन, अध्याय ३, पृ० ११८.
तथा, क्लेरिसि वेडर—विमैन इन एन्सियंट इडिया, पृ० ६

की शोभा के रूप मे पाकर जीवन सार्थक करती है।[1] मातृत्व नारी की व्याकुल साध है। शिशु की विह्वल अभिलाषा विहगों के नीड़ को देख कर फूट पड़ती है .—

"देखो नीडों में विहग युगल, अपने शिशुओं को रहे चूम।
उनके घर में कोलाहल है, मेरा सूना है गुफा द्वार।"[2]

चिर सचित आशा को लेकर नारी नीड़ का निर्माण करती है,[3] और नवागतुक की मधुमयी कल्पना में डूब डूब कर अपने प्रतीक्षा के दिवसो को व्यतीत करती है।[4] निज वात्सल्य निधि को हृदय मे लिए वह दुर्भर पीड़ा को भी 'सलील' झेलती है,[5] और श्रम-विंदु भावी जननी के सरस गौरव को लेकर झलक उठते हैं।[6] आधुनिक कवि गर्भिणी के सौंदर्य का वर्णन करता है। यों तो काव्यशास्त्र निर्माताओं ने गर्भिणी के सौंदर्य का वर्णन निषिद्ध माना था, किन्तु सस्कृत तथा हिन्दी काव्य मे यह यत्र-तत्र मिल ही जाता है। सस्कृत कवि में प्राय सौंदर्य दृष्टि की प्रधानता रहती थी।[7] रीतिकालीन हिन्दी कवियों ने जो चित्र खींचे हैं वे प्राय कामुक प्रेरणा से।[8] किन्तु परिवर्तन युग का हिन्दी कवि नवीना माता के गौरव तथा जननी के भाव-सौंदर्य की दृष्टि से गर्भिणी का वर्णन करता है। आधुनिक कवि ने नारी-जीवन यौवन, पत्नीत्व और मातृत्व के विकासशील इतिहास के रूप मे देखा है। यौवन की उच्छृखलता और उन्माद पत्नीत्व मे स्वच्छ शुभ्र

---

[1] ओ मेरी गोदी के धन !
जीवन के शैशव-प्रभात में जब से अपना ज्ञान हुआ,
गुड़िया बना खिलाया तुझको, कितना भोला वह बचपन।

× × ×

कर आह्वान बुलाया तुझको था वह मेरा नव यौवन।
नारी का जीवन है सार्थक गोदी की इस शोभा से।
(तारा पाडे—वेणुकी, पृ० ४७, ४४)

[2] कामायनी ईर्ष्या, पृ० ११२

[3] देखो यह तेा बन गया नीड,
पर इसमें कलरव करने को, आकुल न हेा रही अभी भीड़।
(कामायनी . ईर्ष्या, पृ० ११७)

[4] कामायनी : ईर्ष्या, पृ० ११८

[5] दुर्भर थी गर्भ मधुर-पीड़ा, झेलती जिसे जननी सलील। (वही, पृ० १११)

[6] श्रम विंदु बना सा झलक रहा, भावी जननी का सरस गर्व। (वही)

[7] कालिदास - रघुवश. ३, २.

[8] विहारी रत्नाकर, पृ० २८६, ६९२, तथा मतिराम सतसई, पृ० ४७४, ६०९.

प्रफुल्लता में परिणत हो जाता है, और मातृत्व मे समस्त भाव उदात्त होकर अपनी स्निग्ध सान्ध्य छाया में शुक्र-सा शिशु पाते हैं।[1]

वास्तव मे मातृत्व मे नारी का चरम विकास है, और वात्सल्य में प्रेम की पूर्णता। इस युग के कवि ने यशोदा[2] और महाप्रजावती[3], कैकेयी[4], और देवकी[5], कुन्ती[6], और सुमित्रा[7] कौशल्या[8] और मधमाता[9], सीता[10], श्रद्धा[11] और यशोधरा[12] आदि वात्सल्य मूर्तियों को अपनाकर अपनी भावना का विकास किया है।

यशोदा और महाप्रजावती निर्मल वात्सल्य मात्र से युक्त है। उनका वात्सल्य एक ऐसा मोह है जैसा कि एक वृद्धा को अपनी लकड़ी से हो जाता है। यह दोनों दो पक्षों की पूर्ति हैं। एक सयोग के सहज सतुष्ट वात्सल्य की[13] और द्वितीय वियोग के करुण

---

[1]नव वसत के मृदु हिलोल से ही विलोल, उच्छ्वसित,
तुम यौवन के गहन विजन में भटक रही थी चचल,
करती थी तुम सब सखियों मिल सुरभि रास में व्याकुल, मायाच्छन्न विभिन को।
सहसा हुआ शरत् का आगम
बिन वर्षा के। पक्व शस्य से लहराया क्या विभ्रम
धरणी के हृततल में। प्रस्तुत सरित् सीमातर में
शुभ्र काशवन हुआ प्रफुल्लित पुलक विकल निभर मे
किलक उठा कल कूजन। पल मे स्तब्ध हुआ पिककूजन,
देखा तुमने हृदय गगन जब अपना—
फूल रहा था स्निग्ध सान्ध्य छाया में सुमधुर सपना—
स्वच्छ नीलिमा में सोया था अलसित वेदन न्यारा,
पाया तुमने विह्वल हिय में उज्ज्वल सन्ध्या तारा।
(इलाचन्द्र जोशी —विजनवर्ती नवीन माता, पृ० ९३)

देखिए— रामधारीसिह दिनकर— रसवती नारी, ३

[2]मैथिलीशरण गुप्त द्वापर

[3]मैथिलीशरण गुप्त—यशोधरा

[4]मैथिलीशरण गुप्त—साकेत, तथा प्रतापनारायण कविरत्न भरत भक्ति.

[5]मैथिलीशरण गुप्त—द्वापर

[6]मैथिलीशरण गुप्त—वकसहार-

[7]मैथिलीशरण गुप्त—साकेत, प्रतापनारायण कविरत्न—भरत भक्ति.

[8]वही,

[9]मैथिलीशरण गुप्त—अनघ.

[10]अयोध्यासिंह उपाध्याय—वैदेही वनवास.

[11]जयशकर प्रसाद - कामायनी

[12]मैथिलीशरण गुप्त— यशोधरा.

[13]द्वापर, पृ० ८—१५

स्नेह की।[१] देवकी में निष्फल वात्सल्य विद्रोहात्मक हो उठा है। प्रसव वेदना की व्यर्थता उसके हृदय पर असह्य आघात है।[२] छै पुत्रों की अकारण हत्या नास्तिकता को जन्म देती है।[३] मातृत्व पर आघात भ्रातृ-प्रेम को भी उखाड़ फेकता है और नारी की उस प्रतिहिंसा को जाग्रत कर देता है,[४] जो अर्धचेतना में चिल्ला उठती है —

"पर अब भी बधन में हूँ मैं विवश, देख लो बेटा,
और बस उच्छृखल अब भी सुख शैया पर लेटा।
जाओ मेरे पूत प्रेत तुम प्रथम उसे लग जाओ,
सुख से सो न सके वह देखो "हूँ" कर उसे जगाओ।"[५]

कैकेयी का पुत्रस्नेह अपने में पूर्ण है। 'रामचरित मानस" तथा "रामचरित चिन्तामणि" के कवियों ने कैकेयी को भर्त्सना तो की थी किन्तु नारी हृदय के इस पक्ष को भुला दिया था। किन्तु इस युग का कवि वैसा न कर सका। तुलसी की कैकेयी के कोप को प्रज्ज्वलित करने में सौतिया डाह सफल हुआ था।[६] गुप्त जी की कैकेयी के मस्तिष्क को यह भाव कि: —

"भरत से सुत पर भी सदेह बुलाया तक न उन्हे जो गेह।"[७]

प्रभजन की भाँति घुमा देता है और पति से प्रेम[८] और कौशल्या का आदर[९] करती हुई भी वह अपने वश में नहीं रह पाती। उसका मातृ-हृदय कलक का आवाहन करके भी पुत्र का प्रतिशोध लेने में तत्पर है। वात्सल्यभाव ने आज उसे पाषाणी बना

---

[१] यशोधरा, पृ० २७—२८

[२] हा भगवान! होगई व्यर्थ वह प्रसव वेदना सारी,
लेकर यह अनुभूति चेतना कहाँ रहे यह नारी।
कुढ़ता है दो टूक कलेजा कर है मेरे दो ही,
किसे किसे थामूँ तू ही कह हे मेरे निर्मोही। (द्वापर—देवकी पृ० ८१)

[३] कहाँ गया है राम, आज वह तेरा राज्य, अरे रे।
मरे न, मारे गए अहे वे छै छै बच्चे मेरे।
बच्चे मेरे मेरे बच्चे मैं बोलू क्या जै जै
मेरा मन तो चिल्लाता है एक दो नहीं छै छै। (वही पृ० ७८—७९)

[४] इसी कोख से जनती जाऊ उन्हे निरन्तर तब लों।
बस न कर दे कस राज्य वे मेरे जाये जब लों। (वही पृ० ८५)

[५] वही, पृ० ८३.

[६] मंथरा कहू बिनतहि दीन्ह दुखु, तुम्हहि कौसिला देब।
भरतु बदिग्रह सेइहहि लखनु राम कर नेब॥
(तुलसी-रामचरितमानस अयोध्या कांड, दोहा २०)

[७] मैथिलीशरण गुप्त—साकेत, सर्ग २, पृ० ३२.

[८] वही, पृ० ३३.

[९] वही, पृ० ३५.

दिया है, और आगे चलकर वात्सल्य के पात्र द्वारा की गई उपेक्षा और विरक्ति ही उस अभिमानिनी को 'गोमुखी गगा" मे परिवर्तित कर देती है।[१] अपमान सह कर भी वह अपने मातृपद को छोड़ना नहीं चाहती। दीना कैकेयी ससार मे एकाकी वात्सल्य का निरादर देख राम के सम्मुख आचल पसार कर कह उठती है —

"कुछ मूल्य नही वात्सल्य मात्र क्या तेरा
पर आज अन्य सा हुआ वत्स भी मेरा।
थूके मुझ पर त्रैलोक्य भले ही थूके
जो कोई जो कह सके, कहे क्यों चूके ?
छीने न मातृपद किन्तु भरत का मुझसे,
हे राम, दुहाई करूँ और क्या तुझसे।[२]

कौशल्या, सुमित्रा, कुती और मघ की माता का वात्सल्य उदारता और कर्तव्य-निष्ठा को लेकर उज्ज्वलतर हो गया है। "मूर्तिमयी ममता-माया" कोशल्या "मा का मन" लिए भी कुल, गौरव और धर्म भावना से प्रेरित होकर अपनी सुधासिक्त कल्याणी वाणी मे राम को विदा देती हुई, दीखती है।[३] और जब कौशल्या विकल होती है तब सुमित्रा अपनी क्षत्रियाणी सुलभ दृढता को लिए आगे आती है -

"जीजी ! विकल न हो अब यों आशा हमें जिलावेगी,
अवधि अवश्य मिलावेगी।"[४]

साथ ही गुप्त जी की कोशल्या का मातृत्व उपाध्याय जी की कौशल्या के समान[५] भरत के प्रति अनुदार नही है। वे तो भरत को पाकर राम मिलन का ही अनुभव करतीं हैं —

---

[१] वही सर्ग ८, प० २३०

[२] वही,

[३] जाओ, तब बेटा ! बन ही, पाओ नित्य धर्म धन ही।
जो गौरव लेकर जाओ —लेकर वही लौट आओ।
पूज्य पिता-प्रण रक्षित हो, माँ का लक्ष्य सुलक्षित हो।
घर में घर की शांति रहे, कुल में कुल की कांति रहे।

(वही, सर्ग ४, पृ० ६०—६१)

[४] वही, पृ० ९२, देखिए - भरत-भक्ति, सर्ग १४, पृ० २५७, ६८

[५] छल से छलसदृम ! हा वृथा वनवासी मम राम को बना।
सुख से धन धान्य पूरित, तुम भोगो गत-कंटका मही।
पर का अधिकार छीनना, यह कैसा अपराध घोर है।
इसका विधिवत् जवाब दो, यम देगा तुमको परत्र में।

(रामचरित उपाध्याय—रामचरित चिंतामणि, सर्ग ५)

"वत्स रे आजा, जुड़ा वह अंक, भानुकुल के निष्कलंक मयंक।
मिल गया मेरा मुझे तू राम, न् वही है भिन्न केवल नाम।"[1]

क्षत्रियाणी माता कुंती में हम कर्तव्य और वात्सल्य का अंतर्द्वंद्व पाते हैं। सत्कारक ब्राह्मण के पुत्र की रक्षा करने के लिए वह निज पुत्र का बलिदान करने को प्रस्तुत होती है। राक्षस के भोजन हेतु अपने पुत्र को भेजते हुए उसका मातृ हृदय रो उठता है[2], किन्तु अपने अंतर्द्वंद्व को वह प्रकट नहीं होने देती[3] और उत्साहपूर्ण शब्दों में उन्हें पुत्रों को विदा देती है --

"सब शत्रुओं को मार कर पितृ राज्य का उद्धार कर,
भोगो सभी सुख भोग मिल कर, सर्वदा।[4]

इसी प्रकार अनन्य पुत्र-स्नेह से पूर्ण मंघ की माता अपने अंचल की स्निग्ध शीतल छाया में मंघ की रक्षा करती हुई भी मोह से कर्तव्य-च्युत नहीं पाई जाती। वह स्वयं एक विशाल मातृत्व से युक्त होकर न केवल निज पुत्र की मां है वरन् ग्राम के समस्त बालक बालिकाओं की माता है। यह सहज प्रीति स्वार्थ से हीन है।

अस्तु, जन सेवा-व्रत धारी पुत्र की वह बाधा नहीं बनती। अन्य समय बिना पुत्र को भोजन कराये उसे भूख नहीं लगती थी किन्तु आज जब ग्रामवासियों पर कष्ट के बादल छाये हैं वह भूखे मंघ से कहती है —

"जा, जी में कुछ सोच न कर, तू मेरा संकोच न कर।[5]

निज व्रत पर अटल रहने के कारण दंडित मंघ को देख कर उसका वक्ष गर्व से भर जाता है।[6] पुत्र के लिए उसका आशीर्वाद तो यही है -

जाओ बेटा, दण्ड मिले सो तुम सहो,
अपने व्रत पर अटल अचल यों ही रहो।[7]

---

[1] मैथिलीशरण गुप्त—साकेत, सर्ग ७, पृ० १८७.

[2] भगवान में ही किस तरह, जाने उन्हें दूँ इस तरह,
क्या मारने को ही उन्हें जना। (मैथिलीशरण गुप्त—चक्रसहार, पृ० ४६, ८७)

[3] जब वीर पुत्रों से मिली, तब फिर तनिक कातर हिली।
पर अन्य क्षण मानो प्रकट थी धीरता। (वही पृ० ४७, ८८)

[4] वही, पृ० ५१, १०३

[5] मैथिलीशरण गुप्त—अनघ, पृ० २८

[6] मुझको तो है गर्व तुम्हारे कर्म पर,
मेरा सुत बलिदान हुआ है धर्म पर।
माना दारुण शोक सहूँगी वत्स मैं, पर गौरव के साथ रहूँगी वत्स मैं।
(वही, पृ० ११२)

[7] वही, पृ० ११२.

उपेक्षिता यशोधरा, निर्वासिता सीता और परित्यक्ता श्रद्धा का कष्ट लगभग एक सा है। पति वियोग में नेत्रों के अभ्रपूर्ण रहते हुए भी जिस निष्ठा, साहस, धैर्य और दूर-दर्शिता के साथ जननी बनी हुई जाया शिशु का पालन, पोषण तथा शिक्षण करती है उसको कवियों ने इन नारियों में देखा है, और उसकी पय और पानी मिश्रित कहानी[1] को लिखा है।

नारी के ससार में पुत्र की महत्ता अतुल है। पति के अभाव या अनुपस्थिति में "पिता का प्रतिनिधि" उसका जीवन-सबल हो जाता है। उसकी करुणा हर्ष मिश्रित हो जाती है। विरस ओष्ठ पुन. प्रफुल्लित हो जाते हैं और शुष्क अग रजित हो उठते हैं।[2] उसका "लघु विश्व" सूना नहीं रहता वरन् मधुर कलरव से मुखरित हो उठता है और उसकी आँखों का पानी स्निग्ध अमृत बन जाता है।[3] शिशु के सुख मात्र की आकांक्षा करती हुई नारी का वात्सल्य पति प्रेम से भी बढ जाता है, और वह उपेक्षा – किन्तु निरादर नहीं— के साथ कहती है :—

मेरा शिशु संसार वह दूध पिये, परिपुष्ट हो
पानी के ही पात्र तुम प्रभो, रुष्ट या तुष्ट हो।[4]

पति के लिए रोती रोती वह पुत्र के लिए हँस देती है।[5] "लाल" को लेकर उसके सम्मुख "अंजन और अगराग" का कोई मूल्य नहीं है।[6] जननी के गौरव को पाकर वह अतीत के "रानीपन" को भी भूलने में समर्थ होती है।[7] पुत्र के मुख को देख कर वह अपने दुख के क्षणों को भी सुखमय कर लेती है।[8] उसको सबसे बड़ा सतोष यही है कि चाहे वह स्वय

---

[1] अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी
आंचल में है दूध और आँखों में पानी।
(मैथिलीशरण गुप्त—यशोधरा, पृ० ५९)

आँख में करुणा जल के सग, हर्ष के बिंदु समाये सरस,
विरस ओष्ठों पर पहुंचा सुरस, शुष्क अगों में आया रग।
(रामकुमार वर्मा—चित्तौड़ की चिता : सर्ग, पृ० ५५)

[3] जयशंकर प्रसाद—कामायनी . ईर्ष्या, पृ० ११८.

[4] मैथिलीशरण गुप्त—यशोधरा राहुल जननी, पृ० ५०, तथा
तुझको खीर पिला कर लूँगी, नयन नीर ही उनको दूगी। (वही, पृ० ५८)

[5] गाती है मेरे लिए, रोती उनके अर्थ। (वही, पृ०, १६०७)

[6] मेरी मलिन गूदड़ी में भी है राहुल सा लाल
क्या है अंजन अंगराग जब मिली विभूति विशाल।" (वही यशोधरा, पृ० ३८)

[7] राहुल, रानीपन देकर तेरी चिर परिचर्या पाऊँ।
तेरी जननी कहलाऊँ तो इस परवश मन को बहलाऊँ (वही, पृ० ९७)

[8] वह मुख देख देख दुख में भी सुख से देव दया गुण गाऊँ। (वही, पृ० ९७)

कितने ही कष्ट में हो कर मर्म पीड़ा से गले किन्तु उसका शिशु भलीभाति पले।[१] उस पति के प्रतीक और भविष्य की आशा को वह सदैव प्रसन्न ही देखना चाहती है।[२]

किन्तु पति की इस "थाती" के लिए नारी का उत्तरदायित्व और कर्तव्य बहुत बढ जाता है। उसे शिशु का शारीरिक पालन-पोषण ही नहीं करना है वरन् पिता के अभाव की भी पूर्ति करनी है। इसका मार्ग कठिन है, आपदाओं से पूर्ण है, किनारा भी दूर है, और सारी चिंता का केंद्र "गाठ का अमूल्य रत्न" है। फिर भी कर्तव्य भावना उसे प्रेरित करती है और वह विश्वास का सहारा ले आगे बढती है।[३] अपने विस्तृत कार्य-क्षेत्र में वह यह आत्म-सयम और दूरदर्शिता के साथ पग बढाती है। शिशु का शारीरिक पोषण करने के साथ-साथ माता उसकी मानसिक वृद्धि भी करती है। स्वभावत जिज्ञासु बालक की प्रश्नावलियों का ठीक-ठीक उत्तर देकर, उसके ज्ञान की वृद्धि करके, उसकी प्रवृत्तियों को सन्मार्गोन्मुख करके वास्तविक गुरु के रूप में आती है।[४] इसीलिए कवि की यह धारणा है —

जननी केवल है जन जननी ही नहीं।
उसका पद है जीवन का भी जनयिता॥
उसमें है वह शक्ति सुत चरित्र सृजन की।
नही पा सका जिसे प्रकृति कर से पिता॥[५]

वियोगिनी की भावना का केन्द्र शिशु का पिता होता है, अत उसकी सारी शिक्षा का आदर्श भी वही होता है। पति की स्मृति को सजग रखकर नारी उसी साचे में पुत्र को भी ढालने में सुख पाती है। यह उसके पति प्रेम और वात्सल्य भाव का समन्वय है। वियोग के अत मे अनन्य स्नेह परिपालित उस थाती को पति चरणों मे समर्पित करके वह प्रेम और वात्सल्य की चरम परिणति को प्राप्त करती है।[६]

---

[१] गोपा गलती है, पर उसका राहुल तो पलता है। (वही, पृ० ६४)

[२] बेटा मै तो हूँ रोने को, तेरे सारे मल धोने को,
हंस तू है सब कुछ होने को। (वही, पृ० ५८)

[३] वही, पृ० ७०—७२.

[४] अयोध्यासिंह उपाध्याय—वैदेही बनवास, सर्ग १५
देखिए—यशोधरा; पृ० ७४—७५, पृ० ७६—७७ पृ० ८३, पृ० १०९ - ११८, तथा रामकुमार वर्मा –चित्तौड़ की चिता, सर्ग ८, पृ० ५९.

[५] अयोध्यासिंह उपाध्याय—वैदेही वनवास, १२ सर्ग, पृ० १५२, २५.

[६] तुम भिक्षुक बन कर आये थे गोपा क्या देती स्वामी।
था अनुरूप एक राहुल ही रहे सदा यह अनुगामी।
(मैथिलीशरण गुप्त—यशोधरा : यशोधरा, पृ० २११)

तभी वह पुरुष, जिसने मातृत्व से ईर्ष्या की थी, जिसने निज अधिकार भावना से भर कर नारी की अक्षय वात्सल्य निधि को "प्रेम बाँटने का प्रकार" समझा था, पहचान पाता है.—

यह कुमार मेरे जीवन का उच्च अंश, कल्याण कला।
कितना बड़ा प्रलोभन मेरा हृदय स्नेह बन जहाँ ढला।[1]

और अप्रतिहत स्नेह से पूर्ण, क्षमा और करुणा की अधिवासिनी में विस्मय के साथ वह एक विराट् मातृ-मूर्ति देखता है।[2]

वास्तव में आधुनिक कवि की मातृ भावना निज संतान की संकुचित सीमा को पार कर विस्तृत और व्यापक हो गई है। उसने तो नारी में एक शाश्वत और विराट् मातृ-रूप पाया है जो अपनी दिव्य शक्तियों को लिए हुए सृष्टि का सृजन, पालन और कल्याण करता है। आदि शक्ति के रूप में "माता" कवि के सम्मुख आती है।[3] वह "भव चक्र चालिनी, लोक लालिनी" है, "विश्वपालिनी" "अघशालिनी" है। साथ ही वह "सहनशीलता की मूर्ति" और "त्याग की प्रतिमा" भी है। उसकी गोदी में उसके अंचल की छाया में समस्त विश्व विश्राम करता है,[4] और —

'तेरे मुसकाने से जग के गान, विलाप और उद्गार।
मिल कर हो जाते हैं तत्क्षण त्याग भिन्नता एकाकार।"[4]

उसका कभी ह्रास न होने वाला निस्वार्थ प्रेम संसार के पापों और दोषों को धो देता है[5]। वह "जग जीवन की जननी" है और उसकी पालनकर्त्री है —

---

[1] जयशंकर प्रसाद—कामायनी, निर्वेद, पृ० १७३.

[2] मनु ने देखा कितना विचित्र! वह मातृ मूर्ति थी विश्वमित्र!
कामायनी—दर्शन, पृ० १८८, तथा
"तुम देवि आह कितनी उदार, यह मातृ मूर्ति है निर्विकार
हे सर्वमंगले! तुम सहती सबका दुख अपने पर सहती,
कल्याणमयी वाणी कहती तुम क्षमा निलय में हो रहती" (वही, पृ० १८९)

[3] जिनके कटाक्ष से करोड़ों शिव-विष्णु-अज कोटि-कोटि सूर्य-चंद्र तारा-ग्रह
कोटि-इंद्र-सुरासुर-जड़ चेतन मिले हुए जीव-जंग
बनते पलते हैं—नष्ट होते हैं अंत में—सारे ब्रह्मांड के जो मूल में विराजती है,
आदि शक्ति रूपिणी
शक्ति से जिनकी शक्तिशालियों में सत्ता है, माता है मेरी वे।
(निराला. परिमल पंचवटी प्रसंग, पृ० २२२)
देखिए—मैथिलीशरण गुप्त—स्वदेश संगीत. आह्वान, पृ० ९—१०, तथा
राष्ट्रीय संदेश: रामचंद्र शर्मा 'विद्यार्थी'—माताओं से।

[4] विश्व तुम्हारी गोदी में है, आंचल ओढ़ शयन करता।"
(मोहनलाल महतो—निर्मल्य मां, पृ० ५३)

[5] तेरा पावन प्रेम जगत को पावन करता,
मद, मत्सर, मालिन्य, मोहतम मन का हरता।"
(गोपालशरण सिंह—संचिता. मातृ महिमा, पृ० ६९)

"है तुझ से ही लालित पालित यह भोला भाला संसार
करती है प्लावित वसुधा को तेरी प्रेम सुधा की धार।"[1]

असहाय विश्व के लिए उसके उर से पय-धार का प्रवाह होता है :—

'क्षुधित देख असहाय विश्व को बहती है उर से पयधार।"[1]

फलतः "मानवता की मूर्ति" "दया, क्षमा, ममता की आकर, विश्व-प्रेम की आधार "करुणा की कालिदी"[1] स्वरूपा मातृ-शक्ति से कवि ने मृत भारत का उद्धार करने के लिए आह्वान किया है।[2] आधुनिक जन-जीवन दुख पूर्ण है। मनुष्य स्वार्थ और स्पर्धा से अंधे हैं, शारीरिक स्वास्थ्य विगलित है, मन चेतनाहीन है और स्वार्थत्व के कारण ज्ञान का नाश हो गया है। कवि इन दोषों को दूर करने के लिए, जगत में समता और एकता का प्रचार करने के लिए "जननी" को ही पुकारता है।[3] माँ के चरणों में अपने

---

[1] गोपालशरण सिंह — मानवी . मां.

[2] हे माताओं आओ, उठ कर हमें जगाओ।
हम मरते है, स्तन्य दान कर हमे बचाओ, क्षमता दो,
देखें कौन घृणा करता है, हमको तुम निज ममता दो।
करुणा श्रोत बहाओ!

× × ×

हम हताश हो चुके हार कर, विद्युला बन कर शिक्षा दो,
नीच समझते हैं सब हमको, उच्च भाव की भिक्षा दो।
हम रोगी हैं अमृत करों से हमें पथ्य का दान करो,
भ्रम में पड़ कर भटक रहे है, हमें तथ्य का दान करो।
दया, दान, दाक्षिण्य तुम्ही से हो सकते है प्राप्त हमें।
आत्मत्याग, अनुराग तुम्ही से मिलते है बस व्याप्त हमें।
(मैथिलीशरण गुप्त—स्वदेश संगीत . मातृ-मंगल, पृ० ८२—८३)

[3] सार्थक करो प्राण!
जननी, दुख अवनि को दुरित से दो त्राण।
स्पर्द्धान्ध जन, गात्र जर्जर अहोरात्र,
शेष जीवन मात्र कुड्मल गताघ्राण।
चेतनाहीन मन मानता स्वार्थ धन
दृष्ट ज्यों हो सुमन छिद्र-शत तनु यान।
आई परंपरा जीत लूँगा धरा
मृत-विश्व वर-करा अजया, गया ज्ञान।
(सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—गीतिका, पृ० ५१, ५२)

देखिए—वही, पृ० ३१, ३०

श्रम सचित फलों आदि को समर्पित करता हुआ कवि जगत का ताप हरने के लिए, हृदय की शक्ति और शांति के लिये माँ के वरदान की अकांक्षा करता है।[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिक कवि ने नारी को एक शाश्वत माता के रूप में देखा है और उसको प्रेम, त्याग, करुणा, सेवा-शक्ति, धैर्य और क्षमता आदि महत्वपूर्ण गुणों से सम्पन्न कर उसे एक उच्च सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दिया है। आजनेय के समान ही आधुनिक कवि का "चिर शिशु भाव" "अबा के अंचल पट में पुलकित"[2] हो उठता है। उसके विश्वासों का आधार नारी का अमर मातृरूप ही है।[3] इस प्रकार की धारणाओं की वर्तमानता में आश्चर्य ही क्या है अगर कवि "माँ के पैरों तले स्वर्ग" ही को पाले।[4]

---

[1] नर जीवन के स्वार्थ सकल !
बलि हों तेरे चरणों पर, माँ मेरे श्रम सचित सब कन्द फल
जीवन के रथ पर चढ़ कर, सदा मृत्यु पथ पर बढ़ कर,
महाकाल के खरतर शर सह सकूं मुझे तू कर दृढ़तर।
(वही, पृ० २०, २०)
देखिए—सियारामशरण गुप्त—दूर्वादल जननी, पृ० ४८.
सुमित्रानन्दन पन्त—पल्लव : विनय, पृ० २९, तथा
वही—आकांक्षा, पृ० १०१.

[2] मैथिलीशरण गुप्त—साकेत, सर्ग ११, पृ० ३८१.

[3] मेरे सब विश्वास वहाँ हैं, मातृरूपिणी स्त्रियाँ जहाँ हैं।
(मैथिलीशरण गुप्त—अनघ, पृ० ४९)

[4] मैथिलीशरण गुप्त—काबा और कर्बला मातृ-भक्ति, पृ० २९

अध्याय ६

परिवर्तन युग में नारी का असत् रूप

पिछले दो अध्यायों में नारी के सत्-रूप का विवेचन विस्तार के साथ हो चुका है। नारी का सत्-रूप आधुनिक कवि की नारी भावना के केन्द्र मे स्थित है। पीछे देखा गया है कि कवि नारी को विविध विभूति-सम्पन्ना देवी तथा अद्भुत शक्ति के रूप में देखता है। नारी के प्रेम में उसे विश्वास है और उसकी करुणा, उदारता, और सेवा की आकाक्षा है। नारी को कवि ने इन विविध गुणो की शाश्वत् कोष माना है। अपनी इस भावना को स्पष्टतम करने के लिए आधुनिक कवि ने, विकृति और दुर्बलता को ससार का नियम मानते हुए, नारी के उस रूप को भी देखा है केवल जिसको ही देख कर कबीर, तुलसी आदि कवियों ने अपनी घृणात्मक नारी भावना का निर्माण कर लिया था। आधुनिक कवि ने कौशल्या के साथ कैकेयी, सीता के साथ शूर्पनखा और श्रद्धा के साथ इड़ा को देखा है, किन्तु कैकेयी, शूर्पनखा और इड़ा उसकी मूल भावना मे कोई परिवर्तन नहीं करतीं, वरन् पोषण ही करती हैं। नारी का यह असत्-रूप सत्-रूप का वैषम्य है, जिसके कारण परवर्ती रूप और भी अधिक उज्ज्वल दीखता है, जिस प्रकार सघन श्यामल मेघों के नीचे श्वेत हिमाच्छादित शिखर या अमानिशा में शुक्र तारा। साथ ही, महत्त्वपूर्ण तथ्य तो यह है कि कवि की दृष्टि में असत् रूप नारी का यथार्थ रूप नहीं है, वरन् एक विकृति मात्र है जो क्षणिक है और सत् का सहयोग और सम्पर्क पाकर अपने सुप्त नारीत्व को जाग्रत करने में समर्थ होता है। कुछ उदाहरण लेकर हम कवि के इस दृष्टिकोण की परीक्षा करेंगे।

उल्लिखित प्रकार की भावना कवि प्रसाद मे सब से अधिक प्रबल है। अपने नाटकों में ही राज्यश्री और सुरमा, पद्मावती और मागधी, वासवी और छलना, मल्लिका और शक्तिमती, देवसेना और विजया, जयमाला और अनतदेवी आदि के वैषम्य उपस्थित करके प्रथम के महान् सौंदर्य के सम्मुख द्वितीय की प्रणति को दिखाया था। उनकी यह भावना श्रद्धा और इड़ा के वैषम्य में चरमता को प्राप्त हुई है। प्रसाद ने हृदय (भावना—विश्वास) को नारी के यथार्थ स्वरूप का पर्यायवाची माना है, और मस्तिष्क (बुद्धि-तर्क) को पुरुष का। स्त्री जब इस पौरुषी वृत्ति को ग्रहण करती है, जैसा 'कामायनी' की इड़ा ने किया, तो वह अपने नारीत्व को, पुरुष के हृदय को पाने की शक्ति को, खो बैठती है। इड़ा का चित्र प्रसाद ने इस प्रकार खींचा है —

"बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल

× × ×

वक्षस्थल पर एकत्र धरे सस्कृति के सब विज्ञान ज्ञान—
था एक हाथ में कर्म कलश वसुधा जीवन रस सार लिए

दूसरा विचारों के नभ को था मधुर अभय अवलंब दिए
त्रिवली थी त्रिगुण तरंगमयी, आलोक वसन लिपटा अराल
चरणों में थी गति भरी ताल !"[1]

इड़ा में प्रतिभा है। वह प्रभात की प्रथम किरण के साथ मधु के जीवन में आती है, किन्तु उस श्रद्धा के समान नहीं जिसकी जिज्ञासा मनु की क्लांति और वेदना में आश्रित है, और जो मनु को जगमगलमय सदेश सुनाती हुई आत्मसमर्पण करती है, वरन् एक स्वार्थ को लेकर वह मनु का स्वागत करती है।[2] उसने मनु से निज कार्य-सिद्धि चाही, वासनाहीन आत्म-समर्पण नहीं किया, श्रद्धा के शब्दों में "सिर चढ़ो रही ! पाया न हृदय"। श्रद्धा यदि अनत करुणामयी स्नेहपूर्ण प्रेरणा है तो इड़ा दभ और मादकता पूर्ण उत्तेजना। वह मनु को कर्मशील और सफल बनाती है[3], किंतु मनु की मानसिक अशाति को शात करने के स्थान पर उसे निरतर बढाती ही जाती है। कर्म का आसव पिला-पिलाकर वह मनु को अधिकाधिक अतृप्त और उत्तप्त बनाती है।[4] बौद्धिकता, भौतिकता और व्यक्ति स्वातन्त्र्य की प्रतीक-स्वरूप इड़ा की रचना मे —

वह विज्ञानमयी अभिलाषा, पख लगाकर उड़ने की,
जीवन की असीम आशायें कभी न नीचे मुड़ने की,
अधिकारों की सृष्टि और उनकी वह मोहभरी माया
वर्गों की खाई बन फैली कभी नही जो जुड़ने की।[5]

इड़ा निर्बाधित अधिकार की विरोधिनी है, अपनी ओर से मनु को शुभाकाक्षिणी है, किन्तु उसने मनु को प्रकृति से प्रेम नहीं सघर्ष सिखाया और हिसात्मक कर्म (यज्ञ, बलि) की प्रेरणा दी।

---

[1] जयशकर प्रसाद —कामायनी इड़ा, पृ० १३२.

[2] "स्वागत ! पर देख रहे हो तुम यह उजड़ा सारस्वत प्रदेश
भौतिक हलचल से यह चचल हो उठा देश ही था मेरा
इसमें अब तक हूँ पड़ी इसी आशा मे आये दिन मेरा।" (वही, पृ० १३५)

[3] इड़ा अग्नि ज्वाला सी आगे जलती है उल्लास भरी,
मनु का पथ आलोकित करती विपद नदी में बनी तरी,
उन्नति का आरोहण, महिमा शैल शृंग सी, श्रांति नहीं,
तीव्र प्रेरणा की धारा सी बही बही उत्साह भरी
वह सुन्दर आलोक किरन सी हृदय भेदिनी दृष्टि लिए
जिधर देखती, खुल जाते हैं,तुम ने जो पथ बद किये।
मनु की सतत सफलना का वह उदय विजयिनी तारा थी।
(कामायनी स्वप्न, पृ० १४१)

[4] इड़ा डालती थी वह आसव, जिसकी बुझती प्यास नहीं,
तृषित कंठ को, पी पी कर भी, जिसमें है विश्वास नहीं, (वही, पृ० १४२)

[5] वही : स्वप्न, पृ०, १४५.

इसीलिये श्रद्धा ने इड़ा को यह विशेषण दिये:—

"तुम आशामयि ! चिर आकर्षण, तुम मादकता की अवनत घन,
मनु के मस्तक की चिर अतृप्ति, तुम उत्तेजित चचला शक्ति ।"[1]

इड़ा ने अपने "अभिनय" में सुख शांतिमय 'अपनेपन' (ममत्व), जो एक प्राणी को दूसरे से बाँध देता है, खो दिया था । श्रद्धा ने उसकी त्रुटि की ओर सकेत किया—

"तू विकल कर रही है अभिनय अपनापन चेतन का सुखमय
खो गया, नहीं आलोक उदय ।"[2]

और तर्क को अपनाकर क्षमारूपी निधि को भूल गई और जीवन के सरल माग का त्याग करके एक अस्वाभाविक मार्ग को अपना बैठी ।[3]

इडा की इन प्रवृत्तियों का फल हुआ विध्वस ! उससे मानव जाति का कल्याण न हो सका । इसके विपरीत जीवन में एक खोखलापन बन गया । स्नेह का निर्मल आदान-प्रदान, समष्टि भाव, चेतन की एकसूत्रता नष्ट हो गये और—

"बुद्धि तर्क के छिद्र हुए थे हृदय हमारा भर न सका ।"[4]

किन्तु इड़ा फिर भी नारी ही है और उसमें नारी-हृदय भी है जिसमें हिंसा है तो स्नेह भी है, प्रतिशोध है तो क्षमा भी है ।[5] प्रथम अभिनय है, द्वितीय वास्तविकता है । प्रथम विकृति है, द्वितीय स्वभाव । अनुकूल सम्पर्क पाकर प्रथम का आवरण टूट जाता है । श्रद्धा की मगलमयी मूर्ति के सम्मुख आने पर इड़ा को अपने दोषों का ज्ञान होता है ।[6] श्रद्धा की महानता के सम्मुख आज वह अपने को दीन-हीन पाती है, और श्रद्धा से क्षमा याचना करती हुई उसके वरदान की आकाक्षा करती है जिससे उसका सुप्त नारीत्व जागे ।[7] इड़ा के

---

[1] कामायनी : दर्शन, पृ० १७९.

[2] वही, पृ० १८२

[3] वही, पृ० १८६.

[4] वही : निर्वेद, पृ० १७३.

[5] नारी का हृदय ! हृदय में सुधा सिंधु लहरें लेता,
बाड़व ज्वलन उसी में जल कर कचन सा जल रंग देता ।
मधु पिंगल उस तरल अग्नि में शीतलता ससृति रचती,
क्षमा और प्रतिशोध ! आह रे दोनों की माया बचती ।
(वही, पृ० १५९—१६०)

[6] तो क्या मैं भ्रम में थी नितांत संहार बध्य असहाय दांत ।
प्राणी विनाश मुख में अविरल चुपचाप चलें होकर निर्बल !
सघर्ष कर्म का मिथ्या बल, थे शक्ति चिन्ह, थे यज्ञ विफल;
भय की उपासना ! प्रणति भ्रान्त !
अनुशासन की छाया अशान्त ! (वही : दर्शन, पृ० १८२)

[7] मैं आज अकिंचन पाती हूँ अपने को नहीं सुहाती हूँ,
मैं जो कुछ भी स्वर गाती हूँ, वह स्वयं नहीं सुन पाती हूँ,
दो क्षमा, न दो अपना विराग सोई चेतनता उठे जाग ।" (वही)

पश्चात्ताप में नारी हृदय की जागृति, उसके स्वभाव के अनावृत होने की सूचना है। श्रद्धा का उपदेश उसमे सहायक होता है। साथ ही हृदय में नारी सुलभ मातृ-भाव की जागृति भी इड़ा के सुधार में सहायक होती है। जैसा हम पीछे[1] देख चुके हैं आधुनिक कवि ने नारी में एक जन्मजात मातृत्व देखा है जिसको लेकर वह जड़ जीवों तक अपनी ममता का प्रसार करती है। श्रद्धा के पशुप्रेम के नीचे यही वस्तु थी। किन्तु इड़ा का मातृत्व (जो ध्वंस नहीं निर्माण का द्योतक होता है) कुमार को देखकर जागृत होता है।[2] उसकी "जलती छाती की दाह" का प्रशमन इस निधि मे निहित है, यह जानकर ही श्रद्धा कुमार को इड़ा के समीप छोड़ देती है, और इड़ा कृतज्ञता मे नत हो जाती है। इसके बाद इड़ा भी श्रद्धा के चिरतन आनन्द की ओर जाने वाले विश्वप्रेम और सेवा के मार्ग का अनुसरण कर वहाँ पहुँच जाती है जहाँ अखड शाति और आनन्द का राज्य है।

इड़ा के समान ही कैकेयी है जो कुसगति वश अपने मातृभाव को खोकर अशिव मार्ग को अपना लेती है। अपने पुत्र के लिए राज्य चाहती हुई राम आदि को बन भेज देती है। उस समय वह प्रतिहिसा की प्रतिमूर्ति के रूप मे, ध्वसकारिणी शक्ति के रूप में सामने आती है।[3] कैकेयी के इस रूप को देखकर मध्ययुगीय कवि ने नारी के सबध मे यह निष्कर्ष निकाला था .—

"सत्य कहहि कवि नारि सुभाऊ। सब विधि अगहु अगाध दुराऊ।
निज प्रतिबिंब वरुक गहि जाई। जानि न जाइ नारिगति भाई।
काह न पावक जारि सक, का न समुद्र समाइ।
का न करै अबला प्रबल, केहि जग कालु न खाइ।"[4]

किन्तु आधुनिक कवि इस रूप को नारी स्वभाव नहीं वरन् क्षणिक विकृति मात्र के रूप मे ग्रहण करता है। कौशल्या की दया और क्षमाशीलता से प्रभावित होकर कैकेयी पुन अपने मूल नारीत्व को प्राप्त कर लेती है।[5] पश्चाताप की अग्नि मे उसका समस्त विकार धुल जाता है और राम को पुन निज सुत रूप मे देखती हुई उन्हे वापस लेने चित्रकूट जाती है। उसकी स्वीकारोक्ति उसकी निर्दोषता की द्योतक है, और उसका प्रबुद्ध वात्सल्य उसके सचित नारीत्व का साक्षी है।[6]

---

[1] देखिए, 'मातृ-रूप', पृ० १३१

[2] इड़ा कुमार समीप पड़ी थी मन की दबी उपेक्षा निज
(कामायनी निर्वेद, पृ० १७४)

[3] 'हुआ देवी का दुर्गा वेश'— (लेखिनीकला का—साकेत, २ सर्ग, पृ० ३६)

[4] तुलसी—रामचरित मानस अयोध्याकाड, दोहा ५८

[5] शिवरत्न शुक्ल—"अरुण-किरण", ४ सर्ग, पृ० ५०-

[6] फिरतु तोष मम छमब, धरेउ न मोरो हो सुत।
पुष्प गुलाब प्रभाव, न कोई कटक कन रुत॥
अगिनि हेम सयोग, जार जरि कचन मल हर।
दोष मोर जो रह्यो, नस्यो सब तुम निरमल हे॥
और— (वही, १२ सर्ग, पृ० २०७)
बड़ अभिमान लाल यह मोरे, तू सुत हौं मैं माता।
यद्यपि दोष मढ्यो मम सिर अब, छुटिहि न तबहूँ नाता। (वही, पृ० २१३)

नारी के विकृत रूप के उदाहरण स्वरूप ही आधुनिक कवि ने शूर्पनखा,[१] जमीला[२] और गुजरात की रानी कमला देवी[३] को उपस्थित किया है। इसमें हम रूप-गर्व, ईर्ष्या, भोग-लालसा, उच्छृंखलता, और हिंसा का प्राधान्य पाते हैं। दशमुख की शूर्पनखा वन में सुन्दर कुमारों (राम, लक्ष्मण) को देखकर एक अनिंद्य सुन्दरी बनकर विवाह का लज्जाहीन प्रस्ताव लिए उपस्थित होती है। उसके रूप में कवि ने शीतल स्निग्ध आकर्षण नहीं वरन् दाहक ज्वाला देखी है। उसमें मनोज्ञता है किन्तु सरलता का अभाव है, मुस्कान है किन्तु लज्जाहीन, उसके नेत्र दीर्घ हैं किन्तु अतृप्त वासना से पूर्ण है।[४] वह जिसे प्रेम कहती है वह कामुकता मात्र है।[५] वह भोग लालसा के उद्देश्य से लक्ष्मण के ही समान यती बनने को भी प्रस्तुत है।[६] शूर्पनखा में स्त्री-स्वातन्त्र्य का स्वर ध्वनित हुआ है।[७] किन्तु इस स्वर में अर्धांगिनी या गृह-देवी के अधिकारों की माँग नहीं है वरन् उच्छृंखलता पूर्ण व्यवहार को भी सिद्ध करने का ईर्ष्या और क्रोधजनित प्रयास है। इसीलिए कवि स्वतन्त्र नारी की तुलना "विषमतारों की तन्त्री" से करता हुआ इसका विरोध करता है।[८] शूर्पनखा की विषम शक्ति कुमार्गगामी है। वह सुख शांति नहीं, धन वैभव को प्राप्त करने में तत्पर है मानवता का त्राण नहीं विध्वंस करने को उत्सुक है।[९] नारी के इस रूप को शूर्पनखा स्वयं ही स्पष्ट कर देती है —

> पक्षपातमय सानुराग है जितना अटल प्रेम का बोध,
> उतना ही बलवत्तर समझो कामिनियों का वैर विरोध।
> होता है विरोध से भी कुछ अधिक कराल हमारा क्रोध,
> और क्रोध से भी अशेष है द्वेषपूर्ण अपना प्रतिशोध।"[१०]

---

[१] मैथिलीशरण गुप्त—पंचवटी.

[२] गुरुभक्त सिंह—नूरजहाँ

[३] जयशंकरप्रसाद—लहर प्रलय की छाया.

[४] चकाचौंध सी लगी देखकर प्रखर ज्योति की वह ज्वाला,
निरलंकार खड़ी थी सम्मुख एक हास्य-वदनी बाला।
और — (मैथिलीशरण गुप्त— पंचवटी, पृ० २१, ३०)
रमणी की मूरत मनोज्ञ थी किन्तु न थी सूरत भोली।
और — (वही, पृ० २१, ३४)
थी अत्यंत अतृप्त वासना दीर्घ दृगों में झलक रही। (वही, पृ० २२, ३१)

[५] विष से भरी वासना है यह सुधा पूर्ण वह प्रीति नहीं। (वही, पृ० ३६, ६१)

[६] धारण करूं योग तुमसा ही भोग लालसा के कारण (वही, पृ० २९, ४४)

[७] नर कृत शास्त्रों के सब बंधन है नारी को ही लेकर,
अपने लिए सभी सुविधायें पहले ही कर बैठे नर। वही, पृ० ३३, ५३)

[८] तो नारी शास्त्र रचना कर क्या बहु गति का करे विधान
पर उनके सतीत्व गौरव का करते हैं नर ही गुणगान। (वही, पृ० ३४, ५४)

[९] वही, पृ० २९, ४५, तथा पृ० ३०, ४६.

[१०] वही, पृ० ६०, १०

यही रूप शुद्ध प्रणय को ऐश्वर्य, लालसा और इंद्रिय-तृप्ति में डुबाकर देखने वाली ईर्ष्या, क्रोध और प्रतिहिंसा की प्रतिमूर्ति जमीला का है। वजीर की बेटी जमीला के लिए सौदागर की पुत्री मेहर और सलीम का सहज स्नेह-वाहक हो जाता है। उसका रूप-गर्व ईर्ष्या को जन्म देता है, ईर्ष्या हिंसा मे परिवर्तित हो जाती है और हिंसा षड्यंत्र में विकसित होती है।[1] षड्यंत्र रचने के लिए यह उसका परम अवसर नहीं है, वरन्—

कितनी बरसातें देखी है, हूँ हीर नहीं कच्ची लकड़ी।
मे गाकर सेंध लगाती हूँ फिर भी न गई अब तक पकड़ी।"[2]

प्रेम उसके लिए खिलवाड़ मात्र है, सात्विक साधना नहीं और प्रेम के नाम पर मरना जुबानी चीज भर है, दृढ निश्चय नहीं। सतीत्व भाव का उसमे सर्वथा अभाव है। बूढ़े कुतुबुद्दीन को पति रूप में पाकर वह प्रसन्न होती है इसलिए कि युवती पत्नी की लातें खाकर भी चुप रह जाने वाले बुड्ढे की आँखों में आसानी से धूल झोंकी जा सकती है, और समस्त दुर्वासनायें अपनी तृप्ति पा सकती हैं।[3]

प्रसाद ने "प्रलय की छाया" में नारी के असत् रूप का अत्यन्त सजीव चित्र खींचा है रूपराशि-स्वरूपा किन्तु रूपगर्विता कमला अपनी ही "मृदुगंध से कस्तूरी मृग जैसी" पागल हो जाती है प्रणत प्रेमी गुर्जरेश को पाकर उसकी "विकलविलासमयी" लालसाओं की पूर्ति हुई। तभी सुलतान अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमणों, सती पद्मिनी के साहस और बलिदान की कथा समस्त भारत मे गूंज उठी। उससे "उन्नत हुआ था भाल महिला महत्व का", किन्तु आत्म दंभमयी, रूप को दाहक ज्वाला बनाने वाली, कमला ने सोचा —

"पद्मिनी जली थी स्वयं किन्तु मैं जाऊँगी
वह दावानल ज्वाला जिसमें सुलतान जले।
देखे तो प्रचंड रूप ज्वाला सी धधकती
मुझको सजीव वह अपने विरुद्ध।"[4]

और मुकुर उठाकर अपने रूप की तुलना पद्मिनी के चित्र से करके उस पवित्रात्मा को अपने सम्मुख नगण्य समझा था। बादशाह की बंदी होने पर भी "उस आपदा में आया ध्यान निज रूप का" तत्पश्चात् —

'कभी सोचती थी प्रतिशोध सेनापति का
कभी निज रूप सुन्दरता की अनुभूति
क्षण भर चाहती जगाना मैं

---

[1] गुरुभक्त सिंह—नूरजहाँ सर्ग ७, पृ० ५२ ५५
[2] वही, पृ० ५३.
[3] उनकी आँखों में बस करके गुलछर्रे खूब उड़ाऊँगी।
अपना उल्लू सीधा करने को बुलबुल उन्हें बनाऊँगी। (वही, १४ सर्ग, पृ० १०७)
[4] जयशंकर प्रसाद—लहर 'प्रलय की छाया" पृ० ७०

सुलतान ही के उस निमग्न हृदय में, नारी मैं।
कितनी अबला थी और प्रमदा थी क्रूर की।"[1]

उसमे साहस दिखाने का लोभ है किन्तु वास्तविक दृढता नही,[2] आत्महत्या की तैयारी है किन्तु बचने पर क्षोभ नहीं,[3] उसमें गर्व है किन्तु क्षत्रियत्व का अभाव है,[4] प्रतिशोध की आकाक्षा है किन्तु वासनाओं में डूबी हुई।[5] फलत निज रूप की भावना तथा शासन की महत्वाकाक्षा ने उसके हृदय में भारतेश्वरी बनने की कामना को मूर्त्त कर ही दिया। रूप की विजय मे उसने निज विजय समझी। यद्यपि यह नारी की सबसे बड़ी हार थी, आत्मसम्मान का हनन था, सतीत्व का पतन था।

इस प्रकार की नारी का रूप उसकी सबसे बड़ी शक्ति होने के स्थान पर सबसे बड़ी दुर्बलता है, मगल का केन्द्र होने के स्थान पर, "पुण्य ज्योतिहीन कलुषित सौंदर्य" है, "जीवित अभिशाप है जिसमे पवित्रता की छाया भी पड़ी नहीं"। इसीलिए इसकी परिणति कवि ने प्रलय की छाया मे असफल पतन दिखाया है। साथ ही कवि ने पद्मिनी के सम्मुख कमला की हीनता को भी दिखा ही दिया है। जिस प्रकार प्रमदा शूर्पनखा एक बारगी सीता की शक्तिमूर्ति को देख कर सकुचित हो गई थी,[6] उसी प्रकार प्रमत्ता कमला को भी यह ज्ञान हो ही जाता है कि पद्मिनी से अधिक रूपवती होने पर भी उस दिव्य भावना से रहित है—

"किन्तु था हृदय कहाँ?
वैसा दिव्य
अपना कमी थी इतना चुनी हृदय की
लघुता थी माप करने महत्व की।'[7]

और निज पूर्ण पतन पर ही उसने पद्मिनी के चारित्रिक महत्व को जाना तथा अपनी हीनता का अनुभव किया—

"उस उज्ज्वल आकाश में
पद्मिनी की प्रतिकृति सी किरणों मे बन कर व्यग हास करती थी।
× × ×
आज सोचती हूँ जैसे पद्मिनी थी कहती
'अनुकरण कर मेरा समझ सकी न मे।"[8]

[1] वही, पृ० ७५.
[2] वही, पृ० ७५
[3] वही, पृ० ७६
[4] वही, पृ० ८०.
[5] वही, पृ० ८०.
[6] चौक पडी प्रमदा भी सहसा देख सामने सीता को,
कुमुद्वती सी दबी देखकर उस पद्मिनी पुनीता को।
मैथिलीशरण गुप्त—पचवटी, पृ० ३०, ३१
[7] लहर प्रलय की छाया, पृ० ७१
[8] वही, पृ० ७३.

इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिक कवि की सत् स्वरूपा नारी यदि मानवता के लिए एक आदर्श लेकर उपस्थित होती है, क्षमा, न्याय और सहनशीलता की सजीव प्रतिमा है, कर्तव्यानुगामिनी है, पतिपरायणा है अलौकिक है, तो असत् नारी घोर लौकिक है, निरंतर द्वंद्वमयी है, विध्वंसमयी महत्वाकांक्षा और अधिकारवासना से पूर्ण है, निज रूप के कारण दंभभरी है, प्रेम की असफलता में प्रतिहिंसामयी है, और नारी की स्वभावज कोमलता से रहित होकर पौरुषी है। मूलतः नारी की कोमल शक्ति के उपासक के लिए नारी का पौरुषी वृत्ति को अपना लेना ही अप्रिय है। आधुनिक कवि ने तो नारीत्व—नारी का यथार्थ रूप उसके अवयव के सौंदर्य के साथ हृदय के सौंदर्य, प्रेम, त्याग और सेवा उदारता, विश्वास और करुणा के अखंड योग में देखा है। इससे अन्यथा रूप कवि की दृष्टि में विकृति है, जो पतन और असफलता की सूचना है। जब स्त्री अपनी यथार्थ प्रकृति को त्याग कर पुरुष की क्रूरता अपनाने का प्रयत्न करती है और उच्छृंखलता के कारण नाना प्रकार की दुरभिसंधियों में पड़ती है तभी अंत में असफल होकर गिरती है। तब उसे नतमस्तक होना पड़ता है, और जग जीवन की पथ प्रदर्शिका "सत् नारी" उसमें सुधार करती है। उस महत् कल्याणी मूर्ति के सम्मुख हमें (असत्-स्वरूपा) निज लघुता का ज्ञान होता है। तभी उसका सुप्त नारीत्व जाग्रत होता है। तब वह पुनः अपने खोये रूप को प्राप्त करती है।

इन सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हुए कवि ने अपनी आदर्शवादी भावना को पुष्ट कर दिया है। इस युग के कवि ने नारी में सत् रूप की ही प्रतिष्ठा मानी है। असत् रूप तो एक मिथ्या आवरण की भाँति है तथा एक भ्रांति है। ठीक अवसर और आवश्यक संसर्ग पाकर असत् का भी सुप्त सत् जाग्रत हो जाता है। इस प्रकार कवि नारी को दुर्गुणों से युक्त नहीं मानता, दुर्बलताओं को उसका स्वभाव नहीं मानता।

अध्याय ७

परिवर्तन युग में राष्ट्रीयता तथा समाज सुधार से प्रेरित नारी-भावना

१. राष्ट्रीय-भावना [नारी का वीर रूप]

द्वितीय अध्याय मे हम देख चुके हैं कि सक्रान्ति युग के कवियों ने राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित होकर नारी को वीर रूप मे देखना आरभ कर दिया था। परिवर्तन-युग में तथा उसके बाद राष्ट्रीय स्वतत्रता आंदोलन अत्यधिक व्यापक तथा प्रबल हो गया तथा गाधी के असहयोग आदोलन में उसने एक नया रूप धारण किया। फलत राष्ट्रीयता की भूमि पर निर्मित नारी भावना का विकास इस युग में विशेषरूप से तथा नवीनताओं के साथ हुआ है। यों तो राष्ट्रीय काव्य की रचना परिवर्तन युग के बाद (१९३७ के बाद) भी हुई है, किन्तु राष्ट्रीयता, समाजवाद फलत समाजवादी, यानी प्रगतिवादी काव्य की विशेषता नहीं है। राष्ट्रीयता छायावादी युग की ही विशेषता है, इसलिए इस युग के बाद के कवियों को भी, भावना की एकता के कारण, इसी युग में ले लिया गया है।

परिवर्तन युग का कवि, हम देख चुके हैं, नारी को शक्ति मानता है, जो समय समय पर जगमगल या सतीत्व रक्षा के लिए कठिन रूप धारण कर सकती है। राष्ट्रीयता के विचार से प्रेरित होकर वह नारी को विद्रोही जीवन की महाशक्ति के रूप मे, तथा सुप्त मानव को जागृति के रूप में पुकारता है।[1] जब भारत की स्वतत्रता का प्रश्न जनता का प्रथम प्रश्न था, जब सत्याग्रह आदोलन के रूप मे भारत विदेशी शासकों के प्रति अपना रोष प्रकट कर रहा था, जब घर घर से स्त्रियाँ और पुरुष निकल कर देश के चरणों में अपने जीवन की बलि कर रहे थे तब कवि ने भी देखा कि नारी अबला नहीं है, नारी नवयुग का संदेश लाई है, वह भारत की मृत वीरता में नवजीवन डालने वाली वीर बाला है।[2] कवि ने तर्क द्वारा सिद्ध किया है कि "विजय" और "शक्ति" मे

---

[1] विद्रोह भरे जीवन की तुम महाशक्ति बन जाओ।
× × ×
मेरे सोये उर में कुछ जागृति की कपन सी।
आओ जीवन निधि आओ जीवन में तुम जीवन सी।
(भगवतीचरण वर्मा—मधुकण स्वागत, पृ० ३८—३९)

[2] तममयी रात के प्रगाढ़ परदे को फाड़, नवयुग लाली का उजाला बन निकलीं।
रसिकेन्द्र साहस सुमेरु से सुसज्जित हो, शानदार सुमनों की माला बन निकलीं।
भारत की मृत वीरता में जान डालने को आज, सबलायें वीर बाला बन निकलीं।
(द्वारकाप्रसाद 'रसिकेन्द्र'—सबलायें, चाद, नवबर, १९३४)

नारीत्व रहते हुए नारी अबला नहीं हो सकती।[1] फलत कवि को कामिनी की परिभाषा भी बदलनी पड़ी है[2], और उसने अब नारी का कार्यक्षेत्र केवल गृह नहीं माना है, वरन् उसका विश्वास है, कि नारी-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सफलतापूर्वक कार्य कर सकती है और पुरुषोचित वीरता दिखाने में भी समर्थ है।[3]

सत्याग्रह काल की उथल पुथल ने देश की स्त्रियों को भी निज कर्तव्य के संबंध में चिंतित कर दिया है[4] और पुरुषों की कमी पूरी करने वाली पद्रह करोड़ असहयोगिनियों की कल्पना कवि के लिए आकर्षण का विषय हो गई है।[5] स्वतन्त्रता के युद्ध में नारी के पूर्ण सहयोग की आकांक्षा रखने वाले कवि का विश्वास है :—

"समर भूमि में देवियों ! तुम्हें सग जब पायगे,
निश्चय रण में हम तभी शीघ्र सफल हो जायगे।"[6]

इसलिए वह आकांक्षापूर्ण स्वर में कहता है —

"नित प्रति बहनों ! करो वही उद्यम तुम जिससे
सतानों में कर्म वीरता आवे जिससे।
करें देश का त्राण और दासत्व मिटा दें,
भारत को स्वातन्त्र्य सुधा का पान करा दें।"[7]

वह आशा करता है कि भारतमाता की रक्षा के लिए कोमल बालायें भी दुर्गा बनेंगी —

"देखि कालिका के सरिस बालिका के शरतीर वे,
वार करेंगे, वैरी के उर पार करेंगे,
दुर्गा कर सम नारि कर तलवार गहेंगे।"[8]

---

[1] तोरन देवी 'लली'—जागृति नारी, पृ० ११९ १२०.
देखिए — सुरेन्द्रनाथ तिवारी—वीरांगना तारा, कथामुख, पृ० १

[2] सार्थक किया है निज मंजु नाम कामिनी ने,
बनकर प्रेममयी देश हित कामिनी,
देखकर नर उसका विकास दिव्य उषा तुल्य,
छिप गई मोह अंधकारमयी यामिनी।
(गोपालशरण सिंह - सचिता · गजगामिनी, पृ० १७३)

[3] वीरांगना तारा, पृ० ६, १९

[4] जागृति माता का प्यार, पृ० १४

[5] सबल पुरुष यदि भीरु बनें, तो हमको दे वरदान सखी।
अबलायें उठ पड़े देश में, करें युद्ध घमसान सखी॥
पद्रह कोटि असहयोगिनियाँ दहला दें ब्रह्मांड सखी।
भारत लक्ष्मी लौटाने को रचदें लका कांड सखी॥
(सुभद्राकुमारी चौहान—मुकुल विजयादशमी, पृ० ७७)

[6] रामचन्द्र शर्मा राष्ट्रीय सदेश माताओं से, पृ० ४०, २.

[7] रामचन्द्र शर्मा राष्ट्रीय सदेश बहिनों से.

[8] राष्ट्रीय वीणा, भाग २, 'राम' साम्राज्य युद्धगीत, पृ०, ४३.

स्वदेशी आंदोलन के समय वह नारी को देश की स्वतन्त्रता के लिए स्वदेशी ही धारण करने की प्रतीक्षा करते हुए देखता है,[1] स्वातन्त्र्य-संग्राम से प्रेरित हो वह नारी को सैनिका के रूप मे देखता है। नारी के दो रूप हैं एक समय वह प्रेयसी है, सुन्दरी है, मृदु-भाषिणी है, और आनन्द विलास की वस्तु है, किन्तु दूसरे समय वह सबला है महिषमर्दिनी दुर्गा स्वरूपा है और सैनिक की सच्ची सहयोगिनी है। देश पर संकट आने पर युद्ध काल में नारी यह रूप धारण करती है। तब वह वीर वेष धारण कर लज्जा और चचलता का त्याग कर देती है। यौवन और काम वीरता के तट पर नष्ट हो जाते हैं। किंकिणी का स्थान असि, और मृदुमद का स्थान रणोन्माद ले लेते हैं। मधुर वाणी का स्थान रण नाद ले लेता है। इस प्रकार वह कोमल नारीत्व को त्याग कठोर पुरुषत्व धारण करती है।[2] कवि ने यदि एक सिपाही के उत्साहपूर्ण और निर्भय शब्दों को सुना है[3] तो सिपाहिनी, उसकी सहधर्मिणी, को वह भूला नहीं है। घोर संघर्ष काल में जब सैनिक युद्धार्थ प्रस्तुत है तो उसकी पत्नी कैसे चूड़िया पहने बैठी रह सकती है? उसके पति का सेनानी होना ही इस बात का प्रचुर प्रमाण है कि वह सैनिका है, पति का बल उसके अबलात्व को डुबाने के लिए पर्याप्त है। पुरुष शंकर है तो नारी निश्चय रूप से दुर्गा है, सूर्योदय से

---

[1] स्वतन्त्रता की झंकार : "एक अबला की पावन प्रतिज्ञा" पृ० ८७.

[2] नारियों ने भी ली असि तान चढ़ाए रण में आत्म प्रसून
छोड़ दी सुरभा की सब लाज
सुलभ चचलता की सब बात सजाए वीर वेष से गात
चल पड़ा गढ़ से नारि समाज बना लज्जा का लोहित रंग
बन गया रौद्र रूप ज्वाला लाल यही था परिवर्तन का काल
गया अरि ने अंजित अनंग
तरल गति यौवन की मृदु लहर वीरता के तट पर थी नष्ट

× × ×

शीघ्र ही दी किंकिणी उतार
बान भी ली कटि में तलवार छोड़कर चुबन का उपहार
हगों का त्यागा चचल वार हगों में यौवन का मृदुमद
हटाकर रखा रंग उन्माद भुला मृदुवाणी सीखा नाद,
नारि पद तज पाया नर पद

(रामकुमार वर्मा—चित्तौड़ की चिता, पृ० ८—१० ८५—१२०)

देखिए—डा० भगवत सिंह—वीरांगना वीरा, पृ० ४९, १९१, तथा पृ० ५१, २०१ तथा श्यामनारायण पांडेय—जौहर, ७, पृ० ३७—३९.

[3] माखनलाल चतुर्वेदी—हिमकिरीटिनी : सिपाही, पृ० ४९—५२, विशेष रूप से देखिए २ पद, पृ० ५० "क्या सिपाही"

पूर्व वह प्रणय क्रीड़ा की सगिनी रह सकती थी, किन्तु जागृति की उषा के आते ही उसका भी उथल पुथल कर देने वाला तेज जाग्रत हो जाता है। उसके लिए भी चूड़ियाँ त्यागकर जिरह बख़्तर से सजना अनिवार्य हो जाता है। उसका सुहाग ही हर के तृतीय नेत्र के समान प्रलय की ज्वाला बरसाने वाला बन जायगा। देश के हित वीरव्रत धारण करने वाली सिपाहिनी का यह चित्र माखनलाल चतुर्वेदी का है।[1] सोहनलाल द्विवेदी ऐतिहासिक दाँडी-यात्रा की स्मृति के मध्य पत्नी के उत्साह पूर्ण शब्दों को सुनते हैं, जो पति को देश मे बाधक नहीं बनतो और वियोग व्रत के स्थान पर स्वय भी देश व्रत लेकर सच्ची सहधर्मिणी बनती है—

"पति चल, पत्नी पुलकित मन से उत्साह अतुल उमग
स्वाहा कर सुख वैभव विलास ले ब्रह्मचर्य का व्रत अभग।"[2]

युद्ध का यात्री पत्नी से शक्ति की याचना करता है —

"प्राण दो तुम भाल चन्दन
विदा दो हे मातृ वदन, शक्ति दो तुम भक्ति जागे
मुक्ति पथ पर शिर चढ़ाऊ आज रण की ओर जाऊ।"[3]

---

[1]चूड़ियाँ बहुत हुई कलाइयों पर प्यारे भुज दड सजा दो

तीर कमानो मे सिगार दो जरा जिरह बख्तर पहनादो।
जी में सोये मे सुहाग जग उठो पुतलियों पर आजाओ
बिना तीसरे नेत्र, दृष्टि में अजी प्रलय ज्वाला सुलगा दो।

कैसे सेनानी हो, जो मै नहीं सैनिका होने पाती ?
कैसे बल हो अबलापन को जो मे नहीं डुबोने पाती ?

आदि पुरुष ने अपनी माया के हाथो मे कौशल सौंपा,
जग के उथल-पुथल कर देने के मस्ताने बल को सौंपा।

मेरे प्रणय और प्राणों के ओ सिंदूरमय रक्तिम लाली।
तुम कैसे प्रलयकर शकर ! जो मे रहूँ न दुर्गा, काली ?

अर्ध रात्रि के सूनेपन में, प्यारे बंसी बजा बजा,
मेरी धुन पर अपनी सांसे गूथ-गूथ स्वर हार बना लो

अगुलियों से गिन-गिन मोहन, मेरे दोषों को दुहरा ला,
ओठो मे आठो पर अपना प्रणय मत्र लिख स्वर गहरा ला

किन्तु सुनहली सूरज की किरणा पर क्या यह स्वाद लिखोगे ?
सखे खनकती करवालों पर चुड़ियों के सवाद लिखोगे ?

(हिमकिरीटिनी—सिपाहिनी, पृ० १३९—१४०)

[2]सोहनलाल द्विवेदी—भैरवी . दांडी-यात्रा, पृ० ७२

[3]सोहनलाल द्विवेदी—पूजा-गीत, पृ० ४७, २५

बंदीग्रह से पत्र भेजने वाले पति के मस्तिष्क में विरह विह्वला, मुक्त कुन्तला, परिधूसरित वस्त्रावेष्ठिता, क्षीणकाया, कोमलांगी का चित्र नहीं आता। उसे मालूम है कि उसका पत्र देशव्रत धारिणी वीरांगनाओं की अग्र पंक्ति में चलने वाली, सत्याग्रह में दृढ ललना के समीप जा रहा है —

"अग्रपंक्ति में चलते उन्मत्ता नारी दल आयेगा।

× × ×

रण गायन गाते तब वे उन्मत्त टोलियाँ आयेंगी।
नारीगण तब वीर वेश में अद्भुत छटा दिखायेंगी॥
जिनको पतित बताकर मिस मेओ ने था बदनाम किया,
देखेगा तू उन्हीं देश ललनाओं ने क्या काम किया॥
देखेगा उनको रण सज्जित केसर वस्त्र सजे ज्वाला।
कैसी दैवी शांति शक्ति से पिटने को उसने धारा॥

× × ×

चन्द्रमुखी उन ललनाओं को विद्युत सा तू पायेगा।
सत्याग्रह उनके स्वरूप की निर्मल कांति बढ़ायेगा॥

× × ×

कैसे दृढ़ संकल्पित होकर आगे बढ़ती जाती है।
घायल होती कुचल-कुचल नहीं पीछे कदम हटाती है।"

युद्धकाल में भगिनी और उसकी राखी का भी कुछ विशेष महत्व हो जाता है। एक बार चित्तौड़ की रानी ने "राखी" भेजकर विजातीय हुमायू को भाई बनाया और कहा था —

करो तुम रिपु सेना का नाश, गूँजा जयध्वनि से सब आकाश,
हटा दो रिपु का उन्माद"[२]

उस राखी की स्मृति आज पुन कवि-हृदय मे जाग्रत हो गई है।[३] आज के कवि के लिए राखी का मूल्य असाधारण है। जब सिर पर शासकों की तलवार तनी हो, जलियांवाला के से हत्याकांड हो रहे हों, मार्शल ला के नीचे देश कराह रहा हो और अनेक बहनें अपार वेदना से सिसक रहीं हों, तब बहन की राखी निस्तेज कलाई पर बँधकर न रह जाय, यह सबसे बड़ा भय है।[४] आज की बहन की राखी शुभ कामना मात्र नहीं है, निज रक्षा का

---

[१] अमरनाथ कपूर—पत्रदूत, पृ० ४, ५

[२] रामकुमार वर्मा—चित्तौड़ की चिता, पृ० ८६, १७७.

[३] वीर चरित्र राजपूतों का पढ़ती हूँ मैं राजस्थान
पढ़ते-पढ़ते आँखों में छा जाता राखी का आख्यान।
(सुभद्राकुमारी चौहान—मुकुल : राखी, पृ० ७०)
देखिए—रामेश्वर लाल खंडेश—तरुण-रक्षा बंधन, वीणा, अगस्त, १९४४.

[४] मुकुल : राखी, पृ० ७१, ७२.

प्रसाधन मात्र नहीं है, वरन् भारत माता के बधनों को काटने की चुनौती है,[१] देश के हित शीश कटाने का आमत्रण है।[२] फिर वह राखी भी तो "रेशम सी कोमल" नहीं है। वह तो है लोहे की हथकड़ी।[३] भादों की पूर्णिमा है, किन्तु बहन का प्यारा भाई 'माँ की पुकारों को सुनकर तैयार हो जेलखाने गया है।" बहन के हृदय में खुशी नहीं है, पर दुख भी नहीं है, क्योंकि "छीनी हुई माँ की स्वाधीनता को वह जालिम के घर से लाने गया है।" फलत· भगिनी को गर्व है। भाई की हथकड़ी मे ही वह राखी की सार्थकता और निज प्रण की पूर्ति पाती है।[४] आज संग्राम तत्पर बधु को बिदा देती हुई भगिनी कहती है—

"तुम्हारी दृढ़ता से जग पड़े देश का सोया हुआ समाज।
तुम्हारी भव्य मूर्ति से मिले शक्ति वह विकट त्याग की आज॥
तुम्हारे दुख की घड़ियां बनें दिलाने वाली हमें स्वराज्य
हमारे हृदय बने बलवान तुम्हारी त्याग मूर्ति से आज।"[५]

देश की स्वतत्रता के लिए प्रयत्नशील भाई के गिरफ्तार होने पर "आँसू छलके याद आ गई राजपूत की वह बाला, जिसने विदा किया भाई को देकर तिलक और माला।"[६] और तब बहन की भी वीरता जाग्रत हो जाती है। गम्भीर होकर वह केवल विदा ही नहीं देती[७] वरन् स्वय भी अनुगामिनी होती है।[८]

पुरुष मे वीरत्व और शौर्य सचार करने के क्षेत्र में पत्नी और भगिनी के अतिरिक्त

---

[१] आते हो भाई पुन पूछती हूं कि मा से बंधन की है लाज तुमको,
तो बढ़ी बनो, देखो बधन है कैसा चुनौती यह राखी की है आज तुमको।
(मुकुल . राखी की चुनौती, पृ० ६०)

[२] काँटों पर चलने वाले का साथ निभाने आई है बहन।
भैया के बुझते प्राणों की राख हटाने आई है बहन।
तो ला, हृदय रक्त से टीका लगा, बाँध राखी बहना।
शीश कटाने का आमंत्रण है बहना यह तेरा गहना।
(हरिकृष्ण प्रेमी—अग्नि गान . राखी के दिन राख, पृ० ६)

[३] रेशम सी कोमल नहीं वह कड़ी है।
अजी देखो लोहे की यह हथकड़ी है।
इसी प्रण को लेकर बहिन यह खड़ी है। (मुकुल राखी की चुनौती, पृ० ६०)

[४] सुभद्राकुमारी चौहान – मुकुल राखी की चुनौती, पृ० ५९—६०

[५] वही—विदा, पृ० ९३.

[६] वही—विदा, पृ० ९६

[७] सदियों सोई हुई वीरता जागी, मैं भी वीर बनी
जाओ भैया विदा तुम्हें मैं करती हूँ गम्भीर बनी। (विदा, पृ० ९१)

[८] बहने बोली, भैया न बनेगा यह एकाकी मौन गमन
हम भी पीछे-पीछे पद पर अनुमन करेंगी मंद चरण।
(सोहनलाल द्विवेदी—भैरवी : दाँडी-यात्रा, पृ० ७२)

माता भी अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। वास्तव में उसका पद तो इस क्षेत्र में सबसे ही अधिक महत्वपूर्ण हो गया है, जब आधुनिक कवि ने भारत-जन्मभूमि को माता के रूप मे देखकर उसकी उपासना प्रारम्भ की है और उससे शक्ति दान मागा है।[1] (किन्तु इस सबध में विस्तृत विवेचन प्रतीकात्मक भावना के अतर्गत किया जायगा।) प्रतीकात्मक भावना के अतिरिक्त भी वीर पुत्र की वीर-माता आधुनिक कवि की भावना का केन्द्र हो जाती है। "जग की आदि शक्ति" मानकर कवि ने माता को "वीरों की ख्याति" और "देश-दुख हरने वाली" के रूप में देखा हैं।[2] सुप्त और विलासिता मे पड़े हुए पुत्रों के लिए माता के ही उत्साहपूर्ण उपदेश की आवश्यकता है।[3] अस्तु, आज के कवि की माता "सिर चढ़े" पुत्र से कहती है :—

"क्यों न चढ़ावत सिर चढ़्यौ ललन ! बान धनु तानि।
किन खेलत खिन खड्ग सों, जासु खिलौहो बानि॥"[4]

और युयुत्सु पुत्र को विदा देते हुए उसके हृदय का अभिमान जाग्रत होता है,[5] वह पद्मावत की बादल की माता के समान[6] बाधक नहीं होती, वरन् कहती है :—

'चूर चूर है अत लौ राखियौ कुल की लाज।
जननि दूध पितु-खग की अहै परिच्छा आज।"[7]

पुत्र का देश-हित सग्राम मे वीर-गति को प्राप्त हो जाना जननी के गर्व का विषय होता है।[8] वास्तव में इस युग के कवि की भावना तो उन माताओं में अटकी है जो दृढ स्वर से कहें—

"जाओ बेटा, राम काज क्षण भग शरीरा"[9]

---

[1] जननि ! जन-जन के हृदय की आज तुम वीणा बजाओ
जो युगों से आज सोए हैं सकल अपनत्व खो,
आज मन में विजय की कामना मधुमय जगाओ।
(सोहनलाल द्विवेदी—भैरवी, पृ० ३९, २१)

[2] राष्ट्रीय-संदेश—रामचद्र शर्मा 'विद्यार्थी' . माताओं से.

[3] उठो उठो देवियों ! पुत्र पड़े खलता में,
उत्साहपूर्ण उपदेश दो, महाशक्ति है आपमें।" (वही)

[4] वियोगी हरि—वीर सतसई · मातृ-शिक्षा, २ शतक, पृ० २६, ८५.

[5] जननी के उर का गर्व जगा, मां के उर का अभिमान जगा,
तू धन्य पुत्र जननि के हित बढ़ा युद्ध मे प्रेम पगा।"
(सोहनलाल द्विवेदी—भैरवी : दांडी-यात्रा, पृ० ७३)

[6] जायसी—पद्मावत . गोरा बादल युद्ध, यात्रा खंड, पृ० ३२०.

[7] वियोगी हरि —वीर सतसई . मातृ शिक्षा, २ शतक, पृ० २९, ८८, तथा देखिए—वही, पृ० ८७, ८९

[8] आये रण में कूद जूझि कै लला लाड़िले काम।
सुनि छाती फूली, फटी, गई जननि सुर धाम।
(वही, विविध, ७ शतक, पृ० १०८, ८८)

[9] मैथिलीशरण गुप्त—साकेत, १२ सर्ग पृ० ४१२.

आधुनिक कवि ने नारी पुरुष के स्नेह सबन्धों को भी देश-कार्य के सूत्र में ही दृढ़ किया है —

चल पडी बहन चल पड़े बधु चल पडी जननि चल पड़े पुत्र ।
पति चले चली पत्नी उनकी जुड गया स्नेह का सरस सूत्र ।[1]

युग की माग और भावना की प्रेरणा ने वीर पूजा को जन्म दिया है। फलत : आज की सत्याग्रही वीरागनाओं की प्रशसा करता हुआ कवि अतीत की वीरांगनाओं को भूल नहीं सका है। वे राजपूत स्त्रिया जो सहर्ष और सोत्साह पुत्र, भ्राता तथा पतियों को रण-विदा देती थीं, आधुनिक क्राति-दूत कवि के आकर्षण का प्रमुख केन्द्र हैं : --

"मां कहती बेटा रखना मेरे पय की लाज,
पडा भंवर मे है स्वदेश का जर्जर जीर्ण जहाज !
कर्णधार बन तुम्ही आज ले लो, पकडो पतवार,
का सत्वर उद्धार और, तुम इसे लगा दो पार ।
लगा देह मे रक्त रोली कहती बहने सोल्लास
भैया निर्भय हो अखिल का करना सत्यानास !
रक्षा बधन बांध दिया था जो रक्षा का भार
क्या न आज उस गुरु प्रण पर हो जाओगे तैयार ?
जागो बधु, उठा आहव में वीरों का हुँकार !
लख लख दीनों के आंसू तुम्हें रहे ललकार !
वधुयें कौन ! अरे, हां वे ही नववधुए सुकुमार
अपने ही हाथों से कर पतियों का रण शृ गार
बाँध वृषभ कधो पर उन्नत अक्षय खर तूणीर
तन में कवच, मुकुट मस्तक पर, सजा समस्त शरीर
कहतीं, प्रियतम, निश्चय करना अरि गौरव गढ़ चूर,
चिंता नहीं रहे या जाये मम सुहाग सिदूर !
पर न लौटना बिना विजय को लेकर अपने साथ,
लड़ना दो दो हाथ दिखा कर अपना भुज बल नाथ ।"[2]

प्राचीन वीरांगनाओ में पद्मिनी,[3] कर्मा देवी,[4] वीरा,[5] पन्ना,[6] दुर्गावती,[7]

[1] सोहनलाल द्विवेदी - भैरवी दांडी-यात्रा, पृ० ७३
[2] आरसीप्रसाद सिंह—सचिता . अग्रदूत, पृ० १७५
[3] रामकुमार वर्मा—चित्तौड की चिता, श्रीनाथ सिह—सती पद्मिनी, वियोगी हरि - वीर सतसई : पद्मिनी जौहर, ४ शतक, पृ० ५८, श्याम नारायण पांडेय—जौहर महाकाव्य.
[4] वियोगी हरि—वीर सतसई · कर्मा देवी, ४ शतक, पृ० ७०
[5] वियोगी हरि—वीर सत सई· वीरा, ४ शतक, पृ० ७०, ठा. भगवतसिंह -वीरांगना वीरा
[6] ,, - ,, , पन्नाधाय, , ,, ,, ।
[7] ,, - , , दुर्गावती, ,, ,, पृ० ७१ ।

चाद बीबी,[1] नील देवी,[2] द्रौपदी,[3] कुंती,[4] सुमित्रा,[5] इयुडोसिया,[6] काहिना,[7] तारा,[8] सारधा,[9] और लक्ष्मीबाई,[10] जैसी क्षत्राणियाँ आधुनिक कवि की भावना की सिद्धि बन कर आई हैं। कवि कह उठता है -

'दिखलाता इतिहास आपकी सच्ची गाथा
वीर कर्म को देख नवाता जग है माथा।"[11]

इन "सिंही सदृश क्षत्रियाणियों" में आधुनिक कवि को अपनी भावना के अनुकूल साहस और शक्ति, वीरता और तेज, स्वाभिमान और गर्व, देश प्रेम और जाति गौरव का भाव मिला। साक्षात् शक्ति स्वरूपा इन आर्य देवियों के अक्षय यश को आलोकित करता हुआ कवि कहता है —

"अपने ही बल आपनी रखन हारियां लाज।
धनि आरज कुल नरियां, जग नारिनु सिरताज।"[12]

कवि ने इनमें न केवल स्वरक्षा की सामर्थ्य, निजी बल और साहस पाया है वरन् महत् सगठन-शक्ति और उत्तेजना-चातुर्य भी देखा है। पद्मिनी अनिंद्य सुंदरी है, राज महिषी है, सुकोमला है, किन्तु देश सकट के अवसर पर वह साक्षात् दावानल बन जाती है और हतोत्साह बैठे हुए राजपूतों के हृदयों में आग लगा देती है, वह सहज ही कह उठते हैं—

"इंगित की ही देरी थी, कह तो ब्रह्मांड हिला दें।
देरी थी उद्बोधन की, भू से आकाश हिला दें।"[13]

---

[1] वियोगी हरि-वीर सतसई चांद बीबी, ४ शतक, पृ० ७१।
[2] " " " नील देवी, " " पृ० ७१।
[3] मैथिलीशरण गुप्त—वन वैभव, सैरंध्री, वीरसतसई. ४ शतक, द्रौपदी केश-कर्षण, पृ० ५१.
[4] " " वक संहार.
[5] " " साकेत.
[6] " " अर्जन और विसर्जन "अर्जन"
[7] " " " " " "विसर्जन"
[8] सुरेन्द्रनाथ तिवारी— वीरांगना तारा.
[9] द्वारकाप्रसाद रसिकेन्द्र — सती सारंधा
[10] वियोगी हरि—वीर सतसई : लक्ष्मीबाई, ४ शतक, पृ० ७२ सुभद्राकुमारी चौहान— झांसी की रानी.
[11] राष्ट्रीय संदेश—रामचंद्र शर्मा "विद्यार्थी"—माताओ से; तथा, "वीरांगना वीरा" की भूमिका में कवि कहता है "इसी सती शिरोमणि के सच्चे पति-व्रत धर्म, देशप्रेम, जातिप्रेम, स्वाधीनप्रियता तथा अपूर्व शौर्यतादि गुणों का वर्णन करने में मे भी अपनी मंद लेखनी पुनीत करना चाहता हूँ"
[12] वीर सतसई—आर्य देवियां, ५ शतक, पृ० ६९, १५.
[13] श्यामनारायण पांडेय— जौहर महाकाव्य, ७, पृ० ४०, ८.

रात्रि के अन्धकार में रानी का देशाभिमान जगाने वाला गान गूँज उठता है[1] और उसका गीत चेतन तो क्या जड़ को भी उत्तेजित कर देने में समर्थ है।[2] इसी प्रकार मूर महिषी रानी काहिना का स्वातन्त्र्य प्रेम और आत्म विश्वास रमणीय है।[3] अनेक बार कवि ने नारी का देश प्रेम पुरुष से कहीं अधिक बढा हुआ पाया है। पुरुष प्राय भोग विलास की सरिता में देश और जाति के गौरव को बहा बैठता है किन्तु वीर नारी का देश प्रेम सदैव जागरूक रहता है। इयुडोसिया की प्रथम आकाक्षा है कि उसका भावी पति जोनस, सीरिया को अरबों के आतक से मुक्त करे।[4] बीरा, जो एक वीरागना मात्र थी, अपने ओजपूर्ण शब्दों से दो दो बार क्षत्रियत्व से च्युत होते हुए उदयसिंह में देश प्रेम जाग्रत करती है।[5] इस प्रकार सारधा की भर्त्सना कामाकर्षित भ्राता अनिरुद्ध को कर्तव्य ज्ञान कराती है।[6] सारधा के जीवन मे यह अकेला अवसर नहीं है। चपतराय से विवाह होने के पश्चात् बुदेलखट की स्वातन्त्र्य रक्षा के लिए उसने जो अनेक प्रयत्न किए वह आधुनिक कवि के प्रधान आकर्षण हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिक कवि में प्रबल राष्ट्रीय चेतना है। उससे प्रेरित होकर वे नारी को प्रेमिका मात्र नहीं देख सका है। जब कवि देश की परिस्थितियों के प्रति जाग्रत होकर कवियो से कहता है —

"आज कवि जग !
त्याग अत.पुर, निरख ये जा रहे हैं कौन दृढ डग"[7]

जब वह कृष्ण से भी वशी छोड़ कर पूर्व जन्म धारण करने को कहता है,[8] जब वह मातृभू के शुभ्र अचल का दाग मिटाने के लिये भवानी को जगाता है,[9] जब वह "अग्नि

---

[1] वही—१२, पृ० ६८, ६

[2] वही, १२, पृ० ७०, ६

[3] स्वातन्त्र्य के अर्थ हमारे निकट कौन सा मूल्य महान,
धन क्या यह जीवन भी आना कर दें उस पर हम बलिदान।
यहाँ अकिंचन होकर भी हम होंगे कभी न दीन न हीन,
जब तक जगती में आने को मान सकेंगे हम स्वाधीन।
(अर्जन और विसर्जन विसर्जन, पृ० २८)

[4] चाहती हूँ, मेरे भावी पति भी स्वदेश के संकट में वीरोचित भाग लें।
(वही अर्जन, पृ० ७)

[5] ठा० भगवतसिंह—वीरागना वीरा, पृ० ९—१०, ३३ —३९.
देखिए—वही, पृ० २२—२५, ८५—९६.

[6] रसिकेन्द्र—सती सारधा, १ सर्ग, पृ० ५.

[7] सोहनलाल द्विवदी—पूजागीत, पृ० ४८, ११.

[8] सोहनलाल द्विवेदी—भैरवी, अनुनय, पृ० ७८

[9] मातृ भू के शुभ्र अंचल का मिटा दे दाग
ओ भवानी जाग! (भैरवी, पृ० ३२, १६)

उमग"[1] से भरा हुआ भविष्य के कर्णधारों को जगाने मे सलग्न है, जब वह रोदन और शृगार के स्वर त्याग अरुणोदय के शखनाद के प्रति सजग है,[2] तो स्वाभाविक ही है कि वह नारी के देश-प्रेमिका रूप का स्वागत करे, स्वतन्त्रता युद्ध मे बलि होने वाले योद्धा की सच्ची सहयोगिनी के रूप मे देखे। साथ ही प्राचीन वीरागनाओं और नवीन असहयोगिनियों को देख कर उसे अपनी भावना की सत्यता पर विश्वास भी होता है। आधुनिक कवि के लिये देश का महत्व जौहर और पतिप्रेम से भी बढ जाता है। जौहर मरण-त्यौहार था और पतन से बचने का साधन था। किन्तु वह विपत्ति से पलायन था, उसमें सन्मुख-निर्भयता का अभाव था। इस युग के कवि की वीरागना कोमलता और अबलात्व को त्याग कर सन्मुख युद्ध मे प्रवृत्त होना चाहती है।[3] और कवि 'जौहर की रानी पद्मिनी" की स्मृति मे कह उठता है —

"पति प्रेम वतन के पूजन में, आजादी बलि के जीवन में,
तप त्याग धधकती ज्वाला में, जौहर प्रिय अमृत चिंतन में
जो अमर बेलि बन कर फैली
वह आज़ादी की दीवानी एक चंडी जौहर की रानी।"[4]

२ समाज सुधार की भावना (मानवीरूप)

कवि चाहे अतीत की कल्पना करे अथवा भविष्य का निर्माण करे, उसे अपनी भावना की मूल प्रेरणा अपने ही समाज से मिलती है। आधुनिक कवि को यदि अव्यावहारिक ह्रासोन्मुखी रूढियों मे जकड़ा दुर्दशा को प्राप्त हिंदू समाज न दीखता तो वह भारतीय संस्कृति की व्यावहारिक, वैज्ञानिक और उत्थानोन्मुखी व्याख्या करने के लिए 'कामायनी', 'साकेत', 'वैदेही वनवास', 'तुलसीदास', 'यशोधरा' आदि जैसे ग्रथों की रचना न कर सकता, यदि उसे समाज मे अशिक्षित, ज्ञानहीन पद-दलित नारियाँ नही दीखती तो वह श्रद्धा और उर्मिला, यशोधरा और सीता की मौलिक कल्पना करने मे असमर्थ रहता। वास्तव मे इस युग की आदर्शवादिता सामाजिक पतन और यथार्थ दशा से ही प्रेरित है। इस प्रकार एक व्यापक दृष्टि से तो इस युग के समस्त काव्य की नारी-भावना सुधार भावना से उद्भूत है, किन्तु कुछ काव्य ऐसा है जो बिल्कुल सीधे ढग से सामाजिक

---

[1] आरसीप्रसाद सिंह—सचयिता पृ० १३६

[2] वही—कवि के प्रति

[3] माना जौहर भी होता था, मरने के त्यौहारों वाला
और पतन के अगम सिंधु मे, तरने के त्यौहारों वाला।
× × ×
जौहर से कढ़ कर घोड़े पर चढ़ कर जौहर दिखलाने दो
चुड़ियाँ हो सुहागिनी यौवन! यौवन अवनी पर आने दो।
माखनलाल चतुर्वेदी—हिमकिरीटिनी सिपाहिनी, पृ० ४१.

[4] पुरूषोत्तमदास विजय—जौहर की रानी पद्मिनी, वीणा, अप्रैल १९३७.

समस्याओं को लेकर नारी पर प्रकाश डालता है। छायावादी और रहस्यवादी कवि तो प्रायः इस प्रकार की सुधार भावना से दूर ही रहे। वे वायवीय कल्पनाओं में अधिक लीन रहे। किंतु कुछ कवि अधिक स्थूल दृष्टि रखते हैं। अयोध्यासिंह उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त, गोपालशरण सिंह, वियोगीहरि आदि का ध्यान इस ओर विशेष रूप से आकर्षित हुआ।

यह कवि प्राचीन भारतीय नारियों की सुशिक्षा, सज्ञानता, कुशलता आदि की तुलना में आधुनिक भारतीय नारी की दुर्गति देख कर क्षुब्ध है।[1] प्राचीन काल में

"निज वैभव से ही गर्व शची का जो खोती थी,
वाणी के ही तुल्य श्रेष्ठ विदुषी होती थी।
ऐसी सतियों का यहाँ महामान सम्मान था
जो मानव अभिमान था, देशोन्नति पहचान था।"[2]

तो उसके विपरीत आज :—

'शोचनीय हालत हमारी पुत्रियों की सदा
उर में हमारे और शोक उपजाती है।
जननी नहीं है अब जनना सपूत यहाँ
गृह में कभी न गृहदेवी मान पाती है।
जाल में फंसी मलीन मीन के समान दीन,
नारियों को देख आँख भर भर आती है।"[3]

नारियों की सामाजिक दुरवस्था के कारण समाज की प्रतिष्ठा तो नष्ट होती ही है, साथ ही भारत की भाग्य-लक्ष्मी के उदित नहीं होने का कारण भी कवि इसी को मानता है

"गृह देवियाँ यहाँ हैं पाती नहीं प्रतिष्ठा।
किस भाँति भाग्यलक्ष्मी दे फिर यहाँ दिखाई।[4]

[1]दमयंती की यही जन्म वसुधा है प्यारी,
हुई रुक्मणी यहीं और गार्गी, गांधारी।
जनक सुता की कथा विश्व विश्रुत है न्यारी,
और कहाँ है हुई जगत में ऐसी नारी,
पर आज अविद्या मूर्ति सी हैं सभी श्रीमतियाँ यहाँ,
री सृष्टि अभागी देख ले उनकी दुर्गतियाँ यहाँ।
(गोपालशरण सिंह—सचित्र विधि-विडंबना, पृ० १५०)

[2]प्रतापनारायण कविरत्न – नल-नरेश, सर्ग १, पृ० ८

[3]गोपालशरण सिंह - माधवी . भारत नारद सम्मिलन पृ० ५, १०

[4]यदि अबलाओं की सुधरती नहीं है दशा,
लाज ही समाज की हमारे अब जाती है।" (वही)

[5]गोपालशरण सिंह—सचित्र : भाग्य लक्ष्मी, पृ० ११३.

कवि ने नारी का मानवी माना है,[1] साथ ही नारी मे, जैसा कि हम देख चुके हैं, उसने अनेक गुणों का सचय भी पाया है। फलतः इस युग के कवि के लिए आदर की पात्र नारी का सामाजिक पददलन असह्य हो जाता है। नारी को देवीरूप मे देखने वाला, समुचित मान प्रदान करने वाला, उसकी महत्ता को स्वीकार करने वाला, आधुनिक कवि वैवाहिक समस्याओं, विधवा के कष्टो, पर्दा-प्रथा के दुष्परिणामो, नारी-शिक्षा की अनिवार्यता तथा नारी के पतित समझे जाने वाले रूपो का एक मानवतावादी दृष्टिकोण से देखता है।

हिन्दू-समाज मे विवाह सबसे महत्वपूर्ण समस्या है। कन्या के गृह मे आते ही उसके विवाह की चिंता माता-पिता को पीडित करने लगती है। परपरागत रूढियो मे बँधे हुए माता-पिता बालिका का ही विवाह कर देते हैं, चाहे वर कैसा भी हो। वे मानो कन्या का बेच देते हैं और साथ ही उसकी व्यथा के प्रति कान बद कर लेते हैं[2]। वृद्ध के साथ नवयुवती का विवाह करते हुए भी समाज का सकोच नहीं होता। शशिकला राहु को आत्मसमर्पण करता है, कुसुमकली बन्दर के हाथ मे डाल दी जाती है, और मृदुलतिका का आलिगन पाषाण करता है।[3] युवती का प्रेम रो उठता है और मूक भाषा मे रक्षा की भीख मागता है किन्तु :—

उत्साह की मुदमयी निशा में किसे भला है ध्यान,
जग की कोमल मानवता का होता है बलिदान।[4]

स्त्री को खिलौना मात्र बनाकर विविध प्रकार से मनानुकूल लीलाएँ की जाती है और पुरुष यदि सुख से विलास करता है तो नारी सदैव दु.ख सहन करती है।[5] आधुनिक कवि के लिए यह असह्य है। साथ ही कवि प्रेमहीन विवाह की समस्या पर भी दृष्टिपात करता है। भारतीय नववधू एक सर्वथा अपरिचित पुरुष को अपना प्रेम समर्पित

[1] गोपालशरण सिह—मानवी मानवी, पृ० १-५

[2] बेटिया खिलते कलेजे को कभी, सामने आ खेल सकती हैं नहीं।
(अयोध्यासिह उपाध्याय—चुभते चौपदे · बेटिया, पृ० १९७)

[3] गोपालशरण सिह - मानवी : बलिदान, पृ० १०८.

[4] वही, पृ० १०९.

[5] क—वे अगर हाथ का खिलौना है।
तो न उनको खेला खेला मारें।
(अयोध्यासिह उपाध्याय – चुभते चौपदे बेटियां, पृ० १९९)

ख—क्यो न यह सोचा गया, हम किसलिए
सुख में सदा बिलसे, वे दु.ख सहें। (वही, पृ० २००)

ग—मर्द चाहे माल चाबा करें।
औरतें पीती रहेंगी मांड ही। (वही : बेबाए, पृ० १९७)

करती है।[1] इस प्रथा का शुक्ल पक्ष भी है, किन्तु स्त्री की इच्छा के न रहते हुए, उसकी भावना अन्याश्रित होते हुए भी जब ऐसा होता है तब नारी की सामाजिक विवशता का ही परिचय मिलता है। कवि की आधुनिक ब्रजबाला के हृदय मे विवाह के उपरांत भी एक पूर्व-स्मृति वास करता है, और उसके सस्मित अधरों पर विषाद की रेखा खिची रहती है, आनद अबुनिधि मे वह प्यासी ही रहती है और उसका विवाहित जीवन भी असतोष से ही भरा रहता है . —

"पति की गोदी में लेटी तू किसे याद है करती,
सुमनों की सुख शय्या पर क्यो आह सदा है भरती।"[2]

समस्त अतृप्ति और अशाति का मूल तो यह है .—

"तन किसे दिया तूने
मन किसे दिया तूने।"[3]

किन्तु उसक वेदना गभीर नीर-निधि की नीरवता की भाति गुप्त और मूक रहती है। क्योंकि भारतीय समाज म कन्या को व्यक्तिगत भावों को खोलने का अधिकार नही है। उसकी वाणी रुद्ध की हुई है -

कह सकती भी न कभी कुछ तू है ऐसी दीवानी।
परवशता ही है तेरे जीवन की करुण कहानी॥[4]

यदि पत्नी के हृदय मे प्रेम होता है तो वह उपेक्षित होकर अपने दिन गिनता है। सब प्रकार से स्वतत्र पुरुष के लिए पत्नी म ही अनुरक्त होना अनिवार्य नही रहता। पति का प्यार जब अन्या के प्रति आकर्षित हो जाता है—हिन्दू समाज मे पुरुषों का बहु-विवाह का अधिकार और वेश्या-प्रेम इसका कारण होते हैं—तो उपेक्षिता का भाग्य सदैव के लिए सो जाता है। गृहिणी का सात्विक प्रेम ठोकरें खाता है और —

"यह नई अतिथि कहलाती शोभा है अतःपुर की।"[5]

परिणामत

"हो गया अपरिचित जन सा जीवन धन हृदय निवासी।
रस सागर के तट पर मैं रहती सदैव हूँ प्यासी।"[6]

उपेक्षिता मे भी गई बीती दशा भारत की अभागिनी विधवा की है। विधवा से

---

[1] अज्ञात प्रेम गृह में है नववधू पदार्पण करती
है एक अपरिचित जन को जीवन धन अर्पण करती। (मानवी दुलहिन पृ० ६)

[2] मानवी : ब्रजबाला, पृ० २०.

[3] मानवी : ब्रजबाला, पृ० २३.

[4] वही, पृ० २६.

[5] वही, उपेक्षिता, पृ० ६६.

[6] वही, पृ० ९८.

आधुनिक कवि की विशेष सहानुभूति है[1]। कवि देखता है कि बाल विधवा की तो पूजा पूर्ण नहीं हो पाती और उसके जीवन में —

"जब प्रेम मिलन की चाह हुई नव चिर वियोग की व्यथा हुई।
ज्यों ही उसका आरंभ हुआ त्योंही समाप्त वह कथा हुई॥"[2]

किन्तु नूतन अनुराग, सद्यजात अभिलाषाओं और नवीन शृंगार के सहसा नष्ट कर दिए जाने पर भी परवश मूकता ही उसका साथ दे सकती है।

"तू कभी नहीं कुछ कहती है, चुपचाप सभी कुछ सहती है।
जग में रस-धारा बहती है, पर तू प्यासी ही रहती है।"[3]

इसका विफल प्रेम और अभिलाषाओं का मूक-दमन आधुनिक कवि की सहानुभूति के लक्ष्य हैं।[4] किन्तु कभी-कभी जब बाल-विधवा अपने संयम को खोकर पर-धर्म की शरण लेती है तब तो कवि यह जानता हुआ कि समस्त उत्तरदायित्व समाज का है, कह उठता है .—

"गोद में ईसाइयत इस्लाम की।
बेटियाँ बहुएँ लिटा कर हम लटे॥"[5]

विधवाओं के सामाजिक अनादर और पर-धर्म ग्रहण के फलस्वरूप स्त्री की लज्जा का नाश होता है और राष्ट्र को अनेक सपूतों की हानि सहनी पड़ती है[6]। स्त्री जाति की दुर्दशा ही जाति और देश के पतन और विनाश का सूचक है। आधुनिक कवि ने विधवाओं और पीड़िताओं की आहों और अश्रुओं में भारत का अंधकारपूर्ण भविष्य देखा

---

[1](क) अयोध्यासिंह उपाध्याय— चुभते चौपदे : आठ आठ आंसू, बेवायें, पृ० १९३.
(ख) वागीश्वर विद्यालंकार—विधवा
(ग) सूर्यकांत त्रिपाठी "निराला" —परिमल : विधवा.

[2]मानवी · अभागिनी, पृ० ५९

[3]वही, पृ० ६०, तथा देखिए—

'वह दुनिया की नजरों से दूर बचाकर
रोती है अस्फुट स्वर में।"
(सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला"—परिमल . विधवा)

[4]सब आशायें अभिलाषाएँ उर कारागृह में बंद हुईं।
तेरे मन की दुख ज्वालाये मेरे मन में कुछ छन्द हुईं।
(मानवी · अभागिनी, पृ० ६३)

[5]चुभते चौपदे : आठ आठ आंसू : बेवाये, पृ० १९३.

[6]आबरू जैसा रतन जाता रहा,
खो गए कितने निराले लाल भी।
(चुभते चौपदे . आठ आठ आंसू : बेवाये पृ० १९४)

है[1]। कवि के हृदय मे इस विधवा से पूर्ण सहानुभूति है जो व्रत तप करती हुई भी उत्सवों के अवसर पर अमंगला मानी जाती है,[2] और उसे विश्वास है कि .—

"जब नहीं आबाद बेवाएँ हुई।
तब भला हम किस तरह आबाद हों॥
क्यों भला बरबाद होवेंगे न हम।
बेटियां बहनें अगर बरबाद हों॥[3]

नारी की परवशता और करुणा की कथा यहीं नहीं समाप्त हो जाती। भारतीय समाज मे प्रचलित पर्दा प्रथा उस सूत्र को सुदृढ़ कर देती है। नारी का समस्त व्यक्तित्व पर्दे के पीछे छिपा पड़ा रह जाता है। उसके ज्ञान का प्रकाश संसार को प्राप्त नहीं होता।[4] समाज उनकी उपादेयता से वंचित रह जाता है। इसमें नारी का दोष नहीं, दोष तो समाज ही का है —

कितनी ही कोमल कलियाँ मुँह को भी खोल न पाती।
हो दलित कठोर करों से मुरझा कर हैं झड़ जातीं॥[5]

परदे में गूँजनेवाली व क्लेश व कथाओं का कोई अंत नहीं है। पुरुष की मस्ती के फल स्वरूप अपनी फूटी तकदीर की करुण कथा को बेचारी आँसू कहती है, किन्तु उन्हें उत्तर क्या मिलता है? विवशता! लाचारी!! टुकराया हुआ प्यार अपनी पुकारों को दीवालों से टकराता हुआ पाता है और समस्त अभिलाषाएँ चूर हो कर रह जाती हैं।[6]

पर्दे के अतिरिक्त स्त्री-शिक्षा भी इस युग के सामाजिक की प्रमुख समस्या है। कवि पुरुषों के ही समान स्त्रियों को भी शिक्षित देखना चाहता है। देश की उन्नति और संतान की उत्तमता अर्थात् माताओं की सुशिक्षा पर ही निर्भर है। अर्थात् माताओं को शिक्षा का उतना ही

[1] देखता हूँ जाति डूबेगी।
है जमा नित हो रहा आंसू। (वही, पृ० १९५), तथा
जहाँ बाल विधवा हियें रहे धधक अँगार।
सुख सीतलता को तहाँ करिहौ किमि संचार।
भले सुधा सींचौ तहाँ फलु न लागि है कोय॥
जहाँ बाल विधवान को अश्रु पात नित होय॥
(वियोगी हरि— वीर सतसई बाल विधवा ६ शतक, पृ० ६५)

[2] विधवा तरुन तपस्विनी असिव्रत पालन हारि।
कहीं जात या जगत में हा अमंगला नारि॥ (वही, मंगला और अमंगला, पृ० ९५)

[3] चुभते चौपदे —आठ आठ आंसू : बेवाएँ पृ० १९३.

[4] शुचि ज्ञान भानु उर में ही है सदा छिपा रह जाता
उसका प्रकाश अवनी में है कभी न होने पाता। (मानवी . परदे में, पृ० १५)

[5] वही

[6] गोपालशरण सिंह—मानवी : परदे में, पृ० १७.

अधिकार है जितना पुरुष को, यह कवि की निश्चित धारणा है।[1]

आधुनिक कवि की सहानुभूति की पात्री न केवल गृहस्थिता पीडिता नारी है वरन् पुरुष की कामोपासना का मूलस्वरूप किन्तु घृणा की दृष्टि से देखी जानेवाली वह नारियाँ भी हैं जो निज नारीत्व और स्वभावज शक्तियों और आकाक्षाओं का बलिदान करके एक कृत्रिम और अवाछित जीवन को अपनाती हैं। ऐसी नारियाँ हैं—वारॉगनाएँ और देव-दासियाँ। "कभी कोई ऐसा इतिहासकार न हुआ जो इन मूक प्राणियों की दु खभरी जीवन गाथा लिखता, जो इनके अँधेरे हृदय में इच्छाओं के उत्पन्न और नष्ट होने की करुणकहानी सुनाता, जो इनके रोम-रोम को जकड लेने वाली शृखला की कडियाँ ढालने वाला के नाम गिनाता और इनके मधुर जीवन पात्र में तिक्त विष मिलाने वाले का पता देता।[2] समाज वारागना के रूप को देखता है, उसका भोग करता है किन्तु उनकी परिस्थितियो के प्रति विचार हीन है, उनके अर्तहृदय के प्रति अध है।[3] आधुनिक कवि रीतिकालीन कवि की भाँति गणिका की चतुर चेष्टाओं से आकृष्ट नहीं है, वरन् उसके लिए तो सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह है .—

"सच बतला, क्या अपने मन में, रहती है तू कभी प्रसन्न।
तरुणी तेरे इस जीवन में, कितनी करुणा है प्रच्छन्न ?"[4]

[1]सम हैं दोनो नर नारी, ज्ञान प्राप्ति के अधिकारी।
एक वृक्ष के दो फल है, एक डाल के दो दल हैं।

\+ \+ \+

यह कैसी है मनमाना न्याय नीति की नादानी।
अर्धाङ्गिनी कहलाती है मगर मूर्ख रह जाती है।
पढ़ी लिखी नारी होगी, पतिव्रता प्यारी होगी।
पढ़े पुराण पवित्रो को, सीता सती चरित्रो को।
धर्म कर्म निज जानेगी, गुरुजन को भी मानेगी।
सकट में धीरज देगी, कभी न तुमको तज देगी।
मधुभाषिणी घर की श्री, होती सदा सुशिक्षित स्त्री,
देशोन्नति हो ध्येय अगर, या समाज सेवा व्रत भार,
तो भी साथ स्त्रियो को लो, उत्तम शिक्षा उनको दो।
बिना स्त्रियों के कभी होने का कुछ काम नहीं।

(रूपनारायण पांडेय—पराग . स्त्री-शिक्षा, पृ० ११०-१११)

देखिये—सुरेन्द्रनाथ तिवारी—वीरांगना तारा, पृ० ७, १९.

[2]महादेवी वर्मा—शृंखला की कड़ियां : जीवन का व्यवसाय, पृ० ११७.

[3]होता है जग मुग्ध देख कर, तेरा नित नवीन शृगार।
कौन कभी सुनता है बाले ! तेरे उर का हाहाकार।

(गोपालशरण सिह—मानवी : वारांगना, पृ० ६६)

[4] वही,

उसे पूर्ण विश्वास है कि रूप का हाट लगाने वाली वेश्या मे भी चिरतन नारी हृदय वर्तमान है। "उनके पास धडकता हुआ हृदय है जो स्नेह का आदान-प्रदान चाहता है, उनके पास भी बुद्धि है जिसका समाज के कल्याण के लिए उपयोग हो सकता है, उनके पास भी आत्मा है जो व्यक्तित्व मे अपने विकास की पूर्णता की अपेक्षा रखती है।"[1] इसी लिए तो वह कहता है -

"रही खोजती सदा किन्तु क्या, मिला तुझे तेरा हृदयेश ?
कभी किसी ने तुझे सुनाया, क्या निज प्राणो का सँदेश ?
है तेरी प्रगल्भता में भी, छिपा हुआ लज्जा का भाव।
किसी रत्न का तुझे खटकता, रहता है सब काल अभाव।
निज जीवन में कभी न पाया, तूने जीवन का आनन्द।
खुले हुए भी सदा रह गये, तेरे लोल विलोचन बन्द।"[2]

"किन्तु उसे अभिशाप मिला है नित्य सुदर भाव रचने का, पुरुष की वासना की पीर पर आत्म बलिदान करने का, और उस अग्नि मे हँसते-हँसते अपने जीवन को तिलतिल जलाने का। उसके हृदय मे प्यास है परन्तु उसे भाग्य ने मृगमरीचिका मे निर्वासित कर दिया है।"[3] कवि के शब्दो मे-

"रस सागर में हो निमग्न भी, तू रह गई सदैव सतृष्ण।
कैसे प्यास बुझे जीवन की ? मिला न तुझको तेरा कृष्ण।"[4]

अन्तु, वेश्या के समस्त उल्लास-विलास के पीछे करुण क्रन्दन छिपा है। कवि को दुख है कि नारी हृदय की विभूतियाँ इस प्रकार छिपी पडी रह जाती है।[5] किन्तु, फिर भी, उसका बलिदान और सहनशक्ति अपरिमेय है। निर्दय समाज ने उसे त्याग दिया है, उस पर सदैव कीचड उछाला है, कभी प्रेम भाव से उसके दग्ध हृदय को सींचा नहीं, फिर भी वह —

"सुधा पिलाती है औरो को, पीकर स्वय गरल के घूट।"[6]

और . —

विधी कटको से कलिका सी, हँसती तू भी है सोल्लास।
उर की मार्मिक व्यथा छुपाकर, करता है नित हास विलास।[7]

[1] महादेवी वर्मा शृखला की कडियाँ जीवन का व्यवसाय, पृ० ११५.
[2] मानवी वारागना, पृ० ६६
[3] शृखला की कडिया जीवन का व्यवसाय, पृ० ११५
[4] मानवी वाराँगना, पृ० ७०
[5] सना हृदय के नयननीर से, है तेरा उल्लास विलास।
छिपा हुआ रह गया सर्वदा, तेरे उर का विमल प्रकाश।
(मानवी वारागना, पृ० ६९)
[6] मानवी वारागना, पृ० ६९
[7] मानवी . वारांगना, पृ० ६६.

नारी जीवन की इसी ढंग की विडंबना कवि ने देवदासी में पाई है। उसके हृदय की आकांक्षाओं का सजीव बलिदान प्रस्तर मूर्ति के चरणों में होता है। कवि को आश्चर्य है --

वार दिया है जिस पर तूने तन मन जीवन सभी प्रकार।
कभी दिखाता है क्या वह भी तुझे तनिक भी अपना प्यार ?

× × ×

क्या प्रतिमा के पूजन से ही होता है तुझको संतोष।
क्या न कभी आता है तन्वी तुझे भाग्य पर अपने रोष ?[1]

आधुनिक कवि का हृदय देवदासी के नूपुरों के साथ नाच नहीं उठता वरन् उसके विचित्र बलिदान को देखकर रो उठता है

"तूने ली है मोल दासता करके निज सर्वस्व प्रदान।
रो उठता है हृदय देख कर यह तेरा विचित्र बलिदान।'[2]

इस प्रकार नारी से सहानुभूति रखने वाला कवि अज्ञात रूप से उसके करुण-स्वरूप की ओर आकर्षित हो गया है। अबलाओं और बालाओं का अभिन्न साथ[3] देख कर प्राचीन इतिहास के पृष्ठों में भी उसने कुछ उदाहरण पा लिए हैं। गोपालशरण सिंह ने सतयुग की शकुंतला, त्रेता की सीता, द्वापर की राधा और कलियुग की अनारकली की करुण-कथाओं पर प्रकाश डाल कर नारी-समस्या के व्यापकता और अविच्छिन्नता को स्पष्ट कर दिया है। काल के साथ समस्या के बाह्यरूप में और वातावरण में भले ही परिवर्तन हो जाय किन्तु मूलतः नारी की करुण कथा का सूत्र एक ही है। उल्लिखित कथाओं में कवि का लक्ष्य नारी के प्रेम, सहन-शील और सतीत्व को प्रदर्शित करने के अतिरिक्त उसका वैषम्य पौरुषी अत्याचार में दिखाना भी है। गोपालशरण सिंह की "मानवी" के प्राक्कथन में श्री रघुवीर लिखते हैं "इन सब कथानकों को लेकर बहुत कुछ लिखा जा चुका है, बड़े-बड़े महाकवियों तक ने उन पर अपना काव्य-कौशल दिखाया है, एवं उनकी कृतियों के साथ मानवी की कविताओं की तुलना न कर यही कह देना उपयुक्त होगा कि मानव के कवि का अपना विशिष्ट दृष्टिकोण है और उसे कवि ने पूर्णतया निबाहा है, इन देवियों के प्रति मनुष्य समाज द्वारा दिखाई गई उपेक्षा या उन पर किये गये अन्यायों की वार्ता कवि के हृदय पर चोट कर गई है और इसी से संयमित रस में रहने वाला यह कवि भी क्षुब्ध होकर प्रथम बार विचलित हो गया। असंतोष ने विद्रोह का रूप धारण किया है, कवि की इस कृति में समाज के जटिल बंधनों के प्रति अनादर का भाव भी देख पड़ता है। यही कारण है कि जहाँ कालिदास भी राजा दुष्यंत के समान बहु-

---

[1] मानवी देवदासी, पृ० ३१ तथा ३४.
[2] वही, पृ ५
[3] साथ ही साथ रहती है अबलायें और बलायें।
शशि की कमनीय कलायें घन की घन घोर घटायें। (मानवी . परदे में, पृ० १६)

पत्नीक राजा को अपने नाटक का प्रधान चरित्र नायक बनाते नहीं हिचका, और शकुतला के प्रति दुष्यत की उपेक्षा को दुर्वासा ऋषि के शाप का परिणाम बताया, वहा मानवी के कवि ने उसी घटना को भी मनुष्य द्वारा स्त्री पर किए गए अत्याचारो के एक ज्वलत उदाहरण के तौर पर पेश किया है। 'मानवी' का कवि दुष्यत को क्षमा करने को तैयार नहीं है। किन्तु इतना सब होने पर भी कवि ने शकुन्तला के चरित्र चित्रण मे भारतीय नारीत्व के आदर्श को निभाया ही नहीं है उसे अक्षुण्ण भी बनाये रखा है।"[1] कालिदास ने वहत्पत्नीक राजा दुष्यत को आदर्श चरित्र नायक बनाने के लिये बहुत कुछ किया, यहातक कि दुर्वासा के शाप की भी कल्पना कर ली। किन्तु आधुनिक कवि दुष्यत को चेचक मानते हैं और इस पुरुष की कृतघ्नता और भोली प्रेममयी नारी के प्रति दुष्टता के रूप मे देखते हैं। सरल, कोमल शकुन्तला के प्रशान्त जीवन मे उद्धत दुष्यत आकर आग विसेर देता है और उसके सुख को अत कर देता है।[2] जो कुसुमकली के समान सजी और सवारी थी, विहगी के समान पुलकित थी, वही निष्ठुर और छली पुरुष के द्वारा म्रियमाण कर दी गई है।[3] उस सर्वनाश करने वाले पर चाहे शकुन्तला को क्रोध न आया हो, किन्तु आज का कवि अवश्य क्रुद्ध है। नारी के गौरव और व्यक्तित्व का प्रेमी वह तो शकुन्तला-नारी – से यहा तक कहता है

किस द्विविधा मे निखिल शून्य मे, प्यारी लटक रही हो
आत्म मान की महिमा करके तुच्छ धूलि मे लुठित
आज चली हो उन्मन सी तुम पग पग में कुठित
वचक पति से मिलने को ? हे निखिल विश्व की रानी !

[1] पृ० ६.

[2] अभी अभी तो थी वह निपट अयानी
सरल बालिका खिली कली यौवन की, फिर भी रानी
करती थी कुछ दिन पहले तक शैशव की मृदु क्रीडा
अतस्तल के निभृत विजन मे नव-यौवन की व्रीडा
छू न गई था उसको हा दुष्यत कहां से आये
चिर प्रशात आश्रम में ! अपने साथ कहा से लाये
नवोन्मत वैशाख्य माम की प्रथम तामसी झटिका ?
निर्मल पुण्य तपोवन में फैलाई क्या कुउम्फटिका
विकल मोह की ! आग लगाई क्यो शीतल वन में ।
(इलाचद्र जोशी-विजनवर्ती शकुन्तला, पृ० ८५)

[3] थी तू वन की कुसुमकली सी सुखी और स्वाधीन
किस निष्ठुर ने तुझे कर दिया अतिशय दीन मलीन । (मानवी—शकुन्तला, पृ० ८)
कानन में स्वच्छद विचरती विहगी पुलकित प्राण,
फसा वचक प्रेम जाल में है मलीन म्रियमाण । (मानवी : शकुन्तला, पृ० ८७)

सारे जग को अपना कर तुम क्यों कर हुई बिरानी
हृदय हीन प्रेम के कारण त्यागो उसकी माया,"[1]

और सहानुभूति वश अपना कर उस दु खिता के लिए बढा देता है[2]। इसी प्रकार पति परित्यक्ता, दुखिता दमयन्ती को देख कर कवि चाहता है कि वह अपने दु ख को भूल कर बाल्यकाल के स्वप्नों मे विहार करके पुनर्जीवन का निर्माण करे उसे अत्यन्त दुख है कि भोली बालिका नल के प्रपच पूर्ण फदे मे पडकर पीडित हुई।[3] सीता के पौराणिक कथानक को उठा कर कवि एक सामयिक सदेश देता हुआ दीखता है .—

"भारत लक्ष्मी बदीगृह में कब तक बद रहेगी ?
यह अन्याय दुष्ट दशमुख का कब तक सही सहेगी
कब तक दु सह दावानल में वह मृदुलता दहेगी"[4]

इस रूढि विरुद्ध और मानवतावादी दृष्टिकोण को लेकर आधुनिक कवि के सम्मुख मानवा की स्वतन्त्रता और समानता, जो आधुनिक युग की महत्वपूर्ण समस्या है, प्रमुख प्रश्न हो जाता है। इस युग का कवि नारी को मुक्त तो नहीं किन्तु पौरुषी अत्याचारो से मुक्त देखना चाहता है। उसकी नारी विद्रोहोन्मुखी के रूप मे आती है। गुरुभक्त सिह की मेहर का विवाह शेर अफगान से हो जाता है जो रमणी को कामपूर्ति की सामग्री मात्र समझता है। फलत. विवाह के पश्चात मेहर अपना समस्त व्यक्तित्व और स्वतन्त्रता खो बैठती है।[5] पति से मानवता का व्यवहार न पाकर उसका गर्व और आत्मगौरव जाग्रत

---

[1] विजनवती . शकुन्तला पृ० ६७

[2] आओ, प्यारी, आओ मुझको अपने गले लगाओ,
शोभित होओगी मेरे सग निखिल जगत की वधा
स्वच्छ, शुभ, चिर मेघ विमुक्ता, शरतकाल की सध्या (वही, पृ० ७०—७१)

[3] अपने ही रग में विभोर हो थी तुम मदन ताप से हीन
हाय अचानक मर्म सुकोमल कैसे तब हो पड़ा विलीन
कैसे नल के मदनानल से गलित हुआ तव कोमल प्राण
क्यो चिर निर्दय पुरुष जाति से तुम भी नहीं पा सकी त्राण
(विजनवती दमयन्ती पृ० ८४)

[4] गोपालशरण सिह—मानवी . सीता, पृ० ४६

[5] रमणी उसकी सामग्री थी कामपूर्ति की केवल।
मोहनी मेहर का जादू भी उस पर सका नही चल
उसकी वह सुन्दर बेगम रहती महलो के अन्दर।
पग कभी न रख पाती थी वह हरमसरा के बाहर।
कानो पर, मुँह पर, पग पर था उस दुखहिन के ताला।
सारी स्वतन्त्रता हर कर पिंजरे में पक्षी डाला।
(गुरुभक्त सिह—नूरजहाँ, ११ सर्ग, पृ० ८०)

हो जाता है और वह चिल्ला उठती है —

"हृदय नहीं क्या ललनाओं के पुरुषों की हैं कठपुतली ?
वे जो नाचा करें इशारे पर जब खींचे वे सुतली !!
सतत चेतनाहीन बनी वे सेवें गृह का कारागार ?
उन्हें स्वतन्त्र वायु सेवन का भी है मिला नहीं अधिकार ?
पुरुष करें सबकुछ मनमानी, इनकी हो जबान भी बंद ।
इनका हो विश्वास नहीं कुछ पशु भी फिरते रहे स्वच्छन्द ।।
+ + +
है कर्तव्य नारियों का कुछ तो उतना ही है अधिकार ।
बहुत हो गया हृदय हीन पति का पत्नी पर अत्याचार ॥
यों जिल्लत सहने से अच्छा है दे देना अपना प्राण ।
+ + +
नहीं नहीं यह कभी न होगा कभी न होने दूँगी मैं ।
मानवता विहीन पति का अन्याय न यों सह लूँगी मैं ।
मेरा मस्तक नहीं झुकेगा अविवेकी मद के डर से
मान सहित मैं मर सकती हूँ प्रेम अगर इंगित कर दे ॥
मर्यादा खोकर तलवा में नहीं किसी का चाटूँगी ।
पराधीनता की बेड़ी यह अपने हाथों काटूँगी ।[1]

गुप्त जी की "विधृता"[2] का स्वर भी इतना ही तिक्त और तीव्र है । कवि ने उसमें नारी के अधिकारों और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का जयघोष किया है । स्त्री स्वतन्त्रता की प्रतिनिधि यह नारी भागवत की 'विधृता' के समान मूक बलिदान नहीं करती, वरन् पति नामधारी पुरुष की विगर्हणा भी करती है । वह शब्दों में मधुरिमा घोलने वाली नारी की पूजनीयता घोषित करने वाले, स्वयं पाशविक रह कर भी आदियुग का स्वांग भरने वाले, पुरुष की दंभमयी लीला को कटु व्यंग्य में विधृत कर देती है ।[3] वह यह सहन करने को प्रस्तुत नहीं है कि जहाँ पुरुष का व्यभिचार क्षम्य हो वहीं स्त्री का अविश्वास का दोष समझा जाय ।[4] पुरुष

[1] गुरुभक्त सिंह—नूरजहाँ, सर्ग ११, पृ० ८७-८८

[2] मैथिलीशरण गुप्त—द्वापर

[3] कामुक चाटुकारिता ही थी क्या वह गिरा तुम्हारी,
तथा—
वृत्तियाँ की उन कुल स्त्रियों के प्रति अश्लील रहो तुम,
फिर भी श्रेष्ठिय होत्रा ठहरे क्यों न सुशील रहो तुम ?
मैं भूखों को भोजन देने जाकर भी दुःशीला,
ललना तो छलना है अहो धन्य तुम्हारी लीला ।
(वही, पृ० २१ तथा पृ० २५)

[4] अविश्वास हो अविश्वास हो नारी के प्रति नर का
नर के सौ दोष क्षमा हैं स्वामी है वह घर का । (वही, पृ० ११)

यदि गृहस्वामी है तो नारी भी उसकी अर्द्धांगिनी है, इतना ही नहीं, नारी और भी बढ़ी है —

एक नहीं दो दो मात्रायें नर से नारी भारी ।[1]

इस आधार पर वह स्पष्ट रूप से अपने अधिकारों की माग करती है —

"अधिकारो के दुरुपयोग का कौन कहां अधिकारी
कुछ भी स्वत्व नही रखती क्या अर्द्धांगिनी तुम्हारी ।"[2]

किन्तु इस युग के नारी-स्वातन्त्र्य की कल्पना की सीमा यहीं तक है। यहां पहुँच कर आदर्शवाद कवि को पीछे खींचने लगता है। इस युग का कवि नारी को क्रान्तिकारिणी के रूप मे नहीं देखता। उसने तो नारी को शील, लज्जा, कोमलता, नम्रता, सहनशीलता, सरल विश्वास और आत्मोत्सर्ग की देवी के रूप मे देखा है, जो उपालभ देना नहीं जानती।[3] इन विशेषताओं पर आघात करने वाले सक्रिय विद्रोह का स्वागत करने को कवि प्रस्तुत नहीं है। फलतः मेहरुन्निसा की विचारधारा पर ब्रेक लगाने के लिए उसकी सखी सुन्दरी नामक हिन्दू सखी उपस्थित हो जाती है,[4] और अन्त मे बेचारी मेहर यही स्वीकार करती हुई दीखती है :—

'करना क्षमा सखी दुर्बलता आखिर अबला नारी हूँ ।
मन पर नहीं विजय पाई है लड़ते लड़ते हारी हूँ ।
तूने मेरी आख खोल दी सोई थी अब जागी हूँ ।
तुमने रोक दिया गिरने से तुझको पा बड़भागी हूँ ।"[5]

और 'विधृता' 'आर्यनारी' की भाँति केवल मृत्यु मे ही एक ठिकाना जानकर आत्मोत्सर्ग के मार्ग का ग्रहण करती है।[6] वास्तव मे, इस युग का कवि दो "अबलाओं को अवकाश, कि वे करें निज जड़ता नाश"[7] कहता हुआ भी कुछ सांस्कृतिक, तथा कुछ कुछ रूढ़िवादी श्रृंखलाओं से अधिक बंधा हुआ है। वह अपनी नारी भावना मे भारतीय स्त्रियों की अवस्था मे सुधार की आकांक्षा रखता हुआ भी समता और स्वतन्त्रता का पूरा पूरा स्थान नहीं दे सका है।[8] उसकी धारणा तो यह है —

[1] वही, पृ० २१
[2] मैथिलीशरण गुप्त - द्वापर : विधृता, पृ० २३.
[3] अपनी सुध कुल स्त्रियां लेती नही ।
पुरुष न लें तो उपालभ देती नही ।
(मैथिलीशरण गुप्त—साकेत, सर्ग ५, पृ० १३३)
[4] गुरुभक्त सिंह—नूरजहां, सर्ग ११, पृ० ८८-९०
[5] वही, पृ० ९०-९१
[6] द्वापर, पृ० ३२.
[7] मैथिलीशरण गुप्त—हिन्दू : स्त्रियों के प्रति कर्तव्य, पृ० १२१.
[8] मैथिलीशरण गुप्त—पंचवटी, पृ० ३३, ३४, ६०.

"बनत स्वतन्त्र नारि त्यहि देखौ, तहँ व्यभिचार बढ़ावै ।
दंपति प्रेम रहत नहीं दुहूँ बिच, कुल मरजाद नसावै ।"[1]

तथा,

है विलास वासना लुभाती अहभाव है भाता,
नारिधर्म को त्याग रहित है समता भाव बनाता ।"[2]

उसकी दृष्टि में नारी का प्रमुख कार्यक्षेत्र गृह है,[3] और गृहलक्ष्मी होना ही उसके लिए परमावश्यक है ।[4] आधुनिक समता की भावना नारि को दृष्टि में मानो गृहरानी के उच्चतम पद का छोड़ कर दासत्व ग्रहण करना है, मानो त्याग कर गुजा लेना है ।[5] पति को ही पत्नी की गति[6] और पति प्रेम को ही उसके हृदय के एकमात्र गान[7] के रूप में देखनेवाला कवि स्वभावत ही 'आधुनिका' के सबन्ध में एक नीभत्स कल्पना कर लेता है ।[8] "चार नारी" नामक कविता म आधुनिक युगीय पत्नी, पुत्री, भगिनी और माता की हीनता पर दृष्टिपात करते हुए हरिऔध कहते हैं —

"जाति की कुल की धरम की, लाज की ।
बे तरह ले रही हैं फबतियां ।
हैं लगाती ठोकरे मरजाद को
देवियाँ हैं या कि ये हैं बीबियां ॥"[9]

[1] शिवरत्न शुक्ल —भरत भक्ति, सर्ग १।

[2] अयोध्यासिंह उपाध्याय—कल्पलता मनोवेदना, पृ० ९६

[3] पढ़ो लिखो पर सदा तुम्हारा घर ही क्षेत्र प्रधान रहे ।
(सचिता गृहलक्ष्मी पृ० १७२)

[4] गृहलक्ष्मी हो तुम्हें सदा इसका समुचित ध्यान रहे । (वही, पृ० १७०)

[5] क आप गृह रानी तज दुविधा चाहती चेरी ज्यो सुविधा ।
(मैथिलीशरण गुप्त—विश्ववेदना पृ० २२)
ख पुरुष सम अधिकार चाहैं जौन चचल तीय ।
गहनि गुजा छोड़ मुकता, राखि विवेक न हीय ।
(शिवरत्न शुक्ल—भरत-भक्ति, सर्ग १४, पृ० २६७)

[6] मेरी यही महामति है पति ही पत्नी की गति है ।
(मैथिलीशरण गुप्त भरत भक्ति, सर्ग १४, पृ० १०३)

[7] सदा तुम्हारे उर में गु जित पति प्रेम का गान रहे । (सचिता, पृ० १७१)

[8] पावन प्रेम प थ को तजकर प्रेमिकता से ऊबी,
लोक ललाम भूत ललना है लोलुपता में डूबी ।"
(कल्पलता मनोवेदना, पृ० ९६)
देखिए वही : शक्ति, पृ० ११४.

[9] वही, हमारी देवियो , पृ० १८७

वास्तव में अपनी कुटुंब कल्पना और नारी संबंधी 'देवी भावना' पर दैनिक जीवन मे परिवर्तन के द्वारा आघात पाकर ही कवि ऐसा कहता है :—

हम उन्हें तब देवियाँ कैसे कहें ।
बेतरह परिवार से जब तन गई ॥
\+ +
सब घरों को दे सरग जैसा बना ।
लाल प्यारे देवता जैसा जने ॥
अब रहे ऐसे हमारे दिन कहा ।
देवियाँ जो देवियाँ सचमुच बने ॥[1]

संस्कृति के पुजारी कवि की आकांक्षा तो यह है कि :—

रंग बदले तमाम दुनियाँ का । देवतापन न देवता छोड़े ॥[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस युग का मानवतावादी कवि नारी को मानवी रूप में देखना है, उस पर होनेवाले विविध सामाजिक अत्याचारों की निवृत्ति चाहता है, किन्तु साथ ही आदर्शवाद और भारत की प्राचीन संस्कृति का पल्ला पकड़े हुए नारी को "नारी", "कुल स्त्री" रूप में ही देख सकता है। उनकी भावना का आदर्श तो यही है :—

जो पौरुष का भाजन है कोई पुरुष ।
तो कुलबाला मूर्ति शांति की है कथित ॥[3]

राष्ट्रीय आत्मा की 'नर और नारी' नामक कविता में इस भावना का पूर्ण रूप से विकास हुआ है।[4] इस प्रकार की विचार धारा से प्रेरित होकर इस युग के कवि ने आधुनिक स्वातंत्र्य उपाधिकाओं पर प्रचुर व्यंग किए हैं। हरिऔध ने ऐसी नारियों की उक्तियों को अपने रीतिग्रन्थ रसकलस में हास्य रस के उदाहरण मे रखकर उन्हे उपहास का विषय बना दिया है।[5] 'ममता की ममता पसारने वाली सबला अबला' कवि की दृष्टि में परिवार से प्रेम नहीं करती, पूज्यों का आदर नही करती, पति की पूजा नही करती, पर्दे को फाड़ कर अपवाद की ओर ध्यान नही देती और असहनशीलता का परिचय देती है।[6] इन नारियों को देखते हुए कवि ने भविष्य के संबंध में स्थिर की है :—

---

[1] वही, पृ० १८८.
[2] वही, पृ० १८६.
[3] अयोध्यासिंह उपाध्याय—वैदेही-बनवास, सर्ग १४, पृ० १९३, तथा देखिए
जयशंकरप्रसाद—कामायनी : लज्जा, पृ० ८२ तथा
बलदेवप्रसाद मिश्र—साकेत-संत, सर्ग १, पृ० २१, तथा पृ० २६.
[4] चाँद, नवंबर १९३४.
[5] अयोध्यासिंह उपाध्याय—रसकलस, पृ० २९४.
[6] वही, पृ० २९६, २९७.

"रस बदन वारी बिरस ह्वै है
गुनन गहन वारो औगुन को गहिहै।
उपहास कै मद मद बिहँसन वारी
नेह गेह वारी नेह गेहता न लगि है।
हरिऔध पति परतीति मे न प्रेम रहै
राममयी महि में बिरागधारा बहिहै।
पिक बैनी पिक बैनता ते पुलकै है नाहि
मृगनैनी मृगनैनता से रूसि रहि हैं।"[1]

किन्तु साथ ही प्रगतिवादी युग म प्रस्फुटित होनेवाली नारी के क्रांतिकारिणी रूप की भावना का बीज भी हम इसी युग मे पाते हैं। 'निराला" की "तोड़ो तोड़ो तोडो कारा पत्थर का[2] आदि कविताएँ तथा तारनदेवी लली के ये शब्द —

"क्या शान्ति चाहते हो तुम,
गृहिणी गण को फुसलाकर।
बधन कैसे रख लोगे
उस खड़ भी उन्हें भुलाकर
जब प्रतिहिंसा का भाव
उठेगा झूम सभी हृदयों से।"[3]

नारी का पूर्ण स्वतन्त्र देखने की आकांक्षा की प्रथम अभिव्यक्ति हैं। किन्तु परिवर्त्तन युग के सब कवि इसे अपना न सके। अगले युग मे इस भावना का विकास देखा जायगा।

---

[1] वही, पृ० २९१.
[2] सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला"—अनामिका
[3] तारनदेवी लली— जागृति : जागृति, पृ० ११.

अध्याय ८

रूपकात्मक (प्रतीकात्मक) भावना

हम आधुनिक कवियो द्वारा सीधे शब्दों मे अभिव्यक्त नारी भावना को देख चुके हैं। भावना की इस सीधी अभिव्यक्ति के अतिरिक्त एक रूप प्रतीकात्मक भी है। प्रतीकों और रूपको मे भावना को प्रगट करने की प्रवृत्ति मानव मे अत्यत प्राचीन है। फलतः कवि जिन वस्तुओं को नारी रूप प्रदान करके देखता है तो वह मानों नारी के प्रतीक रूप में ही उन्हे पहचानता है। उस समय कवि के मस्तिष्क मे प्राय वही विचारधारा रहती है जो किसी नारी की कल्पना की सूत्रधार होती। वैदिक कवि ने जब ऊषा के सम्बन्ध मे कहा था "विश्व जीव चरसे बोधयती विश्वस्य वाचमाविदन्यनायो."[1] तो उसका मस्तिष्क पग पग पर नवजीवन सुधा पान कराने वाली अनुरागमयी नारी की कल्पना से अधिकृत नहीं था, यह कहना कठिन है। इसी प्रकार जब प्राचीन आचार्यों ने अपनी दार्शनिक विवेचनाओ के बीच परमात्मा को पर पुरुष मानते हुए जीवात्माओं को उसकी वधुओ के रूप मे माना तो वे नारी के पूर्ण आत्मसमर्पण और निश्चल प्रेम भावना से प्रेरित नही थे, यह कहना एक गलती होगी।

अस्तु, हिन्दी के आधुनिक काव्य मे भी हम बहुत से ऐसे रूपक और प्रतीक पाते हैं जो परोक्ष-रीति से उनकी नारी भावना के परिचायक हैं। स्वाभाविक है कि उनकी मूल नारी भावना यहा पर पीठिका रूप मे रही है।

इस परोक्ष अभिव्यक्ति को प्रमुख रूप से तीन क्षेत्रों मे देखा जा सकता है : १ रहस्यवाद के क्षेत्र मे २. प्रकृति वर्णन के क्षेत्र मे और ३ राष्ट्रीय भावना के क्षेत्र मे।

१. रहस्यवाद के क्षेत्र मे रहस्यवादी कविता परिवर्तन युग की ही विशेषता है। हमारे अध्ययन काल मे न तो सधि युग मे और न प्रगति युग मे इसने इतना महत्व पाया।

सौन्दर्य और सुख की भावना से प्रेरित होकर मनुष्य के चितनशील व्यक्तित्व ने अपने अतर्जगत की सृष्टि की है जिसकी अगर आकाक्षा है उस परोक्ष सत्ता की अनुभूति और दर्शन जिसकी शक्ति का परिचय उसे पग पग पर मिलता है। अनेक साधनों अनेक रूपों तथा अनेक भावो से वह उसका सामीप्य प्राप्त करना चाहता है। यहाँ पर दार्शनिक कल्पना और तर्क से काम ले सकता है किन्तु रहस्यवादी एक रागात्मक सबध को लेकर चलता है। 'अखड चेतन से तादात्म्य का रूप केवल बौद्धिक भी हो सकता है पर रहस्यानुभूति मे बुद्धि का ज्ञेय ही हृदय का प्रेम हो जाता है।'[2] आत्मा और परमात्मा

---

[1] ऋग्वेद १, ६२, ९.

[2] महादेवी वर्मा—दीपशिखा "चितन के कुछ क्षण" पृ० १०.

की यही पारस्परिक प्रणयानुभूति रहस्यवाद है।

यह रहस्यानुभूति अपने में अलौकिक है किन्तु उसकी अभिव्यक्ति लौकिक रही है। रहस्यवादी अपनी अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए जिन रूपकों और प्रतीकों का आश्रय लेता है वे दृश्यजगत के ही होते हैं। फलतः कभी ईश्वर के अपार सौंदर्य पर मुग्ध होता हुआ, कभी उसके वैभव से आतंकित होता हुआ, कभी उसके अव्यक्तिगत स्वरूप की अनुभूति करता हुआ, प्रेमाभिभूत रहस्यवादी उससे सम्बंध स्थापित करता है। ये सम्बन्ध मानवीय ही होते हैं—कभी पिता पुत्र का, कभी स्वामी सेवक का, कभी माता और वत्स का और कभी पति पत्नी का। रहस्योपासक में जो आत्म समर्पण की प्रबल आकांक्षा होती है उसकी पूर्ति माधुर्यमूलक प्रेम- पति-पत्नी भाव में ही होती है। इस सम्बन्ध की स्थापना के लिए परमतत्व और आत्मा में क्रमशः पुरुष और नारी भाव का आरोप किया गया है। इस भाव के आधार में आत्म-समर्पण की चेतना कार्य कर रही है। जिस प्रकार नदी समुद्र में मिल कर अपना नाम रूपादि सीमाओं का त्याग अथाह हो जाती है, उसी प्रकार आत्मा भी परम पुरुष में अपने को खोकर मुक्त होती है। भारतीय नारी का भी यही आदर्श है। नारी अपना कुल गोत्र आदि परिचय छोड़ कर पति को स्वीकार करती है और अपने स्वभाव तथा अटल प्रेम के कारण पति के निकट अपने को पूर्णतः समर्पित करती हुई उस पर अधिकार प्राप्त करती है। उसकी सीमायें लुप्त होकर विस्तीर्ण हो जाती हैं।

अस्तु, रहस्यवादी की आत्मा नारी रूप में सामने आती है। रहस्यवादी कवि विरह और मिलन के गीतों में उस प्रतीक की रूपरेखाओं में अनुरागमय रंग भरता है। कबीर आदि संत कवियों ने अपनी साधना के केन्द्र-बिंदु इस मधुर प्रेम का बृहत् वर्णन किया था। आधुनिक युग में इस क्षेत्र में अग्रगण्य नाम हैं महादेवी वर्मा, रामकुमार वर्मा, हरिकृष्ण प्रेमी, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', चंद्रभानु सिंह आदि।

आत्मा चिरन्तन प्रिय की सुहागिनी के रूप में उपस्थित होती है।[1] किन्तु उसके लिए आज मिलन एक स्वप्न हो गया है। संसार में आने पर वह अपने और पर पुरुष के संबंध को भूल गई थी किन्तु एक दिन पूर्व स्मृति उसके हृदय में पुनः जाग उठी, न जाने —

"किस लाल लाल मदिरा से
भर गया हृदय का प्याला"[2]

एक कौतूहलपूर्ण, पीड़ामय कंपित अनुभूति से उसका हृदय भर जाता है।[3] वह मुग्धा

[1] प्रिय चिरतन है सजनि,
क्षण क्षण नवीन सुहागिनी मैं। (महादेवी वर्मा—सांध्यगीत, पृ० ५१)
[2] हरिकृष्ण प्रेमी—अनंत के पथ पर, पृ० १, २.
[3] कंपन सा, प्रेम पुलक सा, शुचि प्रणय ग्रंथि बंधन सा,
व्याकुलता, विरह व्यथा सा, मृदु मधुर अधर चुंबन सा, (वही, पृ० २, ४)

जान नही पाती कि किसके हृदय मे आ जाने से आज उसकी वीणा मौन हो गई है।[१] अभी वह यह नही जानती कि यह मधुर स्मृति किसकी है।[२] किन्तु प्रणय की तीव्रता के साथ किसी के अभाव की चेतना स्पष्ट होती जाती है[३] और पूर्व मिलन की स्मृति वेदना का केन्द्र हो जाती है :—

"जीवन है उन्माद तभी से निधियाँ प्राणो के छाले,
माँग रहा है विपुल वेदना के मन प्याले पर प्याले।[४]

नारी के जीवन मे प्रेम, वियोग और वेदना का कुछ अनन्य सयोग है। वियोग मे प्रथम मिलन की स्मृति ही एक सबल रह जाती है जिसका इतिहास विरहिणी नित लिखती है।[५] सध्या समय नीडो की ओर जाते विहगों को देख मिलन महोत्सव का मधुमय चित्र उसके नेत्रों मे उपस्थित हो जाता है,[६] और .—

"सब सध्या छाया मे जब खोते तपन हृदय की
कर याद अचानक रोती मै भूले हुए निलय का।"[७]

जब समस्त ससार सोता है तो विरहिणी आखो मे रात बिताती है, जब सब अपने नीडो मे विश्राम करते हैं तो वह नदी के तीर पर भटकती है, जब वसुधा पर बसत आता है तो उसके हृदय मे पीडा होती है, चादनी की मुस्कराहट उसकी व्याकुलता बढा देती है। इस विकल अवस्था मे —

"जब शशि की ओर निरख कर होता सब जग मतवाला,
तब व्यथा हलाहल से क्यों भर देती मेरा प्याला।
बन जाती सर्प मुझी को क्यो मेरे उर की माला"[८]

---

[१] आज क्यो तेरी वीणा मौन।
शिथिल शिथिल तन थकित हुए कर, स्पदन भी भूला जाता उर
मधुर कसक सा आज हृदय में आन समाया कौन?
(महादेवी वर्मा—नीरजा, पृ० ९, ५)

[२] क्या जाने नीरव नभ मे किसका आमत्रण आता
उर लक्ष्यहीन पक्षी सा किस ओर उडा है जाता (अनत के पथ पर, पृ० ४, ४)

[३] किसका अभाव मानस में सहसा शशि सा आ चमका
इन सरल तरल नयनो में किसकी उज्ज्वल छवि छाई
किसने मेरे प्राणो में अपनी तस्वीर बनाई। (वही, पृ० ६, १, २)

[४] महादेवी वर्मा—नीहार मिलन, पृ० ४

[५] मैं अनत पथ में लिखती जो सस्मित सपनों की बाते
उनको कभी न धो पायेंगी अपने आँसू से रातें। (आधुनिक कवि, १ पृ० ९)

[६] हरिकृष्ण प्रेमी—अनत के पथ पर, पृ० २४, ३

[७] वही, पृ० ५२, १.

[८] वही, पृ० ५५.

वियोगिनी "प्रियतम की थाती" लिए हुए आशा और निराशा के झकोरों में जीवित है। वह अपनी सारी निधि इसलिए समेटे है कि :—

"यदि प्रियतम आ जाता तो मैं हार बना पहनाती।"[1]

उसकी अमर आकांक्षा यही है :—

"आँसू लेते वे पद पखार।
हँस उठते पल में आर्द्र नैन
घुल जाता ओठों से विषाद
छा जाता जीवन में बसंत
आँखें देतीं सर्वस्व वार।[2]

और अंतिम लक्ष्य है केवल मिट जाना, प्रिय में अपने को खो देना, क्योंकि प्रेम के मार्ग में जीवन देना ही जीवन पाना है।[3]

इस अनन्य प्रणयिनी के अलौकिक प्रेम की विविध भावानुभावमयी अभिव्यक्ति हम आधुनिक काव्य में पाते हैं। वह स्नेह को जीवन की ज्योति मानती है[4] और वेदना का वरदान।[5] विरह मिलन की सूचना तो है ही,[6] साथ ही उसमें प्रिय की ही भावना निहित है इसलिए —

'विरह का युग आज दीखा, मिलन के लघु पल सरीखा,
दुःख सुख में कौन तीखा, मैं न जानी औ न सीखा।
मधुर मुझको हो गए सब मधुर प्रिय की भावना ले।"[7]

वह कभी तो पल पल के पृष्ठों पर आँसू से संदेश लिख कर प्रिय तक पहुँचाने का प्रयत्न

---

[1] अनंत के पथ पर, पृ० ६६
[2] महादेवी वर्मा —नीहार जो तुम आजाते एक बार, पृ० ९४
[3] प्रियतम के चरणों पर ही अपना सर्वस्व चढ़ाना
जीवन देना ही तो है कहलाता जीवन पाना।
है लघु लालसाओं का अपना अस्तित्व मिटाना। (अनंत के पथ पर, पृ० ६९)
[4] बुझते जीवन दीपक को भर स्नेह जला जाता है।
(वही, पृ० ६, १)
[5] एक करुण अभाव में चिर तृप्ति का संसार संचित
एक लघु क्षण दे रहा निर्वाण के वरदान शत शत,
पा लिया मैंने किसे इस वेदना के मधुर क्रय में।। (नीरजा, पृ० १४, ७)
[6] तू जल जल जितना होता क्षय, वह समीप आता छलनामय। (वही, पृ० ३१, १४)
[7] महादेवी वर्मा -साध्यगीत, पृ० ३१, तथा साध्यगीत, पृ० १७.

करती है,[1] और कभी कह उठती है :—

"अलि कहाँ सदेश भेजूँ मैं किसे सदेश भेजूँ
+ + +
नयन पथ से स्वप्न मे मिल,
प्यास में घुल साध मे खिल,
प्रिय मुझी मे खो गया अब दूत को किस देश भेजू ।[2]

वह कभी स्वप्न दर्शन की प्रतीक्षा मे पिक को चुप कराती है,[3] कभी रात भर बाट जोहती हुई अपने प्रिय को पहचान नही पाती,[4] किन्तु दूसरे ही क्षण उस ऐक्य का अनुभव करती है जो परिचय के लिए अवकाश नही रखता,[5] वरन परिणीता का गर्व होता है।[6] वह कभी शृगार करके प्रिय की व्याकुल प्रतीक्षा करती है[7] और कभी मिलन की आकाक्षा लिए अभिसार के लिए चल देती है। इस अभिसारिका का मार्ग अत्यत कठिन है :—

"वह प्रिय दूर पथ अनदेखा
श्वास मिटाते स्मृति की रेखा,
पथ बिन अत पथिक छायामय
साथ कुहुकिनी रात री।[8]

---

[1]कैसे सदेश प्रिय पहुचाती !
दृग जल की लित मसि है अक्षय,
मसि प्याली, झरते तारक द्वय,
पल पल के उड़ते पृष्ठो पर,
सुधि के लिख श्वासों के अक्षर
मैं अपने ही बेसुधपन में
लिखती हू कुछ, कुछ लिख जाती। (नीरजा, पृ० ४६ २२)

[2]महादेवी वर्मा—दीपशिखा ५५.

[3]नीरजा · पृ० ३३, १५ "प्रिय मेरा .....मधु घोल"

[4]पथ देख बिता दी रैन, मैं प्रिय पहचानी नही। (नीरजा, पृ० ३४, १६)

[5]तुम मुझमें प्रिय फिर परिचय क्या।
तारक में छवि प्राणो में स्मृति,
पलको में नीरव पद की गति.
लघु उर में पुलको की स सृति,
भर लाई हूँ तेरी चचल और करूँ जग में स चय क्या। (नीरजा, पृ० २४, १२)

[6]तुमको पहचानू क्या सु दर।
जो मेरे सुख दुख में उर्वर,
जिसको मैं अपना कह गर्वित, (नीरजा, पृ० ५३, २५)

[7]सांध्यगीत, पृ० ११—१२

[8]वही, पृ० ७१.

किन्तु वह विचलित नही है, क्योंकि उसके पास अटल विश्वास की शक्ति है और असीम प्रेम की प्रेरणा। प्रिय भी यदि दूर हटने का प्रयत्न करे तो भी वह अपने पथ से विचलित नहीं होगी।[1] इतना ही नही :—

हास का मधु दूत भेजो,
रोष की भ्रू-भंगिमा पतझार को चाहे सहेजो।
ले मिलेगा उर अचंचल,
वेदना जल, स्वप्न शतदल।[2]

अभिसारिका के लिए लोक-लाछन और लज्जा भी कुछ कम नहीं है किन्तु लौटने के लिए स्थान नही है। उसके लिए तो प्रिय के चरण ही शरण है।[3] मिलन का समय भी अत्यत परीक्षा का है क्योंकि व्रीडा पूर्ण सयोग मे बाधा हो जाती है।[4] किन्तु वह एक क्षणिक बाधा है। प्रिय के समीप उसकी समृति-भीति भाग जाती है और वह पूर्ण रति-सुख का अनुभव करती है।[5]

इस प्रकार रहस्यवादी की आत्मा एक नारी के रूप मे आती है। इसमे कामायनी की श्रद्धा का-सा अविचल प्रेम है, आत्म समर्पण की आकाक्षा है, दृढता और गर्व है और साथ ही दुख को भी सुख बना लेने की शक्ति है।

२ प्रकृति वर्णन के क्षेत्र मे · प्रकृति के सबध मे मानव का जो सौदर्य भाव है वह उस पर चेतन व्यक्तित्व के आरोप और साहचर्य मे विकसित होता है। आधुनिक छायावादी काव्य की यह एक प्रमुख विशेषता है। छायावादी कवि भारतीय प्रकृतिवाद, जिसमे प्रकृति दिव्य शक्तियो की प्रतीक, और सजीव जीवन सहचरी बनकर आती है, की ओर आकर्षित है। वैदिक कवियो की ऊषा, उर्वशी, पृथ्वी, रात्रि आदि की नारी रूप मे कल्पना आधुनिक कवि की प्रेरणा है। आधुनिक परिस्थितियो मे वैदिक भावना का अनुकरण तो सभव नहीं है, फिर भी प्रकृति मे चेतन नारीत्व का आरोप करके, तथा उसमे वही बाह्य और आतरिक सौदर्य देखकर जो उसने नारी मे पाया है, आधुनिक कवि ने हिन्दी साहित्य मे एक नवीनता की सृष्टि की है। सत्य तो यह है कि आधुनिक कवि की नारी कल्पना ही नैसर्गिक है। कवि की प्रेयसी स्थूल पार्थिव रूप की राशि नहीं है वरन प्रकृति के सचित कोष से निर्मित नैसर्गिक सौन्दर्य की प्रतिमा है। भावी पत्नी की रूप-कल्पना मे निमग्न पत कहते है :—

---

[1] **वह रूप छिपा दे अपना मैं कभी निराश न हूँगी**
इस भाति भटकती फिरकर मैं इसे प्राप्त कर लूगी।
(अन त के पथ पर, पृ० ३८, २)

[2] **दीपशिखा, ५**

[3] **सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" – गीतिका, पृ० ६, ६०**

[4] **वही, पृ० ३१, २८.**

[5] **वही, पृ० ४४, ४१.**

"अरुण अधरों का पल्लव प्रात मोतियों का हिलता हिम हास,
इन्द्रधनुषी पट से ढक गात बाल विद्युत का पावस लास,
हृदय में खिल उठता तत्काल अधखिले अंगों का मधुमास,
तुम्हारी छवि का कर अनुमान प्रिये प्राणों की प्राण।[1]

इस प्रकार नारी में प्रकृति को देखने के पश्चात् कवि सहज ही प्रकृति में नारी को देख लेता है। यहाँ उसकी प्रकृति भावना नारी भावना में ही संचालित है। जो रूप-सौन्दर्य और भाव-सौन्दर्य नारी में देखा गया था वही अप्सरा, देवी, प्रिय और माता के रूपों में प्रतिष्ठित प्रकृति में भी देखा जाता है।

"रूप रश्मि" के परिचय में रामकुमार वर्मा लिखते हैं "रूप रश्मि में एक भावना और है वह आत्मसमर्पण की। हृदय में किसी से मिलने की आकांक्षा रहती है। उस समय मुझे ऐसा मालूम होता है जैसे मैं साक्ष्य शास्त्र का पुरुष बन गया हूँ और अपने चारों ओर की प्रत्येक वस्तु-तना, कली, लहर, सन्ध्या, पवन, प्रकृति बन कर मेरी प्रेयसी हो रही है।" इस कथन से स्पष्ट है कि कवि अपने चारों ओर के प्राकृतिक उपकरणों में एक मानवीय रूप देखता है जिसके साथ एक रागात्मक सम्बन्ध की स्थापना करने के लिए उसका हृदय आकुल रहता है।

आधुनिक कवि की सौन्दर्य दृष्टि प्रकृति में विविध रूपों और विविध भावों का दर्शन करती है। चन्द्रभानुसिंह ने अपने उपवन में शृंगार, स्वप्न, अभिनय की उस अलबेली नायिका को पाया है जो निपट भोला है और कौतुक शीला है।[2] उमाशंकर वाजपेई निशा को "अनुरागमयी गजगामिनी" और चाँदनी का 'चल चितवनि' "सेत बरन सुकुमारि" के रूप में देखते हैं।[3] महादेवी वर्मा वसन्त रजनी में मृदुचितवन से मुक्ताहल अभिराम बिछाने वाली वधू का देखना है।[4] निराला सरस शृंगारमयी दृष्टि से वायु में प्रेममयी और लज्जाशीला नवागना,[5] पृथ्वी में पूर्ण युवती,[6] रात्रि में प्रीति और लाज के द्वन्द्व-सी पीड़ित अभिसारिका[7], 'जुही की कली' और 'शेफालिका'[8] में यौवनोन्मत्त प्रेमिका को देखते हैं। शान्तिप्रिय द्विवेदी सुमनबाला की चितवन के घातक प्रभाव को नव प्रस्फुटित यौवन-

---

[1] सुमित्रानन्दन पंत -गुंजन : भावी पत्नी के प्रति, पृ० ३३, ३४.
देखिए-रश्मि : आँसू, पृ० २०.
[2] चन्द्र भानु सिंह —अर्चना, स्वप्न-शृंगार, पृ० ८३, ८४.
[3] उमाशंकर वाजपेयी—वृज-भारती : निशा, पृ० २९, ३०, चांदनी.
[4] नीरजा, पृ० ३, २.
[5] अनामिका : तटपर, पृ० ४९, ५०.
[6] वही : नर्गिस, पृ० १८७.
[7] परिमल—गीत, पृ० ८२.
[8] परिमल.

पुष्प पर देखते हैं।[1] पंत 'छाया' को निर्जन की इस क्षण भर की संगिनी के रूप में पा लेते हैं जो सुंदर है, तरुणी है और प्रेम-लालसा का दान लिए हुए है।[2] नगेन्द्र उषा को राग की देवी और पति परायणा के रूप में पाते हैं।[3] वागीश्वर विद्यालंकार निर्झर को विरह में झर-झर आंसू बरसाकर किन्ही चरणों में पहुँचाती हुई बाला के रूप में देखते हैं।[4] गुरुभक्त सिंह ने नदी के इतिहास में कन्या के विवाह के चित्र को पाया है।[5] 'लाजवती' को उन्होंने वास्तविक सती पाया है जो "पर पाणि परस" से सिहर उठती है,[6] और वह सती है जिसे अपनी आबरू ही सबसे अधिक प्यारी है। नरेन्द्र प्रकृति प्रिया के अ-बंकिम विलास में अंगजंग का नवोल्लास देखते है।[7]

प्रकृति का नारी व्यक्तित्व न केवल सौन्दर्यमय है वरन वात्सल्यपूर्ण और कल्याणयुक्त भी है। इस प्रकार की भावना का विकास करता हुआ आधुनिक छायावादी कवि अंग्रेजी के १९ वीं शताब्दी के कवियों की प्रकृति भावना से थोड़ा बहुत अवश्य प्रभावित हुआ है। वर्डस्वर्थ आदि प्रकृतिप्रेमी कवियों ने प्रकृति के सौंदर्य से अभिभूत होते हुए उसका कल्याणकारी तथा सुखद प्रभाव मानव स्वभाव तथा चरित्र पर देखा था। भारतीय मस्तिष्क नारी के वात्सल्यमय रूप की ओर विशेष रूप से आकर्षित रहा है, इसलिए हिन्दी के छायावादी कवियों ने प्रकृतिरूपी नारी के सत् प्रभाव में उसके वात्सल्यरूप का सामंजस्य कर दिया है। इस संबंध में वह ऊषा, पृथ्वी आदि संबंधी वैदिक भावना से भी प्रभावित कहा जा सकता है। महादेवी रात्रिरूपसि के घन केश पाश पर मुग्ध होकर कहती हैं :—

"इन स्निग्ध लटों से छा दे तन
पुलकित अंकों में भर विशाल,
मुख सस्मित शीतल-चुम्बन से
अंकित कर इसका मृदुल भाल।
दुखरा दे ना बहला देना
यह तेरा शिशु जग है उदास।[8]

इसी भावना का विकास करते हुए राजेश्वर गुरु ने प्रकृति का एक अज्ञात शक्ति और माँ

---

[1] शांतिप्रिय द्विवेदी—हिमानी—पृ० १५, ४.
[2] सुमित्रानंदन पंत—युगांत छाया पृ० ३७, २४
[3] नगेन्द्र—वनबाला—ऊषा, पृ० ८, ९.
[4] वागीश्वर विद्यालंकार—नीराजना निर्झर, पृ० ४९—५०.
[5] गुरुभक्तसिंह कुसुम—कुंज नदी, पृ० ७
[6] वही, : लाजवती, पृ० १०
[7] वही : ओस, पृ० २,२.
[8] नरेन्द्र शर्मा—कर्णफूल स्वर्णबंध, पृ० १६—१७.
[9] नीराजना, पृ० २३ ११.

के रूप में देखा है, जिसके अक्त पयोधर "चिर तृषा भरे शिशु अधरों पर धर जाते हैं मधुभरी धार," नीला आकाश जिसका प्रसार है, पत्तों में जिसका अमर गान है।[1] दार्शनिकता की ओर झुकती हुई महादेवी प्रकृति को "चित्रांगिनी" के रूप में लाती हैं[2] प्रकृति का यह चित्र "जादूगरनी" (हरिकृष्ण प्रेमी) के चित्र के बहुत अधिक समीप है।

इस प्रकार आधुनिक कवि की प्रकृति उस नारी का प्रतिबिंब है जो भोली है, सुंदर है, प्रेममयी है, विरह और मिलन जिसके जीवन के तट हैं, लज्जा और सतीत्व जिसकी निधि हैं। वह कल्याणी है और एक महान शक्ति है। प्रकृति के संबंध में यह भावना पूर्ण रूप से आधुनिक कवि की नारी-भावना के आधार पर निर्मित है, और इसी कारण परोक्ष रूप से उसकी नारी भावना पर प्रकाश डालती है।

३. **राष्ट्रीय भावना के क्षेत्र में**.—यदि हम वैदिक आर्यों की भावना का अध्ययन करते होते तो माता के रूप में आने वाली 'पृथ्वी' संबंधी विचार धारा को पिछले वर्ग में रख सकते थे। किन्तु आधुनिक युग में राष्ट्रीयता के प्रसार के फलस्वरूप देश—मातृभूमि-का महत्व दूसरे ही ढंग का हो गया है। आज पृथ्वी केवल मिट्टी या बीजों की जन्मदाता के रूप में नहीं आती वरन् प्रत्येक देशवासी को माता के रूप में देखी जाती है। संक्रान्ति युग में हम देख चुके हैं, कि जन्मभूमि संबंधी मातृ भावना का सूत्रपात हो गया था। इस भावना का विशेष विकास परिवर्तन युग में हुआ।

जन्मभूमि को आधुनिक कवि वरद और पूज्य माता के रूप में देखते हैं। इसको लेकर कवि बाह्य सौंदर्य के प्रति आकर्षित नहीं है, वरन् उसकी शक्ति के प्रति विशेष सजग है। भारत माता के बाह्य रूप का जब कवि स्मरण करता है तो इतना ही कहता है :—

"मां तव चरणों में रखकर निज सर्वस्व समर्पित करता।
मस्तक पर गिरि नीर चढ़ाकर कानों में कल कल स्वर भरता॥
+ + +
दोनों बाँहों में नव बल का ओज उमड़ता है क्षण क्षण में।
पूर्व और पश्चिम को झलका रहा रंग जो समरांगण में॥"[3]

या,

"हिमगिरि का मुकुट श्वेत, आंचल में श्याम खेत,
सागर शोभा समेत मेखला पिन्हाता।
गंगा यमुना अपार जीवन प्रद स्तन्य धार,
खानों का रत्नदार वैभव बतलाता।"[4]

उसका अपार सौंदर्य और शक्ति अन्नपूर्णा की सी है। दिशायें उसकी भुजायें हैं, मुख पर

---

[1] राजेश्वर गुरु 'मानव'—शेफाली—गीत, ९८, पृ० ३७—३५.
[2] गीत—चांद, नवम्बर, १९३७.
[3] चन्द्रभानुसिंह—अर्चना : मां, पृ० ११८.
[4] रूपनारायण पाण्डेय—पराग : "गीत"

"तिलक" बाल गंगाधर तिलक की शोभा है, शशि मुकुट में 'राम-कृष्ण" रूपी रत्न है, 'कर्ण' कर्णफूल होकर सुशोभित है, 'वाल्मीकि' 'व्यास' और कालिदास कंठहार हैं, 'प्रताप और 'चन्द्रगुप्त' भुजबंद हैं।[1] कवि ने भारत को यह रूप इसलिए प्रदान किया है कि वह भारतवासियों के कल्याण और रक्षा का आकांक्षी है। और माता के सपूतों को वह उसकी शोभा और शृंगार मानता है। जिस प्रकार माता शिशु को उत्पन्न करने और पालन करने के साथ-साथ सन्मार्ग पर भी अग्रसर करती है, दुःखों में उसका त्राण भी करती है, और उसके अपराधों को क्षमा करती है, उसी प्रकार की आशा कवि जन्मभूमि से भी करता है। दीन शिशु के समान पुकार कर वह कहता है —

मृतक समान अशक्त विवश आंखों को मीचे
गिरता हुआ विलोक गर्भ से हमको नीचे,
करके जिसने कृपा हमें अवलंब दिया था,
पालन पोषण और जन्म का कारण तूही,
वक्षस्थल पर और कर रही धारण तू ही,
× × ×
क्षमामयी, तू दयामयी है, क्षेममयी है,
सुधामयी, वात्सल्यमयी, तू प्रेममयी है,
विभवशालिनी, विश्वपालिनी, दुखहर्त्री है,
भयनिवारिणी, शांतिकारिणी, सुखकर्त्री है,
हे शरणदायिनी देवि, तू करती सबका त्राण।
हे मातृभूमि संतान हम, तू जननी तू प्राण है।।"[2]

इस गौरवान्वित मातृभूमि की कल्पना करता हुआ कवि उसे साक्षात दुर्गा रूप में देखता है —

वरद हस्त हरता है तेरे शक्ति शूल की सब शंका
रत्नाकर रसने, चरणों में अब भी पड़ी कनक लंका।
सत्य सिंह वाहिनी बनी तू विश्वपालिनी रानी।[3]

इस प्रकार जो गौरवमयी और पूजात्मक भावना आधुनिक कवि की माता के संबंध में हम देख चुके हैं उसी का आरोप जन्मभूमि पर भी पाते हैं।

उक्त विशिष्ट क्षेत्रों के अतिरिक्त आधुनिक कवि ने कुछ अन्य जड़-वस्तुओं तथा अरूप-विशेषताओं को भी नारी रूप में मानवीकरण किया है। जिस प्रकार वैदिक कवि ने वाक् और सरस्वती की कल्पना नारी रूप में की थी उसी प्रकार आधुनिक कवि 'कविता' की कल्पना नारी रूप में करता है। "निराला" कविता सुंदरी का चित्रण इस प्रकार करते हैं —

[1] वही, मातृभूमि, पृ० २४
[2] मैथिलीशरण गुप्त—स्वदेश संगीत . मातृभूमि पृ २४-२६.
[3] वही—मंगलघट : मातृभूमि, पृ० ३५.

शिला खड पर बैठी वह नीलांचल मृदु लहराया था,
विकसित असित सुवासित उड़ते उसके—
कुचित कच गोरे कपोल छू छू कर
लिपट उरोजो से भी वे जाते,
थपकी देकर बड़े प्यार से इठलाते थे,
शिशिर विदु रस सिधु बहाता सु दर,
अगना अग पर गगनांगन से गिर कर ।
वह कविता ही थी और साज था उसका बस शृ गार !
+ + +
भरा हुआ था हृदय प्यार से उसका
उस कविता का,
अग अग से उठी तरगें उसके ।[1]

दूसरे स्थान पर "निराला" प्रेयसी मे कविता का सामजस्य करते हुए कहते है :—

"मेरे इस जीवन की तू सरस साधना कविता,
मेरे तरु की है तू कुसुमित प्रिये कल्पना लतिका,
मधुमय मेरे जीवन की प्रिय है तू कमल कामिनी,
मेरे कुज कुटीर द्वार की कोमल चरण गामिनी ।"[2]

और उसकी स्वतत्र गति के लिए विकल हैं —

"प्रिये छोड क. बधनमय छदो की छोटी राह ।
गजगामिनी, वह पथ तेरा सकीर्ण, कटकाकीर्ण
कैसे होगी उससे पार"[3]

कविता मे नारी का रूप ही नही वरन् प्रेरणा शक्ति भी कवि ने पाई है :—

"सकेत मात्र से तेरे हैं प्रलय ठाठ ठन जाते,
ललकार तुम्हारी सुनकर कायर नाहर बन जाते ।[4]

इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिक कवियों ने विविध चेतन और अचेतन वस्तुओं पर नारीत्व का आरोप किया है । यह आरोप करते समय वे उन्हीं भावनाओं से प्रेरित हैं जो नारी के बाह्य और आतरिक सौदर्य के सबध मे उनकी रही है, जिन्हे हम पीछे विस्तार से देख चुके हैं । जो सौदर्यमयी, अनुरागमयी और गौरवमयी भावना नारी के सबध मे हम देख चुके हैं, वही हमे इन नारी रूपिणी वस्तुओं मे भी मिलती है । बहुत कम स्थल ऐसे होगे जहा हम अपने मूल सिद्धातो का आरोप इस प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति पर न कर सके । फलत. कवियो को यह आरोप प्रवृत्ति उनकी नारी भावना की अभिव्यक्ति मे एक अवलम्ब हो जाती है ।

[1] सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" परिमल, पृ० १०५-०६.
[2] अनामिका . प्रिया से, पृ० ४२.
[3] वही, . प्रगल्भ प्रेम, पृ० ३४.
[4] रामेश्वरी देवी "चकोरी"—किशलय : कविते, पृ० २६.

अध्याय ६

परिवर्तन युग में मध्ययुगीय नारी-भावना की परंपरा

भक्तिकाल और रीतिकाल वैराग्यमूलक और शृंगारमूलक नारी भावना परिवर्तन युग में भी अपने सूत्र को, यद्यपि अत्यन्त सूक्ष्मरूप में, बनाये रही। ब्रजभाषा तथा ब्रजभाषा साहित्य के प्रेमी शास्त्रीय दृष्टिकोण से शृंगार को रसराज के रूप में देखने वाले, तथा नायिका भेद के समर्थक आधुनिक कवि रीतिकालीन भावना के पोषक रहे, किन्तु, क्योंकि देश की परिस्थितियां मध्ययुग की-सी नहीं रही है और कवियों की विचारधारा में भी परिवर्तन हो रहा है इसलिए, रीतिकालीन नारी भावना को लेकर भी कवियों ने कुछ नवीन दृष्टिकोण का विकास किया। इस युगांतरकारी परिवर्तन का अधिकांश श्रेय अयोध्यासिंह उपाध्याय को है जिन्होंने 'रसकलस' की रचना करते हुए नायिका-भेद संबंधी नवीन विचारधारा की अभिव्यक्ति की।

वस्तुतः परिवर्तन-युग में रीतिकालीन नारी भावना के अपनाये जाने के चार कारण हैं :—

१ इस वर्ग के कवि नारी का सुकुमार के रूप में देखते हैं। उसका अबला रूप तथा मधुर मूर्ति ही कवि के सम्मुख आती है।[1] हम देख चुके हैं कि हरिऔध आधुनिक सबला से विरक्त हैं। इससे स्पष्ट है कि कवि 'पिकबैनी' और 'मृगनैनी' की ओर आकर्षित है। सौंदर्य के संबंध में उनका कथन है :—

---

[1] चन्द्रमा के पीछे पीछे चांदनी को चलते पाया।
× × ×
दौड़ती जा करके नदियां समुद्र में मिल जाती हैं।
× × ×
पादपों के सुंदर तन में बेलियां लिपटी जाती हैं,
साथ जलते दीपक का कर बत्तियां जलती रहती हैं।
सितम मतवाले भौंरों का तितलियां सहती रहती हैं।
मोतियों की माला अपनी मोर को रजनी देती है,
अरुण का मुख देखे ऊषा मांग अपनी भर लेती है,
देख कुसुमाकर को कोयल गीत है बड़े मधुर गाती,
सामना उजियाले का कर भाग जाती है अंधियाली,
फूल को हंसता अवलोके कब नहीं कलियां खिल जाती,
कलेजा उनका तर करने ओस की बूंदें हैं आती।

(हरिऔध—कल्पलता : नर नारी, पृ० १८-२०)

"रूप रमणी का रमणीय, लोक मोहकता का है सार,
है प्रकृति भाल रुचिर सिंदूर काम कामुकता का आधार।"[1]

और सौन्दर्य का आदर्श यह है :—

"दीप के परे से गात-मजुता मलिन होत,
देखे अग दलकहि दल सतदल के।
कोमल कमल से जहूँ पै न लहहि कल,
भारी लगै बसन अमोल मलमल के।
'हरिऔध' हरा पहिराय वपु-कप होत,
पायन मैं गडहि बिछौने मखमल के।
कुसुम छुए ते रग हाथ को मैलो होत,
छिपत छपाकर छबीली छवि छलके।"[3]

इस चित्र की भावना कुछ अतिशयोक्तिपूर्ण हो सकती है, किन्तु इतना निश्चित है कि स्त्री की स्वतत्रता और समानता के विरोधक इस वर्ग के कवि नारी को 'सुकोमल शक्ति' के रूप में ही देखते हैं।

२ इन कवियो की शृगार-मूल नारी भावना का दूसरा कारण यह है कि इन्होंने शृगाररस को अत्यत पूत और व्यापक माना है। भरतमुनि तथा साहित्यदर्पणकार की शृगार सबधी परिभाषायें[4] मानते हुए लिखा है "जो कुछ ससार मे दर्शनीय अर्थात् सुन्दर है, साथ ही जो पवित्र, उत्तम और उज्ज्वल है, उसका जिसमे सरस एव हृदयग्राही वर्णन, विकास अथवा प्रदर्शन होगा, वह शृगाररस कहला सकेगा"।[5] आगे शृगाररस की विवेचना करते हुए उन्होंने रति को महिमामयी, विश्वव्यापिनी अनत गुणावलम्बिनी बताया है और सस्कृत के किसी विद्वान का यह कथन भी उद्धृत किया है :—

'सर्वे रसाश्च भावाश्च तरगा इव वारिधौ।
उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति यत्र स प्रेमसज्ञक.।"

साथ ही काम को 'ससार के सृजन का हेतु" मानकर भी रतिभाव की उज्ज्वलता प्रतिपादित की गई है। धर्मशास्त्रों से पुत्र की अनिवार्यता और महत्व सबधी उद्धरण देते हुए हरिऔध स्त्री-पुरुष की सम्मिलन इच्छा को एक कर्तव्य पालन, मगलमय अनुल्लघनीय

[1] देखिए—पीछे "समाज सुधार की भावना" पृ० १७६-१८२.
[2] अयोध्यासिंह उपाध्याय—कल्पलता सौंदर्य, पृ० ६२.
[3] रस-कलस, पृ० ६६ देखिए, गोपालशरण सिंह—माधवी अदभुत छवि, पृ० १६६-१६७ रूपराशि पृ० १०१.
[4] "यत्किञ्चिल्लोके शुचि मध्यमुज्ज्वल दर्शनीय वातच्छृगारेणोपमीयते" (नाट्यशास्त्र)
शृ ग हि मन्मथोद्भेदस्तदागमन हेतुक।
उत्तमप्रकृति प्रायो रस. शृगार इष्यते" (साहित्यदर्पण)
[5] रसकलस—भूमिका, पृ० ७३-७४.

विधान के रूप में देखते हैं।[१]

३. इस भावना का तृतीय स्तंभ है मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण। गूढ़ातिगूढ़ भावधाराओं, मानवीय प्रवृत्तियों के विकास के प्रकाशन के दृष्टिकोण से ये कवि नायिकाभेद-साहित्य को बहुमूल्य मानते हैं। नारी का प्रेम पात्र के हित आत्मत्याग, पति प्रेम पाकर गर्व, पूर्वानुराग की अवस्था में वैकल्य, पति के परस्त्री-गमन पर क्षोभ, मिलन का लज्जानत उत्साह और विरह की दग्ध पीड़ा, यह सब नारी की सत्य रूप रेखायें बनाते हैं। साथ ही नारी में परकीया भाव की भी समष्टि है। इसकी सत्यता और मूल्य बताते हुए हरिऔध लिखते हैं 'प्रेम बड़ा रहस्यमय है। प्रेम-परायण हृदय समाज का बंधन क्या, किसी बंधन को नहीं मानता ऐसे उदाहरण नित्य हमारी आँखों के सामने आते रहते हैं। हम आँखें छिपा सकते हैं, किन्तु घटना हुए बिना नहीं रहती। हृदय से हृदय का सम्मिलन स्वाभाविक है, सत्य है, विधि का अनुलंघनीय विधान है। यदि परकीया एक सत्य व्यापार है, और समाज में चिरकाल से गृहीत है, तो उसका उल्लेख गर्हित क्यों।"[२] आगे वे लिखते हैं संसार की जितनी प्रेम कहानियाँ हैं, उनमें से अधिकांश का आधार परकीया है। चाहे वे भगवान श्रीकृष्ण अथवा श्रीमती राधिका संबंधी कथाएँ हों, चाहे लैला मजनूं, चाहे शीरीं फरहाद आदि की दास्तानें। कारण इसका यह है कि इस प्रकार की रचनाओं में बड़ी हृदयग्राहिता होती है। . यदि परकीया में वास्तविकता न होती, उसकी बातें सत्य न होकर कल्पित होतीं तो उसमें इतनी स्वाभाविकता न मिलती।"[३] परकीया की ही भाँति, समाज का एक अंग होने के कारण गणिका को भी देखा गया है।

४ आधुनिक कवि का सबसे आधक महत्वपूर्ण दृष्टिकोण सुधारात्मक है। नायिका भेद में वह समाज के लिए एक संदेश, एक पथ प्रदर्शक ज्योतिस्तंभ पाता है। प्रथमतः नायिका-भेद नारी-मनोविज्ञान का प्रकाशक होता है। स्त्री और पुरुष के स्वभाव में स्वभाव संबन्धी बहुत बड़ी-बड़ी भिन्नताएँ हैं। इसलिए समाज की सुव्यवस्था के लिए एक को दूसरे की रुचि और प्रकृति का पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है। इसी प्रकार पुरुष को पुरुष के और स्त्री को स्त्री के भावों एवं विचारों से अभिज्ञ होना वांछनीय है। जहाँ प्रकृति नहीं मिलती, स्वभाव का पूर्ण परिज्ञान नहीं होता, वहाँ पद पद पर पतन होता है, और सफलता दूर भागती है। किन्तु जहाँ मनोविज्ञान पर दृष्टि रखकर कार्य संचालन किया जाता है, वहाँ स्खलन कदाचित् ही होता है, क्योंकि रुचि देखकर और स्वभाव पहचान कर कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण होने में असफलता प्रायः सामने आती ही नहीं।[४] "यह देखा जाता है कि अनेक पुरुष स्त्रियों द्वारा इसलिए आदृत नहीं पाते, क्योंकि वांछित और अभिज्ञ होते हैं कि उनमें रसिकता नहीं होती और वे उन कलाओं के ज्ञाता नहीं होते, जिनमें ललनाकुल

[१] रसकलस—भूमिका, पृ० ७०—८१
[२] वही पृ० १८५—१९६
[३] वही, पृ० १४०—५०.
[४] वही, पृ० १०८.

को अपनी ओर आकर्षित किया जा सकता है। इसी प्रकार कितनी स्त्रियों को इसलिए दुःख भोगना और पति के प्यार का गँवाना पड़ता है कि इनमें न तो भाव होते हैं जो मनों को मुट्ठी में करते हैं, और न वे मनोहर ढंग और न वे मधुर व्यवहार जो हृदय के सुकुमार भावों पर अधिकार करते और नीरस मानसों पर भी रसधारा बहाते हैं। नायिका भेद के ग्रंथ इस बातों का भी प्रतिकार करते हैं और बड़ी सरलता से वे मार्ग बतलाते हैं, जिन पर चलकर स्त्री-पुरुष दोनों अपने जीवन को सुखमय बना सकते हैं।"[1] समाज की सुव्यवस्था का साधक बनकर इस प्रकार नायिका भेद आता है। द्वितीय प्रकार से इस क्षेत्र में उसकी सहायता और मूल्य और भी अधिक है। वह समाज के सम्मुख नारी के विविध प्रकारों को रखकर उन्हें दुष्ट नारियों से सावधान करता है। "दुनिया बहुरंगी है, जो उसके सब रंगों को पहचानता है उसी के मुख की लाली रह सकती है, वह चाहे स्त्री हो चाहे पुरुष। जहाँ सती साध्वी कुल ललनाएँ हैं, वहाँ प्रवंचनामयी वारविधूटियाँ भी हैं। जहाँ कोमल स्वभावा सरल बालिकाएँ हैं, वहीं कटु-भाषिणी गर्विणी मानवती नायिकाएँ भी हैं। जहाँ पति की परछाहीं से भयभीत होने वाली मुग्धाएँ हैं, वहीं अनेक कलाकुशला प्रौढ़ाएँ भी हैं। कहीं स्वकीया हैं, कहीं परकीया, कहीं सामान्या। पुरुष इन सब का जब तक यथार्थ ज्ञान न रखेगा, तब तक उनकी संसार यात्रा का निर्वाह सफलता पूर्वक कैसे होगा।"[2] गणिका का वर्णन नायिका भेद में पाया जाता है। हरिऔध जी का कथन है कि इस प्रकार के वर्णनों में गणिका की प्रियवादिता में आच्छादित असत्यता, अस्थिरता, कठोरता आदि विशेषतायें व्यक्त होती हैं। 'शरीर में कुछ ऐसे अंग हैं, जिनका नाम लेना भी अश्लीलता है, फिर भी वे शरीर में हैं और उपयोगी हैं। इसी प्रकार वेश्यायें कितनी ही कुत्सित क्यों न हों पर वे समाज का एक अंग हैं और उनका भी उपयोग है। इसीलिए साहित्य में उनकी चर्चा है। किन्तु यह स्मरण रहे कि जहाँ उनका वर्णन है, वहाँ उनकी कुत्सा ही की गई है। कामुकों की आँखें खोलने और लंपटों को सावधान करने की भी पर्याप्त सामग्री उनमें पाई जाती है। जब एक वेश्या के मुख से कोई कवि कहलाता है 'नाथ हमें तुमें अंतर पारत हार उतारि इतै धरि राखौ" उस समय जहाँ वह कवि कला का कमाल दिखलाता है, एक स्वार्थमय मानस का विचित्र चित्र खींचता है, वहीं यह भी बतलाता है कि किस प्रकार गणिकाओं की मधुरतम बातों में प्रतारणा छिपी रहती है, और कैसे वह प्रेम का कपट जाल फैला कर कामुकों को फाँस लेती हैं। इस पत्र में विवेकियों के लिए सुन्दर शिक्षा है और अभिमानों के लिए सावधानता का मंत्र है।"[3] अन्यत्र कवि—"क्यों हूँ न याम जनात है जात रिझावत ऐसी रहैं रतिआन मैं।
देखत ही मन टूटि परै कछु राखहि ऐसी छटा छटिआन मैं।
ए 'हरिऔध' करो कितनी हूँ विलम्ब पै होत नहीं पतिआन मैं।
बीस गुनी मिसिरी ने मिठास है बात विलासिनी की बतिआन मैं।"

[1] वही, पृ० १३६
[2] वही, पृ० १२६.
[3] वही, पृ० १५३.

—पद्य को लेकर लिखता है "क्या इस पद्य के पढ़ने से यह नहीं ज्ञात होता कि वैसिकों का कितना पतन हो जाता है। उनके पतन का चित्र ही तो इस पद्य के पद पद में अंकित है, उनकी कामुकता का ही वर्णन तो इसमें है। फिर उनको कौन निंदनीय न समझेगा, ऐसे ऐसे पुरुषों की ओर दृष्टि फेरकर सर्वसाधारण को सावधान करना ही तो इस पद्य का उद्देश्य है, फिर वह उपयोगी क्यों नहीं। यदि कहा जावे किसी कुलांगना के हाथ में वह पद्य नहीं दिया जा सकता, तो मैं कहूँगा यदि उनको अपने पति पुत्र को पतन से बचाने का अधिकार प्राप्त है, यदि उनको इस विषय में सावधान रखना है, तो उनके सामने इस पद्य को अवश्य रखना चाहिए, जिससे उनकी आँखें खुली रहें, और वे अपने पति पुत्र की रक्षा इस कुमार्ग से कर सकें। इस पद्य में जितना प्रलोभन है, उतनी ही उसमें सतर्कीकरण की शिक्षा है, बुराई का यथार्थ ज्ञान होने पर ही उससे पूरी तौर पर कोई बचाया जा सकता है।"[1] "राका निशा का यथार्थ ज्ञान तमोमयी अमा कराती है, और अरुण रंग रंजित ऊषा की विशेषताओं का कालिमामयी सन्ध्या ही बतलाती है। काक और पिक में क्या अंतर है, फूल और काँटा में क्या भेद है, सुधा क्यों वांछनीय है और गरल क्यों निंदनीय, यह मिलान करने पर ही जाना जा सकता है जैसे पुरुष जीवन की परकीया कलंकित करती है और गणिका नष्ट।"[2] इस भावना के विपरीत रीतिकालीन कवि का दृष्टिकोण परकीया और गणिका में स्थूल सौंदर्य मात्र का संग्रह करना था, उनमें शिक्षा ग्रहण करना नहीं। कृष्णबिहारी मिश्र 'मतिराम ग्रंथावली' की भूमिका में इस बात को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं—'मतिराम कवि के काव्य में परकीया और गणिका के अनेक वर्णनों में खासा सौंदर्य समाविष्ट है। पाठक-गण से प्रार्थना है कि वे मतिराम के ऐसे वर्णनों को पढ़ते समय उन्हें नैतिक उपदेशक की दृष्टि से न देखें, वरन एक ऐसे कवि की दृष्टि से देखें जिसका काम सभी स्थलों से सौंदर्य संकलन करना है।"[3]

इस प्रकार हम देखते हैं कि रीतिकालीन परम्परा का पालन करने वाले आधुनिक कविगण परम्परा पालन करते हुए भी अपनी कुछ विशेषताएँ रखते हैं जो इन्हें संक्रान्त युग तक चली आनेवाली धारा से विच्छिन्न कर देती हैं। इस वर्ग के आधुनिक कवि वास्तव में रीतिकालीन परम्परा का पालन मात्र नहीं करते, वरन संस्कृत काव्य में शास्त्र का वास्तविक और सच्चा अनुसरण करने में प्रवृत्त हैं। मध्ययुग में विलासिता के कारण शृंगारिक काव्य की रचना हुई, कवियों ने तथा राजाओं ने निज मनस्तुष्टि के लिए काव्यशास्त्र की ओट ले ली थी, और उस प्रथा की काव्य-रचना नायिका के अंग प्रत्यंग वर्णन के मुख्य दृष्टिकोण से सौंदर्य चित्रण परम्परा मुक्तरूप से २० वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक चलती रही। किन्तु आधुनिक समाज, जिसकी आर्थिक दशा हीन है, देश जो स्वतंत्रता संग्राम में प्रवृत्त है, तथा आंदोलनों, जो देश की राजनैतिक तथा सामाजिक दशा बदल

---

[1] वही, पृ० १३५.

[2] वही, पृ० १३५—१३६.

[3] मतिराम ग्रंथावली : भूमिका, पृ० ११५.

देने में सलग्न है, के मध्य रहने वाला कवि एक मात्र विलासी और कामुक दृष्टिकोण नहीं रख सकता। रीतिकालीन कवियो पर बहुत अधिक प्रभाव फारसी साहित्य और मुसलमानी सभ्यता का पडा। हरिऔध इस सबध मे लिखते हैं "यथा राजा तथा प्रजा। मुसलमान जाति विलास-प्रिय है। उसका साहित्य विलासिता के भावों से मालामाल है। प्रेम की कहा नयो तथा प्रेमी एव प्रेमिकाओं के रग-रहस्यों और चोंचलों की उसमे भरमार है। फारसी की कविता मे क्या है, इस बात को आप मुसलमानो की उर्दू कविताओं को पढकर जान सकते है, क्योंकि वही इसकी उद्गम भूमि है। उर्दू मे जो हास विलास, जो प्रेम के ढकोसले, पचडे, बखेडे मिलते हैं, उसमे जो लपटता, कामुकता, लिप्सा और वासनाओ के वीभत्स काड दृष्टिगत होते हैं, वे सब फारसी ही से उसे मिले हैं, फारसी के ग्रथ ही मुसलमानी साहित्य के सर्वस्व हैं। यह विलासिता व्रजभाषा मे घुसी, और उसने उसके साहित्य ग्रथो के कुछ अगों का उपहास योग्य बना दिया। कारण प्रभाव और उस काल के लोगो का मनोभाव है। ... मै यह स्वीकार करूगा कि इस प्रकार की कुछ कविताएँ अपनी भाषा की मानरक्षा के लिए भी हुई हैं, क्योंकि प्रतिद्वद्वता का अवसर आने पर कोई कितना ही दबा क्यो न हो पर अपने धन मान की रक्षा का उद्योग करता ही है। कहा जाता है कि कविवर बिहारीलाल के अधिकाश दोहे उर्दू अथवा फारसी शेरो की बनरपरवालियो का नीचा दिखाने के लिए लिखे गए हैं।"[1] इससे स्पष्ट है कि आधुनिक कवि उन फारसी प्रभाव और कामुक प्रभाव को उतार कर फेंक देना चाहते हैं जो मध्ययुग मे शृगार प्रबधो काव्य पर छा गया था। आधुनिक कवि की नायिका भेद गत नारी भावना भी सस्कृत साहित्य के आधार को लेकर अधिक पूत है। आधुनिक कवि रति भाव को सृष्टि के मूल और शाश्वत् भाव के रूप मे देखता है। हरिऔध लिखते हैं "रहा शृगार रस उसका नाम सुन कर जो कान पर हाथ रखता है, वह आत्म प्रतारणा करता है, वह जानता नहीं कि शृगार रस किसे कहते हैं।. ..... शृगार रस जीवन है, जिस दिन आप उसका त्याग करेंगे, उसी दिन आप का स्वर्ण मदिर ध्वस हो जायेगा और आप रसातल चले जायेंगे। आवश्यकता है कि आप शृगार रस को समझे और दूसरे भाई को समझावे। शृगार रस ही वह रस है, जो निर्जीव को सजीव, नपुसक को वीर, क्रियाहीन को सक्रिय और अशक्त को सशक्त बनाता है।"[2] आधुनिक कवि का पूत और अविलासी दृष्टिकोण इससे भी स्पष्ट है कि वह देश की दशा के प्रति अध नही है, कला के मदिर का उपासक होकर वह जनता को नहीं भुल बैठा। वह यदि शृगार रस मे विहार करता है तो उस करुणा की ओर भी ध्यान देता है जो देश के मनुष्यो पर छाई हुई है, सुन्दरी नायिका को देखता हुआ वह दर्द की मारी विधवा को नही भूलता, मुग्धा प्रेमिका को लेकर सेविका को नहीं छोड देता। फलत. युग के प्रति सजग कवि ने न केवल स्वकीया, परकीया और सामान्या को देखा है, वरन् उत्तमा नायिकाओ की श्रेणी मे परिवार प्रेमिका, जाति प्रेमिका

---

[1] रसकलस—भूमिका पृ० १६८—१७०.

[2] वही, पृ० १७०—२७१.

देश प्रेमिका, जन्म भूमि प्रेमिका, लोक सेविका और धर्म प्रेमिका को भी रखना है। हमें याद है कि आलबनो का वर्णन करते हुए रीतिकाव्य रचयिताओं ने नायिका मे केवल शृगार भाव पाया था। किन्तु आधुनिक कवि गृह-जीवन और दापत्य-जीवन मे ही नारी के प्रेम का विकास नही देखता वरन् विश्व प्रेम मे उसका वृहत् स्वरूप देखता है। वह चमत्कार चक्र मे फँसी नारी को नही देखता वरन् नारी हृदय के चमत्कार को देखता है। नारी के शारीरिक रूप को ही नहीं, वरन् मानसिक रूप को भी देखता है। काव्य सौन्दर्य औ कला मात्र को दृष्टि मे नही रखता वरन् काव्य की उपयोगिता भी देखता है।

इन आधार-शिलाओं पर स्थित आधुनिक रीतिकाव्यकार की नारी भावना रीतिकालीन परम्परा मे आती हुई भी अपना विशिष्ट और मौलिक दृष्टिकोण रखती है। कुछ कवियों की नारी भावना पदानुपग मध्ययुगीय भावना का ही अनुसरण करती हुई भी दिखाई पडती है। फिर भी उसका मूल दृष्टिकोण किसी सीमा तक अवश्य परिष्कृत है, और वह इस रूप मे रीतिकालीन कवियों की भावना का केन्द्र यदि परकीया थी तो आधुनिक कवि की दृष्टि पत्नी पर स्थिर होती है, रीतिकालीन कवि यदि केवल 'नायिका' को देखते थे तो आधुनिक कवि 'मानवी' को भी देखते हैं। वास्तव मे रीतिकालीन परपरा पालन करने वाले आधुनिक कवियों का व्यक्तित्व दुहरा है। गोपालशरण सिह ने एक ओर 'माधवी' मे परपरागत नारी भावना का रखा है तो आगे चलकर 'सचिता' 'मानवी' और 'सागरिका' मे नवीन भावना को स्थान दिया है। इसी प्रकार हरिऔध ने भी परपरागत भावना के साथ-साथ सुधारात्मक भावना को भी स्थान दिया है।

अस्तु, इस युग मे परपरागत रीतिकालीन भावना बनी तो रही किन्तु दृष्टिकोण मे किंचित परिवर्तन के साथ। वह युग, देश और काल के साथ सबध जोडती हुई दिखाई पडती है। वह विलासिता प्रसूत न होकर सतोन्मुख आदर्शवादिता से उत्पन्न है। इस युगान्तर को उपस्थित करने का अधिकाश श्रेय हरिऔध को है, जो सबसे अधिक देश काल के प्रति सजग रहे हैं।

भक्ति काल की वैराग्यमयी घृणात्मक भावना इस नारी-पूजा के इस युग मे लगभग लुप्त हो गई। केवल एक आध कवि को कहते हुए सुना जाता है :—

> "नारी उत्पादित करती है नर के मन मे मद औ प्यार।
> आत्म ताप से उत्पीडित वह पतितोन्मुखी प्रेम की धार॥
> सदा खोजती उस मनुष्य में जिसमें रखती है वह प्रेम,
> रक्षा करने की क्षमता औ सुदृढ़ शक्ति सच्चा नव नेम॥
> नही खोजती दया भाव वह, सीधे सुदर सद्व्यवहार।
> ज्ञात उन्हें इनकी महिमा है, इनका अनुभव भली प्रकार॥"[1]

और पत जब यह कहते हैं :—

---

[1] पद्मकांत मालवीय—त्रिवेनी : स्त्री—पृ० ७१.

"यदि कहीं नरक है इस भू पर तो वह नारी के अदर,
वासना वर्त में डाल प्रखर
वह अध गर्त में चिर दुस्तर
नर को ढकेल सकती सत्वर।"[1]

तो उस 'वैषम्य' को दृष्टि मे रख कर जो 'नारी' का विकृत रूप है, जो वास्तविक नहीं, नश्वर है। कवि इससे पूर्व ही कह चुका है :—

"यदि स्वर्ग कहीं है पृथ्वी पर, तो वह नारी उर के भीतर,
दल पर दल खोल हृदय के स्तर
जब बिखराती प्रसन्न होकर
वह अमर प्रणय के शतदल वर।"[2]

इस प्रकार इस युग मे मध्ययुग की नारी भावना क्षीण रूप मे रही। अधिकतर उसकी मूल भावना मे परिवर्तन हो गया। प्रायः प्राचीन ही भावना को आधुनिक कवि ने नए ढ ग से उपस्थित किया। कवि का ध्यान अपने युग की आवश्यकता की ओर विशेष रूप से रहा।

———

[1] सुमित्रानंदन पंत —ग्राम्या : स्त्री, पृ० ८२.
[2] वही।

अध्याय १०

प्रगति युग (१९३७-१९४५)

'३० के कुछ वर्ष बीतने पर हिन्दी काव्यान्तर्गत भाव धाराओं मे पुनः दिशापरिवर्तन हुआ, और कवियों की नारी भावना ने भी करवट ली। इस नव विकास का मूल कारण पूर्णतः यूरोप है जिसने मार्क्स, फ्रायड, एडलर, युग, डार्विन, वर्टरडरसैल, हैवलाक एलिस एमिल जोला, मोपासा, बर्नार्ड शा, डी० एच० लारेंस, इब्सन आदि के विचारों को भारत की नई पीढी के सामने रखा।

आर्थिक और सामाजिक कारणों से वर्तमान कालीन भारतीय नवयुवक मे रूढियों और परपराओं के प्रति एक विद्रोह का भाव है जो गत युग मे वर्तमान रहता हुआ भी कुछ दबा सा रहा था, दूसरे शब्दों मे गत युग के कवि मे उस साहस और अग्नि की कमी थी, जो प्रगतियुग के कवि मे है। इस कवि को यों तो सम्यक् रूप से उन सभी विचार-धाराओं ने आकर्षित किया जो उन रूढिगत सास्कृतिक तथा नैतिक परपराओं जो व्यक्ति के मुक्त विकास मे बाधक रही हैं, के विरुद्ध थी, किन्तु विशेष रूप से समाजवाद तथा मनो-विश्लेषण विज्ञान ने इस युग के कवि को प्रभावित किया।

समाजवाद का सम्बन्ध विशेष रूप से कार्ल मार्क्स (१८४२-१८८४) से है जिसने वैज्ञानिक और क्रातिकारी रीति से वर्गसघर्ष का विवेचन किया। कार्ल मार्क्स के सिद्धान्तों का प्रभाव विस्तृत हुआ, किन्तु अत्यधिक व्यापकता उसने गत महायुद्ध (१९१४-१८) के बाद प्राप्त की जब सभी देशों में अभाव का साम्राज्य था, तथा रूस में प्रसिद्ध राज्यक्रान्ति हुई जिसके बाद सोवियट यूनियन की स्थापना हुई। सन् १९२७ मे भारतीय कम्युनिस्ट दल का निर्माण हुआ जो मार्क्सवादी सिद्धान्तो का अनुयायी था और अपनी नीति को रूसी सकेतों पर निर्धारित करता था। १९३४ में काग्रेस अदर भी एक समाजवादी दल बन गया। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने विशेष विकास द्वितीय महायुद्धकाल (१९३९-४६) में पाया जब काग्रेस गैर कानूनी कह दी गई थी, किन्तु यह पार्टी कानूनी थी।

प्रगति युग के अनेक हिन्दी कवि तथा लेखक उक्त पार्टी से सबधित हैं।

समाजवाद का ध्येय शोषण का अत करना है। मार्क्स के अनुसार पूजीवादी समाज-व्यवस्था में दो वर्ग हैं—एक शोषक और दूसरा शोषित। शोषित वर्ग में, उन मजदूरों और किसानों के साथ जो नित्य मिल मालिकों और जमींदारों द्वारा पीसे जाते हैं, नारी भी आ जाती है जो पुरुष की पाशविकता से दलित है। नारी पुरुष की वैयक्तिक सम्पत्ति हो गई है और अर्थतः पुरुष के अधीन है। व्यक्तिगत सम्पत्ति के आधार पर निर्मित समाज ने स्त्री के व्यवहार तथा आचरण के विषय में कठोर नियम बनाये हैं और पतिव्रत धर्म को उसके ऊपर लादा है। पूजीवाद के कारण स्त्रियों की दशा शोचनीय है। व्यक्ति की संपत्ति और मिल्कियत का केन्द्र बनकर उसने अपना व्यक्तित्व खो दिया है। वह या तो पुरुष

के आधिपत्य में रह कर उसका वंश चलाने, उसके उपयोग भोग मे आने की वस्तु रही है या फिर आर्थिक सकट और बेकारी के शिकजों मे निचोड़े जाते समाज के तग होते हुए दायरे से अपनी शारीरिक निर्बलता के समाज मे स्वतत्र जीविका का स्थान न पाकर केवल पुरुष के शिकार की वस्तु बन गई है।

मार्क्स के विचार से स्त्रियों की यह दशा न तो स्त्रियों के विकास के लिए न समाज की उन्नति के लिए कल्याणकरी है। स्त्रियाँ भी पुरुषों की ही तरह मनुष्य है और उनके कधे पर भी समाज का उत्तरदायित्व उतना ही है जितना कि पुरुषों के कधे पर। जब तक स्त्री का शारीरिक और मानसिक विकास स्वतत्र रूप से न होगा उसके द्वारा उत्पन्न सन्तान भी उन्नत न होगी। स्त्री को केवल उपयोग और भोग की वस्तु बनाकर रखना मनुष्य के जन्म के स्रोत को बिगाड़ना है। समाज के सुख और वृद्धि के लिए स्त्रियों के मानसिक और शारीरिक विकास तथा समाज मे स्त्रियो के समान अधिकार होने के लिए उन्हे भी पैदावार के कार्य मे सहयोग देने का समान अधिकार होना चाहिए। सन्तानोत्पत्ति स्त्री को मजबूर होकर या दूसरे की भोग लालसा का साधन बनकर न करनी पड़े, वह अपने आप को समाज का एक स्वतत्र अग समझकर अपनी इच्छा से सतान उत्पन्न करे। समाज का कर्तव्य है कि गर्भावस्था मे स्त्री के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ प्रदान करे। समाजवादी समाज मे स्त्री भी समाज का परिश्रम या पैदावार करनेवाला अग होगी; उसे केवल पुरुष के भोग और रिझाव का साधन न समझा जायगा। मार्क्सवाद मनुष्य प्रकृति मे आनन्द विनोद और आकर्षण की जगह भी स्वीकार करता है परन्तु उसमे पुरुष को प्रधान और स्त्री को केवल सामग्री बना देना उसे स्वीकार नहीं।

मार्क्सवाद स्त्री-पुरुष के सबध को पुरुष की सम्पत्ति और धर्म के भय से जकड़ देने के पक्ष मे नही है। वह स्त्री पुरुष के सबन्ध को स्त्री पुरुष की प्राकृतिक आवश्यकता का सबन्ध मानता है। इसके लिए वह दोनों मे किसी के लिए भी एक दूसरे का दास बन जाना अवाछित मानता है। इसके साथ ही वह स्त्री पुरुष के सम्बन्ध में उच्छृङ्खलता भी उचित नहीं समझता। किसी स्त्री पुरुष का दूसरों के शारीरिक भोग के लिए अपने शरीर को किराये पर चढ़ाना वह अपराध समझता है। समाजवादी समाज मे जीविका के साधन अपनी योग्यता और अवस्था के अनुसार सभी को प्राप्त होगे, इसलिए जीविका के लिए व्यभिचार से धन कमाने की आवश्यकता हो नहीं सकती। सक्षेप मे स्त्री, पुरुष और विवाह के सम्बन्ध मे मार्क्सवाद समाज के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के विचार से पूर्ण स्वतन्त्रता देता है परन्तु उच्छृङ्खलता और भोग को पेशा बना लेने और साथ मे अपनी वासना के लिए दूसरे व्यक्तियों और समाज की जीवन व्यवस्था मे अड़चन डालने को वह भयकर अपराध समझता है। समाज मे स्त्री पुरुष की समानता के लिए उचित परिवर्तन की आवश्यकता है।

स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध के अतिरिक्त मार्क्सवादी भौतिकवाद, निरीश्वरवाद तथा यथार्थवाद का उल्लेख करना अनुचित न होगा, जिसने नवयुगीय कवि के मस्तिष्क को प्रभावित करके परोक्ष रीति से नारी भावना पर भी प्रभाव डाला। भौतिक सत्ता मात्र मे

विश्वास रखनेवाला मार्क्सवाद का उस काल्पनिक आदर्शवाद को ग्रहण नह कर सकता जो एक आस्तिक और अध्यात्मवादी की ही निधि हो सकती है। इसकी आदर्श कल्पना केवल समाजवाद की प्रतिष्ठा है और उसको लिए हुए यह पूँजीवादी समाज की (यथार्थ) दशा का निरीक्षण और आलोचना करता है।

इस युग के कवि को प्रभावित करने वाली दूसरी प्रबल विचारधारा थी मनोविश्लेषण विज्ञान की। इस विज्ञान के विकास का विशेष सम्बन्ध २० वी शताब्दी से ही है। १६ वी शताब्दी के अवसान काल मे वियना के प्रो० सिगमड फ्रायड के अन्वेषणों ने सर्वप्रथम मनोविश्लेषण को दर्शन क्षेत्र के बाहर विज्ञान का रूप प्रदान किया। इस विज्ञान के विकास के इतिहास मे १६१० एक महत्वपूर्ण वर्ष है है, जब इटरनेशनल साइकोएनालिटिकल एसोसियेशन की नींव पडी। काफी समय तक मनोविश्लेषण केवल एक विज्ञान ही रहा, किन्तु गत महायुद्ध (१६१४—१८) के पश्चात्, जब व्यक्ति का निजसम्बन्धी कौतूहल बढ गया था, इस विज्ञान ने योरोप मे एक व्यापक रूप धारण किया। १६२० मे सिगमड फ्रायड कृत ट्रांसडक्ट्री लैक्चर्स आन साइकोएनालिसिस और ए० जी० टासले कृत दि न्यू साइकोलाजी एन्ड इट्स रिलेशन टु लाइफ ने ससार के सम्मुख व्यक्ति के आतरिक रूप (जिससे वह अभी तक अपरिचित ही था) के सबन्ध मे नई और विचित्र दीखनेवाली खोजों को रखा। फिर तो २० वी शताब्दी के युवक के लिए फ्रायड, एडलर, युग, ग्सैल आदि के सिद्धान्त विचार के केन्द्र हो गए।

गत १५, २० वर्षों मे, सम्भवत. रूढिबद्ध समाज की नैतिक कठोरताओं से पीडित, भारतीय युवक ने सामाजिक तथा व्यक्तिगत कठिनाइयों को लिए हुए फ्रायडादि के विश्लेषणों मे बहुत आकर्षण पाया है।

मनोविश्लेषण की मूल भावना अचेतन (अनकाशस) है। पहले हम मनुष्य के केवल चेतन विचारों और व्यापारों को लेकर चलते थ, किन्तु उन चेतन विचारों और व्यापारों के नीचे अचेतन एक "शक्ति का स्रोत" है यह नहीं ज्ञात था। मानसिक द्वन्द्व के के समय जो भाव और प्रवृत्तियाँ नियामक (सेन्सर) के द्वारा रुद्ध कर दी जाती हैं वही अचेतन के कोष मे सचित होकर अज्ञात रूप से शक्ति सग्रह करती है। दमन प्राय' उन्हीं प्रवृत्तियों और भावों का होता है जिनको मनुष्य सभ्यता, सदाचार और आदर्श के दृष्टिकोण से नीच समझता है। (इसका यही दृष्टिकोण नियामक कहलाता है)। किन्तु मनुष्य अपनी प्रवृत्तियों को दबा पाता है यह कहना मनोविश्लेषण की दृष्टि से मूर्खता होगी। दलित भाव भाव-स्वप्न आदि मे अपना अस्तित्व सिद्ध करते हैं। आधुनिक मनोविश्लेषक अधिकाशतः उन्ही दलित भावो और वृत्तियो की खोज मे सलग्न है। फ्रायड का कहना है कि दलित भाव अधिकांशतः काम-सम्बन्धी और वैर-सम्बन्धी होते हैं, और इनमे भी अधिक प्राबल्य प्रथम का पाया जाता है। फ्रायड ने प्राय सभी क्रियाओं का मूल काम वासना मे माना है, (फ्रायड के शिष्य एडलर ने जीवन की मूल प्रेरक शक्ति प्रभुत्व कामना (सेल्फ एसर्शन) की प्रवृत्ति, फलतः क्षतिपूर्ति को माना है)। मनुष्य के मानसिक विकास का अनिवार्य सम्बन्ध काम शक्ति (लिबिडो) से जोडा गया है। इसका विविध ग्रन्थियों का

(काल्पेक्स) मे विश्लेषण करते हुए फ्रायड ने साधारण (नार्मल) तथा सदाचारी (कहे जाने वाले) मनुष्य को असाधारण (एबनार्मल), यहाँ तक की विकृत (न्यूरोटिक), तथा दुराचारी मनुष्य के समकक्ष ला रखा है। यह अत्यन्त क्रान्तिकारी विचार था जिसकी सत्तर साल पहले कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।

मनोविश्लेषण विज्ञान ने वैज्ञानिक दृष्टिकोण से नारी की विशेषताओं (गुणावगुण) का अध्ययन किया है। फ्रायड ने निम्नलिखित विशेषतायें नारी मे पाई हैं :—

१—लिंग ईर्ष्या . फलस्वरूप सामान्यत ईर्ष्या और जलन तथा सामाजिक अन्याय की प्रवृत्ति।

२—पुरुष से अधिक मात्रा मे आत्म-प्रेम (नार्सिसज्म)।

३—सास्कृतिक कार्यों के लिए दुर्बल प्रेरणा शक्ति तथा उनके उदात्तीकरण (सब्लिमेशन) की हीन सामर्थ्य।

४—सभ्यता के लिए सामान्यतः विरोध का भाव। इसका कारण इतना नारी का मानसिक विन्यास नहीं है जितना वह जैविक (बायलाजिकल) प्रयोजन जिसकी वह प्रतिनिधि है : 'नारी पारिवारिक तथा लैंगिक जीवन के हिता की प्रतिनिधि है। सभ्यता के विकास का कार्य अधिकाधिक पुरुष का ही कार्य क्षेत्र होता रहा है, यह कार्य उनके सम्मुख सदैव कठिनाइयो को उपस्थित करता रहता है, तथा नैसर्गिक प्रवृत्तियो के उदात्तीकरण के लिए मजबूर करता है, जिसको स्त्रियाँ सहज रूप से नही प्राप्त कर सकतीं। मनुष्य के समाप मानसिक क्रिया शक्ति का असीम कोष नहीं होता, इसलिए पुरुष को अपनी वैध शक्ति महत्वपूर्ण कार्यो के लिए विभक्त करनी पडती है। सास्कृतिक कार्यो के लिए जो शक्ति वह खर्च करता है उसे बहुत सीमा तक, स्त्रियों तथा लैंगिक जीवन से बचा लेता है। पुरुषा से उसका निरतर सपर्क तथा उनसे सम्बन्धों पर निर्भरता, पुरुष को पति तथा पिता के रूप मे अपने कर्तव्यों से भी दूर हटा ले जाते हैं। इस प्रकार स्त्री सभ्यता के अधिकारो के सम्मुख अपने को उपेक्षित पाकर उसके प्रति ईर्ष्यालु हो जाती है।[1]

फ्रायड के द्वारा उपस्थित किया गया नारी का चित्र गौरवपूर्ण नहीं कहा जा सकता। यह एक ऐसे व्यक्ति को उपस्थित करता है जो ईर्ष्यालु तथा वातोन्मादी है, जिसमें बौद्धिक रुचियों का अभाव है, और जो सास्कृतिक उन्नति के प्रति शत्रुता का भाव रखता है।

फ्रायड ने स्त्री का प्रमुख आकर्षण केन्द्र गृहस्थी और काम-वासना को माना है। इस सिद्धान्त की पुष्टि करने हुए लुडविस् ने नारी की एक मूल प्रेरणा शक्ति (प्राइमम मोबाइल) पर हमारा ध्यान आकर्षित किया है, इस मूल शक्ति के कारण नारी 'जीवन' की सरक्षक और पोषक हो जाती है, तथा 'जीवन' की वृद्धि में प्रमुख सहायक हो जाती है। नारी का मूल और महत्व इन्हीं दो कार्यों मे है, अन्य विशेषतायें बहुत कम महत्व रखती हैं। इस दशा मे यदि हम मान ले कि एक स्वस्थ स्त्री की प्रेरणा निरतर

---

[1] सिगमड फ्रायड—सिविलिजेशन एंड इट्स डिस्कंटेन्ट्स, ४ पृ० ७३

जीवन तथा उसकी वृद्धि की ओर है, तो हमे आशा रखनी चाहिए कि स्त्री मे वे सब गुण मिलेंगे जो जीवों के सजीवन को निश्चित करते हैं, तथा वे सब दुर्गुण मिलेंगे जो 'जीवन' स्वय उक्त लक्ष्य की पूर्ति मे सलग्न होकर व्यक्त करता है।

"मूल प्रेरणा शक्ति" पूर्णत. अनैतिक है। इस प्रकार, क्योंकि प्रवृत्ति की विशेषताएँ नैतिक नही अनैतिक होती हैं, इसलिए स्त्री की आतरिक विशेषताये भी नैतिक न होकर अनैतिक, सामाजिक न होकर असामाजिक तथा सयमित न होकर अनियमित हैं।[1]

नारी की विभूतियो सबधी धारणा (जिसे हम अपने परिवर्तन युग के काव्य मे विस्तार से देख चुके हैं।) की आलोचना करता हुआ यह लेखक कहता है "आज स्त्री के गुण इस प्रकार गिनाये जाते हैं —१ निस्वार्थता, २ आत्म-त्याग की शक्ति, ३ समाज पर सत् प्रभाव, ४ सहज बुद्धि तथा, ५ मानवतावादी प्रवृत्ति। किन्तु ये सब काल्पनिक विशेषताये हैं तथा मनुष्य की भावुकता की उपज हैं। कोई स्वस्थ स्त्री इन गुणों को धारण करने का बहाना भर कर सकती है।"[2] लुडविस् "मूल प्रेरणा शक्ति" के प्रकाश मे नारी के गुणावगुणो की परीक्षा करता हुआ छ. प्रमुख अवगुण उसमे पाता है . -१ द्वित्व तथा सत्य के प्रति उपेक्षा भाव, २ सद्रुचि का अभाव, ३ गवारपन तथा अशिष्टता, ४ अधिकार प्रेम ५ अहकार तथा ६ काम-वासना की प्रबलता।

इस प्रकार की विचार धारा के साथ ही नारी सबधी एक और भी विचार धारा इस युग मे प्रचलित है। फ्रायड तथा विनिनगर ने स्त्री का रुचि केन्द्र एक मात्र काम वासना को तो माना ही है, किन्तु मनोवैज्ञानिको ने स्त्री को निष्क्रिय तथा पुरुष को सक्रिय माना है जिसके अनुसार 'Man makes love and woman is made love to एक विचारक वर्ग, जिसका प्रतिनिधित्व बर्नार्डशा करते हैं, इस सिद्धान्त को नहीं मानता। शा के अनुसार प्रेम के क्षेत्र मे प्रथम पग स्त्री ही बढाती है, स्त्री पुरुष का शिकार करती है। पुरुष जब तक व्यवसायिक-विवाह-आखेटक न बन जाय प्रेमी न होगा। स्त्री अहेरिन है पुरुष अहेर तथा आखेटक स्त्री को पुरुष की आवश्यकता प्रकृति की प्रेरणाओं की पूर्ति के लिये है, यदि पुरुष विद्रोह करता है तो वह अपने परपरागत प्रेम और आशाकारिता के अभिनय को त्याग कर प्राकृतिक रीति से, व्यक्तिगत आवश्यकताओं से बहुत दूर किसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए, इस पर अधिकार स्थापित करती है।[3] बर्नडशा स्त्री की तुलना उस मकड़ी से करता है जो प्रारभ मे तो चुपचाप मक्खी (खाद्य) की प्रतीक्षा करती है किन्तु एक बार पकड मे आने पर यदि मक्खी भागने का प्रयत्न करती है तो वह निष्क्रियता के अभिनय को तत्परता से त्याग कर शिकार को जालो मे लपेट कर असहाय कर देती है।[4] शा ने नारी और चीते को एक ही श्रेणी मे रखा है। नारी का पुरुष के प्रति प्रेम वैसा

---

[1] ए एम लुडविस—ह्युमन, ए विडीकेशन : १० पृ० २०६ २०७

[2] (वही, १० पृ० २०८)

[3] (बर्नर्डशा —प्रिफेसेज, ७ पृ० १५६)

[4] (वही)

ही होता है जैसा चीते का अपने खाद्य के प्रति। शा नारी को प्रलोभक (टेम्प्ट्रेस) और पाखडी (हिपोक्रीट) मानता है, उसकी तुलना सर्प (बो-कस्ट्रिक्टर) से करता है। उसकी धारणा है कि 'यदि साधारण मनुष्य के द्वारा वास्तव मे प्रभावशाली पुस्तकें तथा ससार की अन्य कलाकृतियाँ निर्मित हों तो उनमे नारी के कल्पित सौदर्य के प्रेम के स्थान पर उसकी पीछा करने की प्रवृत्ति से भय ही अभिव्यक्त होगा।'[1]

इस प्रकार मनोविश्लेषण मनुष्य के अचेतन तथा गुप्त स्वरूप का प्रकाशन है। डार्विन का यह सिद्धान्त कि मनुष्य तथा उन्नत स्तनधारी-प्राणियो (मैमेल्स) मे मानसिक विशेषताओं की दृष्टि से कोई भेद नही है (दि डिसेट आव मैन) इस मार्ग का सहयोगी बनकर आया।

उत्तर डार्विन काल मे योराप मे प्रकृतिवाद (नैचुरलिज्म) का प्रचार अत्यन्त प्रबलता से हुआ। इसका लक्ष्य था आदर्शवाद के विरुद्ध मनुष्य के यथार्थ स्वरूप को सामने लाना। फलत. प्रकृतवाद मनुष्य के ऐंद्रिक पक्ष पर बल देता है, पशुओं से उसका निकट सबध देखता है, और उसके द्वारा निर्मित आदर्शों की क्षणिकता और व्यर्थता को स्पष्ट करता है। पश्चिम मे एमिल जोला, इब्सन, जार्जमूर, तथा थियोडोर ड्रेनर इस सिद्धान्त के प्रमुख प्रतिपादक रहे।

उक्त समाजवाद तथा मनोविश्लेषण विज्ञान के प्रभाव ने भारत की अनेक परपरागत मान्यताओ तथा सास्कृतिक आदर्शों को गहरा धक्का पहुँचाया। प्रथम ने विशेष रूप से पूजीवादी आर्थिक परिस्थिति के प्रति विद्रोह जाग्रत किया तथा द्वितीय ने नैतिक और मानसिक परिस्थितियों का उद्घाटन करते हुए भारतीय मस्तिष्क को एक द्वंद की अवस्था मे डाल दिया। मनोविज्ञान के सहयोग से नवीन कामशास्त्रियो (सेक्सॉलाजिस्ट) ने धर्म शास्त्रों का प्रमाण लेकर चलने वाली रूढ नैतिकता की निरर्थकता और हानिकरिता स्पष्ट की। हैवलाक एलिस के शब्दों मे "इस प्रकार की लैंगिक नैतिकता जो मानव समाज की अनिवार्यताओं की शत्रु है नैतिक न होकर अनैतिक है' (स्टडीज इन दि साइकोलोजी आव सेक्स, पोथी ६, पृ० ३७३)। नवीन सदाचार नीति का मूल मत्र स्वतत्रता है। मानवीय मनोविकारों की उपेक्षा और हत्या न करते हुए यह उनके मुक्त और स्वस्थ प्रकाशन पर लक्ष्य करती है, जीवन की प्राण शक्ति (लाइफफोर्स) को स्वीकार करते हुए उसके कृत्रिम नियमन के दुष्परिणामो को स्पष्ट करती है। साथ ही साथ नवीन सदाचार नीति व्यक्ति की आवश्यकताओं को समाज की आवश्यकताओं के ऊपर रख देती है। नई नैतिकता का प्रमुख लक्ष्य नारी का उद्धार है जो सबसे अधिक धार्मिक विश्वासों की नींव पर खडी नैतिकता की क्रूर शिकार रही है।

यह नवीन विचार धारायें यद्यपि भारत में क्रिया क्षेत्र मे अभी बहुत कम सीमा मे उतरी हैं किन्तु मानसिक क्षेत्र मे इनका प्रबल सघर्ष दिखाई पडता है। उल्लिखित प्रभावों को लेकर हिन्दी का कवि आध्यात्म को छोड़ भौतिकता की ओर झुका है, पलायन, स्वप्न

---

[1] बर्नार्ड शा—प्रिफेसेज, ७ पृ० १५६-१५७

और आदर्श कल्पना को त्याग यथार्थ पर लपका है, और सास्कृतिक आदर्शों की आस्था नष्ट कर व्यक्तिगत आदर्शों के निर्माण में तत्पर है। सम्यक रूप से वह क्रांति-प्रेमी हो गया है। भौतिकतावादी होकर उसने दृश्य समार का मान किया है, वस्तु जगत का तत्वान्वेषण किया है, यथार्थवादी होकर उसने जीवन के अभावों, तुच्छताओं और न्यूनताओं पर दृष्टिपात किया है और क्रांतिकारी बनकर उसने गत युग के निराशावाद, सौन्दर्य-भावना, कल्पना प्रेम तथा समाज में प्रचलित नैतिक आचारों तथा सास्कृतिक परपराओं के प्रति विद्रोह किया है।

इन विचारों की पीठिका लिए हुए प्रगतियुग के कवि की नारी-भावना निम्नलिखित प्रकारों में अभिव्यक्त हुई —

१ समाजवादी

२. क्रान्तिवादी

३. मनोविश्लेषणवादी

आगे इन नारी भावनाओं पर पृथक्-पृथक् रूप से प्रकाश डाला जायगा।

*

अध्याय ११

प्रगति युग की समाजवादी तथा क्रांतिवादी नारी-भावनायें

१. समाजवादी नारी-भावना

समाजवादी दृष्टिकोण से नारी का दर्शन इस युग की सबसे बड़ी विशेषता है। इस दृष्टिकोण का मूलाधार तो सुधार भावना ही है, किन्तु यह सुधार भावना गतयुग की सुधार भावना से कई पग आगे बढ़ी हुई है।

समाजवादी दृष्टिकोण से नारी है 'मानवी'। इस भावना के अग्रदूत सुमित्रानंदन पंत हैं जो छायावादी कवियों में भी अग्रगण्य थे। 'युगान्त' के साथ एक युग का अंत करके 'ग्राम्या' में वह घोषणा करते हैं :—

"नारी की सुन्दरता पर मैं होता नहीं विमोहित,
शोभा का ऐश्वर्य मुझे करता अवश्य आनंदित।
जब आभादेही नारी आह्लाद प्रेम कर वर्षण
मधुर मानवी की महिमा से भू को करती पावन।"[1]

गत युगीय कवि की रूपोपासना वर्तमान कवि के व्यंग का लक्ष्य है।[2] नरेन्द्र शर्मा जैसे छायीवादी के कवि भी अपनी दिशा में परिवर्तन सूचित करते हैं :

"बाहुओं के प्रतनु दो पतवार अब मैं छोड़ता हूँ,
छोड़ता हूँ तट तरी मझधार अब मैं छोड़ता हूँ।
आज मैं मुँह मोड़ता हूँ प्रेम की अलकापुरी से,
केश श्वासों की सुरभि दृग देश श्यामल छोड़ता हूँ।
कामिनी की कामना? वह कर चुकी है पार मंजिल!
बहुत ललचाये रही मन कांचना की ज्योति झिलमिल!
स्वप्न की साम्राज्ञी खोई, दिवा नव रूप जागी,
नया मनहर रूप निखरा आ रहा अरुणाभ सा खिल।

---

[1] "कला के प्रति" पृ० ८१

[2] केशराशि, मुखचंद्र, पयोधर, कटि, सबका रस पान करो बस।
मिटने वालों की बस्ती में अपने पर अभिमान करो बस।"
(सच्चिदानंद वर्मा—अर्घ्यदान, पृ० ६९.)

पौ फटी, फटती यवनिका मोह माया यामिनी की,
फटी मेरी राह मन से हटी मूरत कामिनी की।[1]

इस नव प्रभात में कवि जानता है कि नारी भोग की वस्तु नहीं है। उसके रूप का अनेक भाँति से वर्णन, प्रेयसी रूप में उसकी कल्पना, उसे मधु-कुंड आदि कहना नारी का निरादर करना है।[2]

पीछे कहा जा चुका है कि समाजवादी दृष्टिकोण से नारी शोषिता है। युग-युग से वह लैंगिक शोषण और रूप शोषण का शिकार रही है। पुरुष ने उसका उपयोग कामतृप्ति के साधन के रूप में किया है। उसका व्यक्तित्व नष्ट कर दिया गया है और उसके अधिकारों की उपेक्षा की गई है। वह मूक बनकर मानव की दानवी लीला को देखती और सहन करती है। उसके प्राणों की करुणा अपनी विवशता की ओर कातर दृष्टि से देखती है। कवि अंचल इस चिर शोषिता को जमींदार और मिल मालिक के स्वार्थमय अत्याचारों के नीचे पिसते हुए किसान और मजदूर के समकक्ष रख कर ही यह तीसरा चित्र खींचते है[3]। इस चित्र की भयकरता से उत्पीड़ित होकर अंचल साक्षात् दानव स्वरूप कराल भयंकर वामना के पुतले पुरुष के साथ वर्तमान नारी को देखने में पुनः व्यस्त हो जाते हैं। कवियों ने प्रायः नारी की कल्पना विश्व नियंता की स्वप्न संगिनी चिर अपूर्व शोभना अनिन्दित सुरभिमयी मूर्तिमती उषा-सी स्वप्नमया निखिल जगत स्वर्ग की अनंत रागिनी आत्मज्वाल निर्झर के किरण प्रवाह के रूप में की है। किन्तु वर्तमान युग का यथार्थवादी कवि इस कल्पना स्वर्ग से संतोष नहीं पाता। वह चिल्ला

[1]नरेन्द्र शर्मा—एक नारी के प्रति : हंस, दिसंबर, १९४२.

[2]तुम नहीं हो भोग की वस्तु मुझको, अस्तु तुमसे
भीख मधु की मांगता मन भी नहीं अलि ज्यों कुसुम से!
चाटुकारी से रिझाना हुई अवहेला तुम्हारी, सुनो नारी!
करूँ अभिनंदन तुम्हारा मौन अब बिन कहे तुमसे।
आज तक तुम फूल, तितली, गीति थीं वह छोड़ता हूँ।
प्रीति, कवि कृत प्रेयसी की प्रीति थीं वह छोड़ता हूँ।
विश्व मधु का कुंड था, मन तरी थे पतवार भुजद्वय।
सुनो नारी! निरादर की रीति थी वह छोड़ता हूँ। (वही)

[3]एक खड़ा उल्लास लुटाता एक जमा करती निज पीड़ा।
गूंगी और भरी आंखों से देख रही मानव की क्रीड़ा॥
पशुता के कीड़े सा वह, चीत्कार भरी चिर दोहित नारी।
पंख कटे जिसके प्राणों के मूक रुदन सदियों से जारी॥
पति की काम-तृप्ति की नाली बच्चे जनना जिसका संबल।
स्वाद बना निर्यातन जिसको क्रीत विवश चिर शोषित प्रतिपल॥
(रामेश्वर शुक्ल "अंचल"—किरणवेला : तीन चित्र, पृ० १२५)

उठता है .—

"नहीं, नहीं, वह नहीं ।
यह तो घृणा के सतत मूर्तिमान व्यंग-सी ।
कर भी उपेक्षा कहाँ सकती
रूप और रक्त शोषण के अंध लालचों की
प्राण कहां इसके विरोध में
गुड़िया-सी निष्क्रिय विवेकहीन
सूखी सरिता सी लुटी चिर विकृता ।
एक एक शोकग्रस्त झांकती युगावधि ज्यों
एक एक शिशु के भयानक स्वरूप से ।
× × ×
आदिम भयकर महा निकृष्ट प्रश्न-सी
बर्बर शताब्दियों से चलती जो आ रही
उत्तर विहीन जो नारी है ।[1]

शोषिता नारी का साक्षात स्वरूप कवि को उस ग्राम युवती में मिलता है जिसका रूप यौवन और मद दुखों से पिसकर असमय ही नष्ट हो जाता है ।[2] उस कठोर परिस्थिति को भी कवि ने शोषण ही माना है जब पति के विदेश जाने पर नवयुवती वधू का रूप जमींदारों की भय की कथाओं को लेकर ही समाप्त हो जाता है :—

"कहीं पेट की आग बुझाने गए पिया तज इसकी नगरी
बीते कितने वर्ष इसे यों पथ पर अपनी रैन बिताते
और खुली आंखों में इसकी अब तो कोई स्वप्न न आते
उसकी भी आई थी आमों सी बौराती प्रखर जवानी
किन्तु गई चुपचाप जमींदारों के भय की छोड़ कहानी ।[3]"

---

[1] रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'—किरणवेला : 'दानव', पृ० ६७-६९.

[2] रे दो दिन का उसका यौवन ।
सपना छिन का रहता न स्मरण
दुःखों से पिस दुर्दिन में घिस
जर्जर हो जाता उसका तन
बह जाता असमय यौवन धन ।
बह जाता तट का तिनका
जो लहरों से हँस खेला कुछ क्षण ।
(सुमित्रानन्दन पन्त—ग्राम्या : ग्राम युवती, पृ० १९)
तथा देखिए—शिवमंगल सिंह "सुमन"—प्रलय सृजन : गुनिया का यौवन.

[3] अंचल—किरण वेला : शोषिता पृ० ४८.

रूप शोषण का सबसे भयकर प्रमाण वेश्या है जो युग-युग से पुरुष की उद्दाम वासना की साक्षी रही है।[1] कवि उस मुजरा-घर का कटु चित्र खीचता है जहा 'जन्म जन्म की संगिनी, सहचरी जन्म जन्म की, रूप राशि गुण राशि नेह की राशि' नारी 'बुझते दीपक का सा मुखडा' 'और घायल कोयल की सी वाणी'[2] लिए हुए धनवानों की इच्छा पूर्ति करती है, जहाँ तबला भी तीखे स्वर मे चिल्लाता है —

"मेरी तालों पर पड़ते हैं पग नारी के।"[2]

और सारगी ढीले तार कहते हैं :—

"हाय पुरुष करे नारी से क्या क्या आशा
आशा क्या क्या !"[2]

रोटी के मीठे राग की साधना इस नारी के प्रति कवि का सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण उसके स्वप्न मे दिखाई पडता है :—

"पलकें मुँदी अचानक मैंने देखा सपना
सपना जैसा पहले कभी न देखा सपना
मां की गोद, गोद में मैं था
सिसक सिसक रोता जाता था।

× × ×

देखी विलपती हुई नारियाँ
सब की सब घुन लगी हुई पीढ़ी की ये पद दलित बेटियां।
सभी उर्वशी की वे बहने,
मूर्तिमान हो उठी शीघ्र युग युग की पीड़ा
पीड़ित यह नारीत्व और इसकी यह प्रतिमा
"अनी आज मां मेरी
मुझे जन्म देने वाली नारी।"[2]

कवि नारी शोषण के विशद इतिहास की रेखायें खींचता हुआ स्त्री के भोलेपन और अबोधपन के विपरीत पुरुष की क्रूरता, वचकता और कपट का मार्मिक चित्र उपस्थित करता है। पुरुष की एक स्मृति पर नारी अपना सब कुछ अर्पण करके अपने प्रेय में डूब जाती है। किन्तु उसका प्रेम उसका बधन हो जाता है, उसका मधुर हास्य आसुओं मे बदलते देर नहीं लगती। पवित्र प्रेम नारी का विनाश करनेवाला हो जाता है, क्योंकि पुरुष उसका मूल्य नहीं आँकता पुरुष तो शरीर के सौंदर्य का मूल्य आँकता है। ज्योंही वक्त के प्रभाव से शरीर का सौन्दर्य कम होता है त्योंही पुरुष का समस्त प्रेम काफूर के समान उड जाता है। पुरुषों की इस वासना ज्वाला मे युग युग से नारी पतग के समान

[1] उदयशकर भट्ट—अमृत और विष : 'नर्तकी', पृ० ७९, तथा
रामेश्वर शुक्ल—मधूलिका : आज मरण की ओर, पृ० ५-७.
[2] देवेन्द्र सत्यार्थी—'नर्तकी', हंस, फरवरी मार्च, १९४५.

जलती रही है, बलिदान करके भी चुप रही है, प्रेम करके भी तृप्ति रही है। चचल पुरुष शिष्टाचार आदि नही जानता। वह अपनी वासना पूर्ति में ही नारी के मूल्य की इति जानता है।[1] इस प्रकार जब पीडित और शोषित ही आधुनिक कवि के आकर्षण के केन्द्र हैं,[2] और जब प्राचीन तथा सास्कृतिक आदर्शों के प्रति उसकी श्रद्धा बहुत ही कम रह गई है[3] तो उन पौराणिक कथानका तथा नारी के सतीत्व, पतिव्रत आदि धर्मों को, जिनको गत युग के कवि ने भी आदर की दृष्टि से देखा था, के प्रति वर्तमान युग के कवि का दृष्टिकोण सर्वथा बदला हुआ है। वह नारायण, ब्रह्मा, पाराशर और याज्ञवल्क्य को स्वेच्छाचारी क्रूरपुरुष का प्रतिनिधि मानता है।[4] सीता आज आदर से अधिक दया की पात्री है।[5] धर्मशास्त्रो के अनुसार नीच, कुरूप क्रूर पतित तक की भक्ति करने का जो नियम स्त्री के लिए पात धर्म और सतीत्व के नाम से बनाया गया है उसे आज का कवि गुलामी

[1] विश्वम्भरनाथ—'नारी', विशाल भारत, नवम्बर १९३७

[2] आज असुन्दर जगते सुन्दर प्रिय पीड़ित शोषित जन,
जीवन के दैन्यों से जर्जर मानव सुख हरता मन।
(सुमित्रानन्दन पत—युगवाणी : मूल्यांकन, पृ० ३५)

[3] क. सस्कृति, कला सदाचारों से भव मानवता पीड़ित,
स्वर्ण पींजड़े में है बन्दी मानव आत्मा निश्चित।
(पत—युगवाणी : मूल्यांकन, पृ० ३५)

ख. और उनका होगा क्या
संस्कृति और न्याय का जो ढोग करते
पाप पुन्य मर्यादा शासन व्यवस्था के
नाम पर रचते प्रतिष्ठा की समीक्षा
शोषण से कायम कर नाजायज सत्ता।"
(अंचल—किरण वेला : दानव, पृ० ६१)

[4] "नारायण को अभिज्ञान न था,
मर्यादा का कुछ ध्यान न था।
तुलसी कैसे आकृष्ट हुई
प्रेम से ही कैसे भ्रष्ट हुई
वार्धी की करुणा और व्यथा
ब्रह्मा की कलुषित पाप कथा।
पाराशर याज्ञवल्क्य ज्ञानी,
कैसी की तुमने मनमानी।
(विश्वम्भर नाथ—'नारी'. विशाल भारत, नवम्बर, १९३७)

[5] पार्श्व शोकांत नाटिका की
सीता अशोक वाटिका की। (वही)

और कैद मानता है .—

"खो खाना कपड़ा और गहना,
तुमको कैदी बन कर रहना।
हो जालिम, घातक क्रूर पती,
फिर भी सहना है मूक सती।
पति धर्म, गुलामी या बधन,
ए नारि तुम्हारा अभिनन्दन।"[1]

नागा क एकान्त प्रेम को वह विशेष महत्व नही देता।[2] उसका कहना तो यह है

"दमयन्ती सावित्री सीता
इनका प्रियतमे ! समय बीता"।[3]

सामतयुगीय आदर्शो के कारण जो नारी नर की छाया मात्र रह गई है, उसकी सपत्ति के समान हो गई है, और जो घर के खाने मे पड़ी ससार से विमुख होकर पशु की भाति पालित होकर जीवन-यापन करती है, आज के कवियो की, सहनशीलता, कुल गौरव, लज्जा, कोमलता आदि गुणो से सपन्न आदर्श न होकर गहन चिंता का विषय है।[4] वह अपने समाज को समझाने का प्रयत्न करता है कि .—

"योनि नही है रे नारी, वह भी मानवी प्रतिष्ठित,
उसे पूर्ण स्वाधीन करो, वह रहे न नर पर अवसित।
हृदय क्षुधित मानव समाज पशु जग से भी है गर्हित,
नर नारी के सहज स्नेह से सूक्ष्म वृत्ति हो विकसित।
आज मनुज जग से मिट जाए कुत्सित लिंग विभाजित,
नर नारी की निखिल क्षुद्रता, आदिम मागो पर स्थित।

[1] वही.
[2] नित नए नए शृगार करो।
पुरुषो का आदर प्यार करो।
मन में हो तड़पन या पीड़ा
प्रियतम चाहें असीम क्रीड़ा।
क्या सच्चा नेह यही नारी
जीवन का ध्येय यही नारी
पर यह कुछ लक्ष्य महान नही
इसमें आदर सम्मान नहीं। (वही)
[3] वही.
[4] सुमित्रानन्दन पंत—युगवाणी : नर की छाया, पृ० ६०,
तथा ग्राम्या : नारी, पृ० ८५.

सामूहिक जन भाव स्वास्थ्य से जीवन हो, मर्यादित,
नर नारी की हृदय मुक्ति से मानवता हो सस्कृत।[1]

यह मुक्ति उन दासता के बधनो से होनी है जो युग-युग से नारी के मन और शरीर को बाँधे रहे हैं। स्वर्ण के आभूषण उसी दासता की बेड़ियाँ हैं, क्योंकि इन्हें देकर पुरुष उसे खरीद लेता है, उसकी स्वतन्त्र गति को अवरुद्ध कर देता है, उससे सजी हुई गुड़िया बना कर उसके अधिकार छीन लेता है। समाज मे नारी और नर की स्थिति मे अतर है। कवि उस अतर को दूर करके मानव के साथ मानवी का भी जीवित और स्वतन्त्र अस्तित्व देखना चाहता है। जो नारी अभी तक योनि मात्र रह गई है, जिसकी आत्मा का प्रकाश पुरुष की वासना ने नष्ट कर दिया है, जो पशु के समान ही गृह के बन्धनो मे जीवित है, उसे पूर्ण सामाजिक स्थिति प्रदान करके कवि मानव की वास्तविक जीवन सगिनी के रूप मे देखना चाहता है और इस प्रकार प्रेम के आदान प्रदान को एक शुचि पावन रूप मे देखना चाहता है जिससे वह एक ओर तो पुरुष की ऐद्रिक तृप्ति मात्र का साधन न रह जाय और दूसरे स्वय भी प्रेम को प्रकट करने का अधिकार रखे। इन विचारो को लेकर कवि नारी की मुक्ति का आदेश देता है :—

"मुक्त करो नारी को मानव!
चिर बदिनी नारी को
युग युग की बर्बर कारा से
जननि सखी प्यारी को॥[2]

यह तर्कमय और शाति पूर्ण उपदेश छायावादी युग मे जन्म लेने वाले एक कवि का है। प्रगति काल का कवि परिवर्तन की आकाक्षा मात्र से सतुष्ट नही रहता वह सक्रिय परिवर्तन चाहता है। इस सक्रिय परिवर्तन के लिए यदि कुछ नष्ट भी हो जाय तो उसे चिता नही है। इसीलिए नारी की कोमलता, लज्जाशीलता, विनम्रता, अहिंसात्मकता आदि की उपेक्षा करके वह नारी को भी अपनी परिस्थिति से असतुष्ट और अग्निमय बना देता है। शात उपदेशों पर न रुक क्रान्ति और विध्वस की भावना से भर कर वह नारी के भी विद्रोही और हिंसात्मक रूप की कल्पना करता है। वह नारी के रणचण्डी रूप को देखना चाहता है :—

"प्रतिमा की तुम प्रतिरूप बनो,
रणचडी की अनुरूप बनो।
जो खड्ग हस्त खप्पर वाली
फिर प्रलय गीत गाओ काली

---

[1] आत्मा—नारी, पृ० ८५.
[2] सुमित्रानन्दन पत—युगवाणी : नारी, पृ० ५८.

नर मुंडो की माला लेकर
अन्यायो की आहुति देकर।
शिव की छाती पर नृत्य करो
भीषण ज्वाला आरक्त करो।"[1]

कवि को विश्वास हो रहा है कि नारी एक दिन अवश्य यह रूप धारण करेगी :—

"क्रांति का तूफान जब विश्व को हिलायेगा
जब शोले से करेंगी सत्कार
ये बाजार की असवृता निर्लज्ज नारियाँ
जो न योनिमात्र रहकर बनेंगी प्रदीप्त
उगलेंगी ज्वालामुखी"[2]

यह भावना स्वभावत. आवेश और उत्तेजना के कवि अचल के समुख "मरघट की महा कराली" को उपस्थित कर देती है। कवि "लख लुटती नारी की लज्जा व्यभिचारी का हँसते जाना", और "बेरहम माता के आगे घुट घुट शिशु के प्राण निकलते" देख क्षोभ और क्रोध से फट पडना ही चाहता है कि यह "महाक्रान्ति की जागिनी माया" जो उच्छृखल और भैरवी है, "बरबादी की प्रतिमा" है, कवि की आकाक्षापूर्ति सी बनकर आ जाती है।[3] अचल की आकाक्षा चाहे कल्पनाहीन ही हो किन्तु मिलिंद के लिए तो

---

[1] विश्वम्भर नाथ—'नारी', विशाल भारत, नवंबर १९३७

[2] अचल—किरण वेला · दानव, पृ० ७०

[3] बैठा था विस्फोट भरा मैं सहसा दिखी तुम्हारी काया।
रक्तस्नात प्रतिहिंसा से ज्यों लथपथ हो जुनून उठ आया।
मौन विवसना चली अकुठित विपथ मुखी ममता को मारी।
महाक्रान्ति स्त्री जगिनि माया झन झन बजती शिरा तुम्हारी।
आज रक्तस्नात झकाड़ो से उलझी चोली में चचल।
सर्वनाशिनी बिजली सी तुम तेजवत आतीं उच्छृखल।
दूर उधर सुनता मैं भूखो की सूखी ज्वलत सिसकारें।
इधर देखता जलते माणिक सी दो चिर प्यासी तलवारें।
आधी रात अखड भैरवी सी तुम ईगुर गिरि की ज्वाला।
घोर युद्ध की प्यास लिए धू धू धू तृष्णानल विकराला।
जान रहा हूँ आज तुम्हें फिर एक महासघर्ष मचाना।
आज महा शोषक हत्यारो के शोषण में आग लगाना।
भर लाई हो तप्त कठिन अगो में तूफानो का आसव।
आज तुम्हें फिर विश्व बदलना आज तुम्हें क्या कठिन असभव।
आज तुम्हें रणभेरी में घर घर से निकले अगारे।
आज बधे ज्वालागिरि झुलते इगित पर सुदरी ! तुम्हारे।

वर्तमान युग की वह नवीना वास्तव मे सतोष का विषय है, जिसने शृखलाओ को तोड़ कर स्वतत्रता प्राप्त की है, जो असहाय निरीह अबला न रह गई है, स्वाभाविक वृत्तियों के सहज विकास करती हुई भी विलास और सजावट की वस्तु नही है, जो निर्जीव प्रतिमा के भाँति भक्ति और श्रद्धा की भेटों से गर्वित न होती हुई भी पुरुष की सहचरी है, जिसका आत्म-सम्मान मस्तक उन्नत किए खडा है, और जो देह, हृदय, मस्तिष्क तत्व के पूर्ण समन्वय को लेकर मानवता की सर्वोच्च सिद्धि को लिए अग्रसर है।[1] मानवी का यही सत्य

किसके पजर मे साहस जो सहन करे सौंदर्य तुम्हारा।
आज सजाने आ निकली तुम किसके उष्ण रक्त की धारा?
मूल मंत्र मेरे जीवन का कुरबानी मैं कवि अभिमानी।
आओ बरबादी की प्रतिमे रचू तुम्हारी मैं अगवानी।

(रामेश्वर शुक्ल 'अचल'—किरणवेला . आज चली तुम खोले, पृ० ५७—५८.

[1]शत शत प्राचीर लांघ कर तुम निकली हो नव जीवन पथ पर,
है सुना तुम्हारा अखिल विश्व ने आज शृखला खडन स्वर।
तुम इद्रधनुष सी, विद्युत सी, बधन तुमको अनुकूल नही,
हो सुदर निस्सदेह, किन्तु तुम पुष्प-पात्र का फूल नही।
जड़ता पर कर प्रहार, नर्तन करते ये अरुण चरण चचल,
तेजस्वी नवयुग के उर की तुम मुक्ति रागिनी हो निर्मल।
तुम नूतन की जयध्वजा, देख तुमको है कांप उठा थर थर,
पाखंड पुरातन का सारा, निष्प्रभ वैभव का आडबर।

तुम युग युग के अवरुद्ध हृदय की विद्रोही वाणी सी बन,
हो फूट पडी सहसा, जग का है प्रतिध्वनित तुमसे कण कण
कन्या, पत्नी, मा के पद के सीमित गौरव में ही फूली
रहकर, तुम पीड़ित मानवता का आवाहन कब हो भूली?
तुम भी स्वातत्र्य समर में हो प्राणो की बाजी रही लगा,
हो पूर्ण सहचरी बनी पुरुष की आज साम्य का मंत्र जगा।
उर की दरिद्रता ढकने को ढोती आभूषण भार नही
आवरण हृदय की कायरता के रखती हो हथियार नही।

तुम एकाकिनी आज पशुबल को अभय चुनौती देती हो,
इतिहास बदलने को जग का आत्माहुति का व्रत लेती हो।
असहाय निरीह नही तुम, जो वात्सल्य हिडोले में झूलो,
प्रतिमा भी नही, भक्ति, आदर श्रद्धा की भेंटो पर फूलो।
इतनी भावुक भी नही प्रेम की मनुहारं में पथ भूलो;
निस्तेज नहीं, अपमान गर्त का जो तुम अतिम तल छूलो।

स्वरूप सुमित्रानदन पत ने "मजदूरिनि" और "ग्राम नारी" मे देखा है। स्वस्थ और स्वतत्र मजदूरिनि काम लज्जा को त्याग कर, द्वद्व प्रतिष्ठा को भूल कर पुरुषों के साथ समान रूप से कार्य करती है, वह कुल-वधू के समान पराश्रिता होकर गृह में नही रहती, वरन् एक मुक्त स्वस्थ जीवन व्यतीत करती है :—

"नारी की सज्ञा भुला, नरों के संग बैठ,
चिर जन्म सुहृदय सी जन हृदयों में सहज पैठ,
जो बांट रही तुम जग जीवन का काम काज,
तुम प्रिय हो मुझे न छूती तुमको काम लाज।
सर से आंचल खिसका है—धूल भरा जूड़ा,
अधखुला वक्ष, ढोती तुम सिर पर धरे कूड़ा,
हसती बतलाती सहोदरा सी जन जन से,
यौवन का स्वास्थ्य झलकता आतप सा तन से।
कुल वधू सुलभ सरक्षणता से हो वंचित,
निज बधन खो, तुमने स्वतत्रता की अर्जित।
स्त्री नहीं, आज मानवी हो तुम निश्चित,
जिसके प्रिय अगों को छू अनिलातप पुलकित।
निज द्वद्व प्रतिष्ठा भूल जनों के बैठ साथ,
जो बटा रही तुम काम काज में मधुर हाथ,
तुमने निज तन की तुच्छ कंचुकी को उतार,
जग के हित खोल दिए नारी के हृदय द्वार।[1]

'मानवी' की आदर्श प्रतिमा ग्राम नारी है। उसने नर का सहचरत्व स्वीकार करके

सुख में दुख में समभाग, चाहती जीवन में समरस होना।
मानव की भांति चाहती हो, हसना, रोना पाना खोना।
अत्याचारों के आगे तुम मस्तक उन्नत कर उठ जाती,
कष्टों पर और अभावों पर प्राणों की करुणा बरसाती।
स्वाभाविक स्नेह सुधा पाकर समोहन मदिरा ठुकराती।
तुम सृजन प्रलय का हर्ष शोक या निज-पथ पर बढ़ती जाती।
तुम अखिल विश्व के ज्ञान कोष पर ममता अथक दिखाती हो,
तुम महाशक्ति के अमर स्रोत से सदा प्रेरणा पाती हो,
तुम देह, हृदय, मस्तिष्क तत्व के पूर्ण समन्वय को लेकर
मानवता की सर्वोच्च सिद्धि के चलती हो दुर्गम पथ पर।
(जगन्नाथ प्रसाद मिलिंद—'नवयुग के गाने, : नवीना, पृ० ४१-४६)

[1] ग्राम्या—ग्राम नारी, पृ० २०-२१.

श्रम के द्वारा क्षुधा और काम को मर्यादित कर लिया है। वह कोमलांगी होकर भी शोभा पात्र मात्र नहीं है, वह यथार्थ और जीवन के संघर्षों से परिचित है। वह सहज स्नेह से युक्त होकर द्वंद्व मुक्त है। वह दैन्य और अविद्या से पीड़ित होकर भी स्नेह, शील, सेवा और ममता की मूर्ति है। इस मानवी को कवि कृत्रिम और विलास पूर्ण जीवन व्यतीत करने वाली द्वंद्व पीड़ित नागरी और वर्गनारी से बहुत दूर रखता है।[1] इसीलिए कवि पत शिक्षित और संस्कृत भी, नारी की सौंदर्य मधुरिमा और महिमा से मंडित भी, नर की समकक्षिणी भी आधुनिका को नारी-हृदय की विभूति और सत्य से वंचित होने के कारण, कृत्रिम और आडंबर पूर्ण जीवन व्यतीत करने के कारण फूल, लहर, तितली, विहगी, मार्जारी आदि विशेषण प्रदान करते है किन्तु उसे 'नारी' नहीं कहते।[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि समाजवाद से प्रभावित इस युग का कवि नारी को मानव की समकक्षिणी मानवी के रूप में देखता है। मानवी से उसका तात्पर्य है—नारी जो अपने शारीरिक और मानसिक विकास में स्वतंत्र होकर जगत् का विकास करती है, आर्थिक दृष्टि से पुरुष की आश्रिता नहीं रहती और श्रम के क्षेत्र में समान अधिकार रखती है। यहां पर हम गत युग के कवि की नारी-भावना और इस युग के कवि की नारी-भावना

---

[1] वही.

[2] पशुओं के मृदु चर्म, पक्षियों से ले प्रिय कोकिल पर,
ऋतु कुसुमों से सुरंग सुरुचिमय चित्र वस्त्र ले सुन्दर
सुभग रूज, लिपस्टिक, स्नोस्टिक पौडर से कर मुख रंजित,
अंगराग क्यूटैक्स अलक्तक से बन नखशिख शोभित,
सागर तल से ले मुक्ताफल खानों से मणि उज्ज्वल,
शत स्वर्णों से अंकित तुम फिरती अप्सरि-सी चंचल।
शिक्षित तुम संस्कृत, युग के सत्याभासों में पोषित,
समकक्षिणी नरों की तुम, निज द्वंद्व मूल्य पर गर्वित।
नारी की सौन्दर्य मधुरिमा औ महिमा से मंडित,
तुम नारी उर की विभूति से, हृदय सत्य से वंचित,
प्रेम, दया, सहृदयता, शील, क्षमा, पर-दुःख-कातरता,
तुममें तप, संयम, सहिष्णुता नहीं त्याग तत्परता।
लहरी-सी तुम चपल लालसा श्वास आयु से नर्तित
तितली सी तुम फूल फूल पर मँडराती मधुकण हित।
मार्जारी तुम नहीं प्रेम को करती आत्म समर्पण,
तुम्हें सुहाता रंग प्रणय, धन-पद-मद, आत्म प्रदर्शन
तुम सब कुछ हो, फूल, लहर, तितली, विहगी मार्जारी,
आधुनिके, तुम नहीं अगर कुछ, नहीं सिर्फ तुम नारी।
(युगवाणी—आधुनिका, पृ० ८३)

के अंतर को समझ सकते। गत युग के कवि ने नारी को अनन्त विभूति सपन्ना देवी माना और उसके रूप और शक्ति की पूजा की। ऐसा करता हुआ वह आदर्शीकरण की ओर अधिक झुक गया और नारी को प्रतिमा ही बना बैठा। साथ ही नारी के गौरव को स्वीकार करता हुआ भी वह नारी स्वातन्त्र्य और समानाधिकार की भावना से आशंकित ही रहा था और पतिव्रत धर्म, एकान्त प्रेम, त्याग और सतीत्व का ही प्रतिपादन करता रहा था। उसने नारी को सुकुमारी (अबला) कुलवधू के ही रूप में देखने का साहस किया था और कार्यक्षेत्र गृह ही माना था। किन्तु इस युग का कवि नारी को मानवी के रूप में देखता है—मुक्त, स्वतन्त्र, स्वस्थ, स्वावलंबिनी, श्रमशीला सहचरी। युगों से पुरुष ने नारी के इस रूप को विकसित होने से रोक रखा है, उसे मानवी न मानकर योनिमात्र की स्थिति दे रही है, अपने भोग, विलास, क्रीडा और मनोरंजन का साधन बना लिया है, और इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए नारी के लिए विविध नियम बना दिए हैं, जो नारी के स्वाभाविक जीवन-प्रवाह में बाधक तो हैं ही, साथ ही उसे परावलम्बी पशु की भांति भी बना देते हैं। आधुनिक कवि का उद्देश्य नारी को मुक्त करके उल्लिखित मानवी रूप का ही विकास करना है। इस उद्देश्य की सिद्धि में तत्पर वह गत युग के कवि के विश्वासों और आशंकाओं से मुक्ति पा चुका है। इसका अर्थ यह नहीं है कि समाजवादी कवि के हृदय में नारी के प्रति आदर भाव नहीं है। आदर भाव तो है ही और इसीलिए वह उसके अधिकारों और स्वत्वों के लिए क्रांति कर रहा है, अन्तर केवल इतना है कि वह नारी को 'देवी' (जिसकी पूजा में विभोर होकर भक्त कल्पना के पंख लगाकर आकाश में उड़ता है) नहीं, 'मानवी' (समाज की स्थूल व्यक्ति) के रूप में देखता है।

अस्तु, 'मानवी' तो समाजवादी कवि की आदर्श नारी भावना कही जा सकती है, जैसा कि गतयुग में हम "सत् रूप" के सबन्ध में कह सकते थे। इस रूप के विपर्यय हैं 'शोषिता' और 'वर्गनारी' (वर्गनारी भी शोषिता के अंतर्गत आ सकती है)। इनको 'मानवी' रूप में परिवर्तित करने का अधिकांश उत्तरदायित्व बूर्ज्वा समाज या पुरुष पर है। हम देख चुके हैं कि गत युग में नारी का 'सत्' या 'असत्' होने की कोई जिम्मेदारी समाज की नहीं थी और न असत् के सत में परिवर्तन होने में ही पुरुष का प्रयत्न वांछनीय था।

हम समझ सकते हैं कि गत युग के कवि की नारी भावना नारी के हृदय पक्ष और स्वभावज गुणों को लेकर चली थी, किन्तु इस युग के कवि का दृष्टिकोण नारी की वर्तमान सामाजिक और आर्थिक दशा पर आश्रित है।

२. क्रांतिवादी नारी भावना :

क्रांति की भावना इस युग के काव्य की महत्व पूर्ण विशेषता है। आर्थिक, सामाजिक—विशेष रूप से नैतिक—और राजनैतिक व्यवस्था के प्रति जो क्षोभ और असंतोष कवि के हृदय में है उसमें यह उद्भूत है। क्रान्ति के भाव को उत्तेजित और उग्रतर करने के लिए आग में घी के समान आया द्वितीय महायुद्ध (१९३९-४६), तथा

१९४२ का राष्ट्रीय आंदोलन। हमें देखना है कि विद्रोह और क्रांति की इस भावना के बीच आधुनिक कवि के मस्तिष्क मे नारी की क्या स्थिति है।

मूलत: क्रान्तिवादी नारी भावना गत युग की "शक्ति भावना" का ही विकास है। गत युग में, जैसा कि हम देख चुके हैं, नारी को एक प्रेरणामयी, अनत विभूति सपन्नाशक्ति के रूप में माना गया, और सृजन तथा प्रलय की सामर्थ्य का भी आरोप उस पर किया गया। उस युग का कवि 'शक्ति' के सृजनात्मक पक्ष और प्रेम युक्त प्रेरणा पक्ष की ओर अधिक आकृष्ट रहा, क्योंकि उसकी दृष्टि स्वप्न सुख पर अधिक जमी थी। इस युग के कवि ने शक्ति के प्रलय पक्ष को अपनाया है और उस प्रथम स्थान दिया है, क्योंकि वह समाज और शासन की तत्कालीन व्यवस्था मे तत्काल परिवर्तन—क्रांति पूर्ण परिवर्तन—चाहता है। फलत इस युग के कवि की "शक्ति भावना" प्रशान्त और सृजनात्मक न रह कर ज्वालामयी और ध्वसकारी हो गई है।

वास्तव मे कवि, या व्यापक रूप से पुरुष, अपनी आकाक्षाओ के अनुसार नारी की रचना या कल्पना कर लेता है। जब वह भक्तिभाव मे लीन वैरागी था तो उसने नारी से भी काम का दमन चाहा, जब वह कामरत विलासी बना तो उसने नारी को भी परकीया और अभिसारिका बना लिया, जब वह पलायनवादी स्वप्नद्रष्टा बना तो नारी को उसने "सपने की प्रतिमा" बना लिया, और आज जब वह क्रांति का सदेश वाहक है तो स्वभावत: नारी को भी क्रान्ति की वृतिका के रूप म देखता है। कवि की आखों में आज के पुरुष का जब यह रूप है —

> "मैं भूकम्प प्रलय जल प्लावन मैं नवीन युग का धाता हूं।
> वर्तमान का मैं वर वाहन भूत भविष्यत् का ज्ञाता हूं।
> रण विद्रोह क्रान्ति का उद्गम यौवन धन जीवन दाता हू।
> हिल उठता है लोक लोक जब मुस्काता मैं अगडाता हू।[1]

तो स्वाभाविक है कि नारी यह कहती हुई उसके सम्मुख आये —

> "एक विप्लव वादिनी,
> हुंकारित हो जाय अरि-जय-नाद से जग ध्वस जब,
> कर प्रकपित, शिथिल साहस, हो विमूर्छित शक्ति सब।
> अग्रदूती बन बढ़ द्रुत रण-मरण शृगार लेकर,
> प्राण में उन्मादिनी।"[2]

जब कवि स्वय ज्वाला बनने को तैयार है तो नारी से अग्निपरी बनने के लिए कहना स्वाभाविक है,[3] जब ऊँच नीच, सेवक राजा के भेद के काले धब्बे मिटाने के लिए पुरुष

---

[1] आरसी प्रसाद सिंह—संचयिता, पृ० ८८, ११८.

[2] वही, पृ० ११२, १४९.

[3] बनो कुमारी अग्नि परी, मैं
मूर्तिमान बन जाऊँ ज्वाला। (हरिकृष्ण प्रेमी—अग्निगान, पृ० ७९)

रुद्र का रूप धारण करता है तो नारी काली बन कर आती ही है।[1] सुधीन्द्र ने 'प्रलय वीणा" मे युग पुरुष की भैरवी और क्रांति के नूपुरो का समन्वय[2] करके इस भाव की मार्मिक व्यजना की है।

अस्तु, आज का कवि युग की आवश्यकता के अनुसार नारी को उग्र और विध्वसकारी शक्ति के रूप मे देखता है। जगती मे मचे हुए हाहाकार को सुनता हुआ, देश विदेश मे सुलगी हुई आग को देखता हुआ नव युग का क्रांति सदेश सँभाले हुए आज के "तूफानी" कवि का नटराज और शिवा (कपालिका) की कल्पना अत्यन्त आकर्षक है। आरसीप्रसाद सिह दुष्ट दलन हेतु शिवा के कठोर और कराल रूप का आह्वान करते हुए घर-घर मे विप्लव की बुद्धि सुलगाने को, वसुधा पर शौर्य का प्रवाह करने को, मेल के स्थान पर क्रांति की रूप रेखा खींचने का कहते है।[3] इस कवि के लिए नारी का सुकुमारी

---

[1] "पुरुष रुद्र बन कर आ जावे, नारी काली बन कर आवे,
युग युग से जो रिक्त पड़ा है वसुधा का खप्पर भर जावे।'
(हरिकृष्ण प्रेमी—अग्निगान · नवनिर्माण, पृ० १८)

[2] "बजी है भैरवी वह युग पुरुष की लो
उठे हैं छम छमा वे क्रान्ति के नूपुर"
(सुधीन्द्र—प्रलय वीणा · सगीत, पृ० १०)

[3] उष्ण उष्ण रक्त आज दुष्ट दुराचारियों के
पी पी के पिपासिते, न प्यास क्यों बुझाती री!
अपने कुलिश से कलेजे से तू लगा लगा
शिवे, आज शवों से जुड़ाती क्यों न छाती री?
प्रकट हुए हैं देख, कितने महिष रक्त,
मार मार इन्हे क्यो न हिए हुलसाती री?
मचा है करुण हाहाकार शोर चारो ओर
सुन के पुकार दीन दौड़ क्या न आती री?
आरी आज डंकरी, निशकरी, परशुपाणी,
क्रूर करवाल ले कराल कर वर में।
तेरे जा समुद्र लांघ झील ताल हाट बांट,
सुलगा दे विप्लव की वह्नि घर घर में
तेरी ध्वस मूर्ति देख कायरता भाग जाय,
जाग जाय रुद्र स्फूर्ति शैल स्फोट स्वर में।
"क्रांति चिरजीवी हो" नगारा ये बुलद होवे
बन बन, ग्राम ग्राम, नगर नगर में।
हर ले हमारी सारी शीतलता शोणित की,
निर्बल नशों में बल पौरुषता भर दे!

रूप और प्रेमी रूप न्यूनतम आकर्षण का विषय है।[1] वह जागृति के इस युग के अनुसार ही नारी को भी जाग्रत देखना चाहता है:—

साहस अटूट दे, न फलने दे बैर फूट
लोचनों में काल घूट सा भर जहर दे।
विश्व विजयिनी शक्ति बाहुओं में, मानस में
जननी की भक्ति पूत भावना अमर दे
सिन्धु सी तरंग दे, तरंग सा अमोघ लक्ष्य,
अंग अंग में उमंग यौवन को धर दे।
चल मदमत्त केसरी की पीठ पर चढ़,
कुंजों में चुन मत कुसुम बन बालिका।
तेरे पद धार से पहाड पाप डोल उठे,
थरथराय शक्ति वह सृष्टि सूत्र चालिका।
लक्ष लक्ष प्राणों के दीप बाल मंगलमयि
मातृ मूर्ति मंदिर में सजा दीप मालिका।
भर भर नर-रक्तधार से कपालिकों को
बोल हर-हर-हर एरी क्रूर कालिका।

\+ \+ \+

लहरा दे शौर्य का समुद्र क्षुद्र वसुधा में,
गौरव सुमेरु को फहरा दे पताका-सी
तीर बन पैठ जा कृतान्त के शरीर में तू,
चीर दे अमा की रात्रि ज्योतिमयी राका सी।
लेकर अखंड न्याय दंड दंड-धारियों के
छत्र औ सिंहासन पै हल जा शलाका-सी।
शूल बन किसी के, फूल धूल को बना दे आज,
भूल जा समूल मेल, खींच क्रांति खाका-सी।

(सचयिता कपालिका, पृ० १२७—१२८)

देखिए—'वीणा' फरवरी १९३८, किरण—"तज सुमन सेज उठ जाग जननि"।
"री चद्र चूड़ को... .. मच जाय प्रलय।"

[1] प्राण प्रेम का खेल हो चुका अब आकर्षणहीन पुरुष ना।
व्रज की वंशी छोड़ हमें अब कुरुक्षेत्र का शंख बजाना।
मेरी राधे प्रेम पंथ पर छोड़ी अब अभिसार रचाना।
तुमको असुरों की दुनिया में है दुर्गा का रूप दिखाना।

(हरिकृष्ण प्रेमी—अग्निगान : नव निर्माण पृ० १४)

देखिए—आदर्श—'समरगीत' : युवती से, पृ० ८४,

नारि नारि, सुकुमारि नहीं यह उचित न, अब कुमारि,
प्रोषितपतिका बन यों कब तक बरसाओगी वारि
बहुत दिवस हो गए बहाते नयनों से जलधार
अब भी तो कुछ कर दिखलाओ इस युग के अनुसार।
ये जागृति का युग नवीन ले आया मंत्र विशेष,
महिलाओ पाखंडवाद का कर दो अब तो शेष
तुम न खिलौने हो पुरुषों के, सेजों के शृंगार
धता बता दो कामुकता, लंपटता को दुत्कार।[1]

और "प्रेमी" भी अपनी प्रेयसी को प्रलय सहेली के रूप में देखना चाहते हैं—

तुम भी प्रेयसि वीणा छोड़ो, हाथों में तलवार उठाओ।
तारों की झंकार नहीं, अब खड्गों की खनकार सुनाओ।
मेरे प्याले में अब मदिरा नहीं रक्त भर भर कर लाओ!
अधरों को ही नहीं देह को भी लोहू में स्नान कराओ।
रंग रास की रजनी बीती,
अब रण की दोपहरी आई
दिशा दिशा से हमको देता
है ताडव का तोड़ सुनाई
अब फूलों की सेज जला दो, शूलों की शैया अपनाओ
नव वसंत का उत्सव त्यागो, अमर मरण त्यौहार मनाओ।
प्रिये प्रजापति के आसन पर महाकाल को अब बैठाओ।
सृष्टि मरे, विध्वंस जिये, सखि महा प्रलय के प्राण जगाओ।
अपनी घनी और जहरीली
वेणी को खोलो अलबेली।
नभ में बादल से फैलाती
आओ मेरी प्रलय सहेली।[2]

हम देखते हैं इस युग के कवि के लिए स्त्री की "वेणी का जहर" पुरुष के "प्रेमपत्र" पर प्रभाव डालने वाली वस्तु नहीं है, और प्रणय तो बंधन ही है।[3] क्रान्ति के युग में यह न केवल नारी का बंधन है वरन पुरुष के भी पैर की बेड़ी है। इस भावना का विकास उत्तेजना और आवेश के कवि अंचल में विशेष रूप से हुआ है। अपनी पूर्वकृतियों में अंचल

[1] आरसी प्रसाद सिंह —संचयिता अग्रदूत, पृ० १७६.
[2] हरिकृष्ण प्रेमी —अग्नि गान : नवनिर्माण, पृ० १३.
[3] केश पाश अपना बिखरा दो बन जाओ तुम आज भवानी
क्रांति कीर्तिधारिणी प्रणय के बंधन तोड़ फेंक दो रानी।"
(सुधीन्द्र—प्रलय वीणा : क्रांति का आमंत्रण, पृ० १०८)

की जो प्रवृत्ति उस वासनापूर्ण छायी रामाय का रूप लेकर आई थी वही "किरण वेला" "करील" और "लाल चूनर" में "मरघट की महाकाली" और "युद्ध की करालिका" की सृष्टि करती है। नारी सबधी अचल की मासल भावना कुछ विकृत तो अवश्य है किन्तु उनके विद्रोही युगक का हमारे सम्मुख स्पष्ट कर देती है। 'करील' मे कवि नारी को विद्रोहियों के कैंप मे बुलाता हुआ भी, जीवन सग्राम मे सहयागिनी बन कर जूझने को कहता हुआ भी उसके जीवन के दोनों पक्षा—प्रम पक्ष और क्राति पक्ष का सामने रखता है —

कधे से कधा मिला छाती से छाती सटा,
रात को बनी थी तुम गीली और रंगीली,
किन्तु दिन में बनो अखंड युद्ध की करालिका[1]।

आगे चल कर "लाल चूनर" मे इस क्राति के कवि के मस्तिष्क मे प्रणय और प्रणयिनी के प्रति जो वितृष्णा दिखाई पडती है वह कुछ ही अशो मे तुलसी आदि की घृणात्मक भावना से भिन्न है। किन्तु इस वितृष्णा का मूल कारण "युद्ध काल" है भक्ति-मार्ग नहा। यह कवि आज के समय प्रणय के "नशीले चाचला" का स्वागत नहीं करता, अब नारी से उसकी माँग दूसरी ही है —

चाहता मैं एक नूतन देश का सवाद तुमसे,
चाहता मै अब न बीती प्रियतमा की याद तुमसे,
चाहता मै आज जलती आग, केवल आग तुमसे,
चाहता मै अब न प्याली में सुरा का झाग तुमसे।[2]

'नवयुग के तरुण त्यौहार द्रोही पर्व' के दिन नारी के प्यार मार्ग से पुरुष की तुष्टि नहीं होती, तब वह नारी से कुछ और ही चाहता है। वह चाहता है कि नारी आज अपने रागमय स्वर मे क्राति की प्रेरणा भर ले, और प्रेमाभिनय- "जादूगरी"—को त्याग दे। नारी पुरुष को तूफानों की सामना करने का शौर्य प्रदान करे, और स्वय भी अग्निय रूप धारण करले—यह कवि की प्रबल आकाक्षा है। इस लक्ष्य की सिद्धि में कवि ऐन्द्रिक सुख का सर्वथा बहिष्कार कर देना चाहता है। अपने साथ नारी के स्वभाव को भी बदल कर वह आज उपभोग के स्थान पर युद्ध की प्रेरणा माँगता है —

देख कर तुमको बिछौने की गुलाबी सुधि न आये ;
युद्ध में बढते चलें छाती फुला मस्तक उठाये।
रूप बिबित हो इन्ही सग्राम लपटों में तुम्हारा ,
मृत्यु की छाया न निष्प्रभ कर सके तब मधु तुम्हारा।"[3]

स्वाभाविक है कि सग्राम की लपटो मे नारी के रूप को देखना चाहने वाले कवि के लिए नारी के प्रेमिका रूप स, जो अपने साथ-साथ पुरुष के भी व्यक्तित्व को अतर्मुखी बना

---

[1] रामेश्वर शुक्ल "अचल" — करील

[2] रामेश्वर शुक्ल "अचल" — लाल चूनर : नारी, पृ० २६

[3] वही — नारी, पृ० ३८-३९.

देता है, घृणा हो जाय। इस भावना से प्रेरित होकर वह कह उठता है :—

"किन्तु नारी, सिर्फ नारी हो तुम्हें मै जानता हूँ
तुम प्रणय की हो खिलाड़िन मै तुम्हें पहचानता हूँ।"[1]

किन्तु इन शब्दो मे 'क्रांति भावना' के अतिरिक्त, जो कवि की व्यक्तिगत दुर्बलता की स्वीकृति है, जो आगे के शब्दो मे और भी स्पष्ट होगी, उसे शायद ही कोई अस्वीकार करेगा। यह हमारे अगले अध्याय का विषय हो जाता है।

क्रांति की भावना ने इनमे भी सहचरी नारी (Comrade woman) की सृष्टि की है जो प्रतिभा सपन्न है और रक्त की स्वभावज प्रेरणाओ से मुक्त है। नेपाली एक सैनिक वातावरण को लेकर उपस्थित होते है जहा युयुत्सु सैनिक को प्रेमालाप की फुर्सत नही, यौवन की ओर दृष्टिपात करने का अवकाश नहीं। तब यौवन की प्रेरणाओं का कुछ मूल्य नहीं रह जाता है —

"अवसर कहता है श्रमजीवी सम्हल, सम्हल फिर मोह न कर
सब कुछ त्याग कमर की अपनी असि से आज विछोह न कर।"[2]

तब नर नारी केवल विप्लव के दो दूत हैं, क्रांति मार्ग के सहयोगी है —

"विप्लव के दो दूत चल पड़े
पथ में नर है, नारी है।"[3]

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस युग के प्रत्यूष काल मे 'नवीन' ने जिस "अनल गान" को 'वीणा' म झकृत किया था[4] उसकी प्रतिध्वनि युग के अधिकाश कवियों के स्वरो मे पाई जाती है। तब निर्माण और नव सृजन से पूर्व इस युग का कवि क्रांति, ध्वसमय परिवर्तन, को अनिवार्य समझता है और प्रचलित व्यवस्थाओं, रूढियों, अत्याचारों के विरुद्ध प्रत्येक प्राणी—किसान, मजदूर, पुरुष, नारी—को उत्तेजित करता है। फलत. वह नारी को (माता, प्रेयसी, भगिनी) इस परिवर्तन मे प्रमुख भाग लेने वाली क्रातिदूतिका के रूप मे देखता है। गत युग क कवि ने अधिकाशत. राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित होकर नारी क शक्ति रूप का आवाहन किया था। किन्तु इस युग के कवि की क्रांति-दूतिका का प्रमुख लक्ष्य वर्गभेद को मिटाना, रूढियो को तोड़ने और आर्थिक समस्या को सुलझाने मे पुरुष के ध्वसमय रूप का सहयोग देना तथा समाज मे नारी-स्वातन्त्र्य अर्जित करना है। क्रातिवादी कवि नारी के हृदयोज्ज्वल शीतल मृदु रूप की अवतारणा नहीं करते वरन रौद्र, भयकर और वीभत्स रूप मे देखना चाहते हैं। इस रौद्र भावना की

---

[1] वही, पृ० २४.
[2] गोपाल सिंह नैपाली— नीलिमा यौवन क्या धूलो की आँधी, पृ० ४७.
[3] वही.
[4] बालकृष्ण शर्मा नवीन—"अनल गान", "वीणा", जुलाई, १९३७.

पूर्व सूचना तो हमें श्री गुलाबरत्न वाजपेयी कृत 'वीरांगना'[1] (१९२९) में मिल जाती है, किन्तु इसका विशेष विकास इस युग में होता है। जब एक ओर राष्ट्रीय संघर्ष उत्तप्त था, दूसरी ओर कम्यूनिज्म प्रज्वलित भावनाओं से उद्वेलित था और तीसरी ओर एक्सिस और एलाइज़ पृथ्वी को रक्त रंजित कर रहे थे, तब कवि का मानसिक निर्माण ऐसा हो कि वह चारों ओर रक्त और विध्वंस देखना चाहे तो आश्चर्य की बात नहीं। अस्तु, ऐसी ही मानसिक परिस्थिति में इस उग्र और रुद्र 'क्रांति धात्रि' का निर्माण हुआ। इसमें विशेष रूप से सहायक हुए हरिकृष्ण प्रेमी, आरसीप्रसाद सिंह, सुधीन्द्र और अंचल। अंचल एक प्रकार से इस भावना का चरम शिखर हैं, क्योंकि उनकी भावना की चरमता में ही एक दूसरी भावना का प्रारम्भ हो जाता है।

---

[1] तान लो उलगिनी कमान, तीर खींचो तुम,
खून से भरी कटार खोंस लो कमर में,
रक्त सरिता में तैर शोणित उछालो खूब,
लपटें उठाओ द्रुत आग सी नज़र में।.. (क्षत्रिका, पृ० २९)

अध्याय १२

प्रगतियुग में मनोविश्लेषणवादी तथा क्षयो रोमांसवादी नारी-भावना

१. मनोविश्लेषणवादी नारी भावना

यह कहना असत्य होगा कि इस प्रकार की भावना को उपस्थित करने वाले कवि मनोविज्ञान के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हैं या व एक मात्र मनोविज्ञान से ही प्रभावित रहे हैं। फिर भी मनोविज्ञान ने प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रीति से इस युग के कवियों के भावधारा को प्रभावित किया है। यह प्रभाव दो रूपों में देखा जाता है.—आत्मगत तथा परगत। प्रथम के फलस्वरूप कवि अपनी असफलतायें, अपनी दुर्बलतायें, अपनी मानसिक दशा, द्वंद्व तथा विचार-विकास को निस्संकोच हमारे सामने रखने लगा है। छायावादी युग में जो एक कुंठा का भाव था जिसके कारण कवि व्यक्तिगत अनेक तथ्यों तथा भावों को छिपा लेता था, वह अब दूर होने लगा, क्योंकि अचेतन की विशेषताओं से परिचित होकर कवि गोपन की व्यर्थता को समझने लगा है। मनोविज्ञान का दूसरा प्रभाव यह है कि कवि नारी की मनोवैज्ञानिक विशेषताओं, उसकी प्रकृति, तन्निहित विधायकतत्व (Positiveness) जीवन शक्ति (Life force) तथा तज्जन्यी दुर्बलताओं के प्रति अत्यन्त सजग है। अज्ञेय को छोड़ कर अभी अधिकांश कवियों की इस प्रकार की भावना में परिष्कार की कमी है। वे संतुलन को खोकर घृणात्मक दृष्टिकोण का ही निर्माण कर सके हैं। सम्यक् दृष्टि से इस वर्ग के कवि, उक्त नवीन विज्ञान के प्रभाव से, यौन चेतना से प्रेरित हैं और उसके सम्बन्ध में किसी प्रकार के गोपन की आवश्यकता नहीं समझते। यौन संघर्ष तथा स्त्री-पुरुष के आकर्षण विकर्षण की शाश्वत कथा इनकी विचारधारा के केन्द्र हैं। फलतः अधिकतर, नारी का ऐन्द्रिक रूप ही इन कवियों की दृष्टि के सम्मुख रहा है। ये कवि नारी को केवल नारी, जीव-शास्त्रीय अर्थ (biological sense) में नारी, के रूप में देखते हैं। नारी उनके सम्मुख अपने विविध संबंधों—माता, भगिनी, कन्या, पत्नी—आदि को लेकर कम ही आती है। पुरुष को केवल पुरुष और नारी को केवल नारी ही समझा जाता है। अस्तु, छायावादी कवियों की नारी विषयक अपरूप उपासना को छोड़ कर इस युग के कवि मांसल भूमि पर आगए हैं। अधिकांश कवि निराश, विद्रोही, अशांति के उपासक, वासनाओं के मुक्त प्रवाह, विकट तृष्णाकुल, भोगवादी भावनाओं के आश्रय हैं।

मनोविज्ञान तथा मनोविश्लेषण विज्ञान के प्रभाव ने आधुनिक हिन्दी काव्य में कई प्रकार की नारी भावना का सृजन किया है।

प्रमुखतः हम चार नाम रख सकते हैं :—

(क) विरोध या विद्वेषमयी

(ख) अतीव वासनात्मक

(ग) सतुलित यथार्थवादी

(घ) प्रकृतिवादी उदासीन

क. प्रथम प्रकार की भावना की अभिव्यक्ति करने वाले कवि नारी को एक अनिवार्य आकर्षण के रूप मे देखते हैं तथा उसमे काम-प्रेरणा की प्रबलता पाते हैं। इन समूह के कवियों को दो वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है · (अ) वे जिनका 'नारी' से सघर्ष व्यक्तिगत प्रवृत्तियों को लेकर है, (आ) वे जिनका नारी से सघर्ष पुरुष के कार्य क्षेत्र को लेकर है।

(अ)[1] वर्ग की नारी-भावना के प्रातः हैं बच्चन और मध्याह्न आरसी-प्रसाद सिह। बच्चन अनिश्चित ही हैं कि आकर्षणमयी नारी जीवनज्योति है अथवा मृगतृष्णा, क्योंकि वे कभी तो यह कहते सुने जाते हैं ·—

ले प्रलय की नीद सोया जिन दृगों में था अँधेरा,
आज उनमें ज्योति बन कर ला रही हो तुम सवेरा।[2]

और कभी यह ·—

जानता मै हूं कि मृगभ्रम,
तुम, नहीं हो धार जल की[3]।

किन्तु आरसी प्रसाद सिंह की दृढ धारणा है कि नारी एक मात्र तृष्णा हैं —

नारी तुम एक पिपासा हो
तुम एक पिपासा हो केवल[4]।

इस वर्ग के कवि ने 'नागिन' रूप मे नारी की कल्पना की है। बच्चन की दृष्टि यहाँ अपेक्षाकृत अधिक उदार और अनुराग रजित रही है। बच्चन की नागिन नागयोनि सर्पिणी न हो कर वह विश्व-विमोहक 'माया' है, जिसके आकर्षण, जिसकी प्रेरणा तथा जिसकी अजेय शक्ति से ससार अनत काल से परिचालित होता रहा है।[5] कवि ने

---

[1]यहाँ "बच्चन" की 'सतरगिनी' तथा आरसीप्रसाद सिह की 'नई दिशा' पर ही विशेष ध्यान रखा गया है।

[2]हरिवश राय "बच्चन"—सतरगिन : कौन तुम हो, पृ० १३१, १

[3]वही : मृगतृष्णा, पृ० ११७, ३.

[4]आरसीप्रसाद सिह—आरसी, पृ० ६२, ५८.

[5]तू नाग योनि नागिनी नहीं,
तू विश्वविमोहक वह माया
जिसके इंगित पर युग युग से
यह निखिल विश्व नचता आया" (सतरगिनी : नागिन, पृ० ३९, ४.)

उसमे द्विधा व्यक्तित्व पाया है। उसकी अगद्युति मे प्रलयान्धकार और नवल उषा का यान है, उसके उभय नेत्रो मे स्वर्ग और नरक के द्वार है और भ्रुवों मे क्रोध और करुणा का समष्टि। वह विष और मधु का सन्नय है। रभा की मनोमोहकता, रति के रूप, उर्वशी के आकर्षण, इन्द्राणी के गर्व, जगदया की दया के साथ-साथ मृत्यु की कटुता, क्रूरता और निष्ठुरता तथा कालिका की सहार बुद्धि तथा रुद्राणी की भयकरता का भी सयोग उसम है।[1] इस प्रकार—

"अपने प्रतिकूल गुणों की सब
माया तू सग दिखाती है।"[2]

उसके मन के परिवर्तन में देर नहीं लगती।[3] उसके इस रूप का देखकर 'भ्रम, भय, सशय सदेहा से काया विजडित हो जाती है' और कवि कह उठता है '—

"तू प्रीति भीति, आसक्ति, घृणा,
की एक विषम सज्ञा बनकर,
परिवर्तित होने को आई,
मेरे आगे क्षण प्रति क्षण।'[4]

'नागिना' रूपिणी नारी यौवन और जीवन का साकार रूप है।[5] उसका शक्ति और सामर्थ्य अपरिमेय तथा अजेय है। वह भूत, भविष्य तथा वर्तमान का मूलाधार है,[6] किन्तु स्वय स्वेच्छाचारिणी है।[7] धूर्जटि ने अपने तपोबल से उसे व्याली की काया देकर बाधने का प्रयत्न किया था —

"पर मदन कदन कर महायतन भी तुझे न सब दिन बांध सके,
तू फिर स्वतत्र बन फिरती है सबके लोचन में, तन मन में"[8]

वह अमृत से मृत्यु और गरल स अमरत्व का प्रभाव उत्पन्न करने मे समर्थ है।[9] नागिन रूपिणी नारी की इस विचित्र छलना के सम्मुख कवि की बुद्धि गतिहीन हो जाती है[10],

[1] वही पृ० ३६-३७ १२, पृ० ४१,६ पृ० ४३, पृ० ८, पृ० ४४,६, पृ० ४६, ११.
[2] वही, पृ० ४८, १३
[3] लगती है कुछ देर नही
तेरे मन के परिवतन में। (वही, पृ० ४० ५)
[4] वही, पृ० ३७, २
[5] वही, पृ० ४२, ६
[6] वही, पृ० ४३, १०.
[7] वही, पृ० ४७, १२.
[8] वही, पृ० ३९, ४
[9] तू मार अमृत से सकती है अमरत्व गरल से दे सकती है (वही, पृ० ४८, १३)
[10] मेरी मति सब सुधबुध भूली
तेरे छलनामय लक्ष्य में, (वही)

क्रियाये विपरीत हो जाती हैं। आकर्षण के कारण भयभीत होना हुआ भी, अनिच्छा स भी, वह उसी ओर खिच जाता है, और मुक्ति की इच्छा रखता हुआ नारी से बन्धन दान लेना है, शान्ति के स्थान पर दु.ख और सु ख के स्थान पर जलन और उत्पीडन मे प्रेम करने लगता है।[1] अपनी शक्तियों को वह नारी क सम्मुख दुर्बल, असमर्थ और पराजित देखता है। नारी को दूर करने के, अथवा उससे दूर रहने के, कवि के समस्त प्रयत्न निष्फल होते हैं।[2] वह असाध्य ही रही, निर्बन्ध ही रही और अनायास विजयिनी हुई। फलत. अन्त मे कवि को पूर्ण आत्म-समर्पण के लिए उस 'अनिवारिणी' के सम्मुख प्रस्तुत होना ही पडता है।[3] कवि नारी की इस अनिवार्यता पर आश्चर्यान्वित और क्षुब्ध तो अवश्य है, किन्तु आत्म-समर्पण के औचित्य को सिद्ध करता हुआ-सा वह कहता है .—

"यह इशारे हैं कि जिन पर
काल ने भी चाल छोड़ी,
लौट मैं आया, अगर तो
कौन-सी सौगन्ध तोड़ी
सुन जिसे रुकना असभव
यदि नहीं आह्वान तुम हो
कौन तुम हो।"[4]

---

[1] विपरीत क्रियायें सब मेरी भी
अब होती हैं तेरे आगे,
पग तेरे पास चले आये
जब वे तेरे भय से भागे,
मायाविनि, क्या कर देती है
सीधा उलटा हो जाता है। आदि, (वही, पृ० ४९, १४)

[2] तूने आंखों ननको —(वही, पृ० ५०, १५)
तुझ पर बधन में —(वही, पृ ५१, १६)
सब साम भाग सका —(वही, पृ० ५२, १७)

[3] अनिवारिणी करने को अतिम
निश्चय ले मैं तैयार हुआ
अब शान्ति, अशान्ति, मरण जीवन
या इनसे भी कुछ भिन्न अगर
सब तेरे विषमय चुबन में
सब तेरे मधुमय दशन में।" (वही, पृ० ५२, १७)

[4] सतरंगिनी : कौन तुम हो, (पृ० १३५, ६)

बच्चन की 'नागिन' 'प्रेमी' की 'जादूगरनी' के बहुत समीप दिखाई पड़ती है। परन्तु वास्तव में दोनों में प्रचुर अंतर है। जादूगरनी अनुरागमय, पूजात्मक, कौतूहल-पूर्ण आदर्शवादी दृष्टि से प्रसूत है, वहाँ नारी के कल्याणीरूप पर बल दिया गया है, प्रेमी ने नारी के एक विराट् रूप की कल्पना की है। इसके विपरीत 'नागिन' 'पुरुष' की पराजय के क्षोभ और तज्जनित कटुता में अपनी मूल रखती है। बच्चन का नारी संबन्धी दृष्टिकोण अनुरागमय रहा है, पर वह मानसिक संघर्ष—नारी के आकर्षण से युद्ध करने के प्रयत्न से विक्षिप्त हो गया है, और इसलिए कवि ने कविता का शीर्षक रखा 'नागिन'। गत युग का आदर्शवादी कवि सर्पिणी, जो परंपरा से अपने साथ बहुत-सी अनिष्ट और विषमयी भावनायें जोड़े हुए है, को नारी के प्रतीक रूप में कदापि ग्रहण नहीं कर सकता था। किन्तु आज का यथार्थवादी कवि मनोविज्ञान से प्रभावित होकर नारी के द्वैत रूप (duality) को सामने रखने में संकुचित नहीं होता, और नारी के प्रति अनुराग लिए हुए भी उसके भयंकर पक्ष को भूलने में असमर्थ है। इसके अतिरिक्त नारी के आकर्षण से जिस व्यक्तिगत संघर्ष का भाव इन पंक्तियों में है :—

"मैं तुझे कीलने चला मगर कीला तूने मेरे तन को"[1]

तथा जिस पौरुष प्रदर्शन का अहंकारपूर्ण प्रयत्न और निरपेक्ष भाव (unconcern) की ध्वनि इन पंक्तियों में है :—

"नर्तन कर नर्तन कर नागिन मेरे जीवन के आंगन में।"[2]

वह गत युगीय कवि के लिए असंभव थी।

'नागिन' भावना को आरसीप्रसाद सिंह ने कई पग आगे बढ़ा दिया है। आरसीप्रसाद सिंह की नारी भावना तीव्र विद्वेषमयी और विकृत-सी है तथा कवि की असाधारण मानसिक परिस्थिति को परिचायक है। स्पष्ट प्रतीत होता है कि कवि निजी कामवासना से युद्ध करता हुआ इच्छित के प्रतिकूल भाव व्यक्त कर रहा है। कवि विकल-सा अपना पौरुष सिद्ध करने में प्रयत्न शील है। 'मैं करूं क्या क्रोध तुम पर" और "जब जब मैं हूँ कुछ भी बोला"[3] नामक कविताओं में कवि ने अपने जिस सबल पौरुष का ढिंढोरा पीटा है, उसी के 'अहं' से प्रेरित होकर वह कहता है :—

"इतना कौन प्यार का प्यासा तुमसे प्यार मांगता कौन ?"[4]

नारी से प्रेम करना वह मानो अपनी इज्जत का लुटना[5] और पौरुष की पग-

---

[1] सतरंगिनी, नागिन, पृ० ५०, १'.

[2] वही,

[3] "नई दिशा" पृ० ६० तथा पृ० ६२.

[4] नई दिशा : तुझसे प्यार मांगता कौन, पृ० ६३.

[5] जो खुद राजा है, जिसकी जूठन पर दुनिया पलती,
क्या उसकी इज्जत बाजारों में यों ही लुटती चलती ?
(नई दिशा : तुझ से प्यार मांगता कौन, पृ० ६३)

जय[1] समझता है। इसलिए वह इस प्यार को स्पष्ट और कठोर शब्दों मे अस्वीकार करता है:—

"किसने कहा कि सुदरि, तुमको करता हू मैं प्यार ?
किसने कहा कि हम दोनो में गोपनीय व्यवहार ?
तुम सुदर हो, मैंने जाना,
आकर्षण है यह भी माना।
लेकिन तुमसे प्रेम और मैं,
करूँ ? असत्य, असभव ना ना !"[2]

इन भावो से प्रेरित कवि सोचता है :—

"कितना अच्छा होता वह दिन जब तू मेरे पास न होता।"[3]

और वह अपने विचार को कार्य रूप म परिणत करने को तत्पर है—'निश्चय तुझे करू गा मै अपनी आखो से दूर"[4]। दर्शन ही नहीं वह उसके प्रभाव को भी दूर करना चाहता है:—

'एक चोट मै मन को दूगा दू गा एक अभाव।
और मिटा मैं दूगा जीवन पर जो प्रबल प्रभाव।"[5]

कवि नारी को मोहमयी, पुरुष को अपनी ओर आकर्षित करने मे निरतर प्रयत्नशील[6] पुरुष के जीवन मे आग लगाने वाली[7] तथा पुरुष का भक्षण करने वाली क रूप मे देखता है। बर्नार्ड शा ने नारी और पुरुष के भक्षक-भक्ष्य सबध की भावना से प्रेरित होकर नारी को चीता माना था, आरसाप्रसाद सिह, बच्चन द्वारा प्रारभ की हुई भावना का विकास करके बर्नाड शा की सीमाओ का स्पर्श करते हैं। वे नारी का द्विजिह्वा काली नागिन तथा भूखी मायाविनी बाघिन के रूप मे देखते है।[8] बच्चन ने 'नागिन' के सम्मुख विवश

---

[1]तुमने क्या समझ लिया मुझको इतना कमजोर
(नई दिशा . किसने कहा कि सुदरि तुमको, पृ० ८)

[2]वही, पृ० ७

[3]नई दिशा : कितना अच्छा होता वह दिन, पृ० ३५.

[4]नई दिशा : निश्चय तुझे करूगा अपनी, पृ० १०.

[5]वही, पृ० ११.

[6]मोहमयी तुम बार बार यों मेरी ओर न घूरो
(नई दिशा : निश्चय तुझे करूगा अपनी, पृ० ११)

[7]आग लगा दे तू जिसमें ऐसा ससार मांगता कौन।
(नई दिशा : तुझसे प्यार मांगता कौन, पृ० ६३)

[8]आओ मेरे आगे बैठो।
जैसे बैठी होती काली, नागिन, दो जिह्वावाली,
एक हाथ धरती से ऊपर, ऐंठ गई हो जो बल खाकर,
मार कुडली फन फुत्कारे, अब काटे अब डोकर मारे,
देखो निर्निमेष तुम मुझको, देख सको जब तक, यों अपलक,

आत्म-समर्पण किया था किन्तु आरसीप्रसाद सिंह के लिए आत्म-समर्पण आत्मघात है तथा प्रेम घृणा है। कवि एक ओर तो अपने अहं और पौरुष की रक्षा में अत्यन्त सजग है और दूसरी ओर, मनोविज्ञान की भाषा में, प्रेम में घृणा का तथा स्नेह में विद्वेष का समन्वय देखता हुआ नारी पर विश्वास खो बैठा है। नारी की लीला सलज्ज आकृतियाँ उसे भयंकर लगती है और उसके प्रेम व्यापार एक षड्यन्त्र। फलतः वह उसकी ओर उपेक्षा दिखाता है।[1] इस कवि ने अपना पौरुष और अश्लेष भाव दिखाने का प्रचुर प्रयत्न किया है। नारी को ही उसने क्रियाशील (Active) देखा है, जैसा फ्रॉयड का सिद्धान्त था। किन्तु वास्तविकता तो यह है कि दुर्बलता कवि में ही अप्रच्छन्न होती है जब वह कहता है :—

"ये आँखें जो तुझे देखने को प्रतिक्षण अकुलाती हैं।
एक घड़ी भी तुझे न पाकर जो अधीर हो जाती हैं।"[2]

या,

"यह दिल, जो तुझको पाकर फूला न समाया रहता है।
जो तेरी चितवन के जादू से भरमाया रहता है।"[3]

या,

"जब तू रहती मेरे आगे, अथवा मेरे अगल-बगल में,
मैं हो जाता जैसे मछली छटपट करती खौले जल में।"[4]

इससे कवि का मानसिक संघर्ष स्पष्ट हो जाता है। वह हीन भाव (Inferiority complex) को महत् भाव (Superiority Complex) में बदलने का प्रयत्न कर रहा है तथा काम विकृति जन्य परपीड़न (Sadism) का आश्रय ले रहा है। परपीड़न का एक कारण है निष्फलता (Frustration), जो कवि को नारी रूप की क्षणिकता के कारण निजी वासना के अपूर्ण रह जाने में मिलती है, दिखाई पड़ती है। निष्फलता

मेरे आंखों पर गालों पर, अपनी जलती सांसें छोड़ो ?
मुझसे अपनी आंख मिलाओ, मेरे दिल में विष बरसाओ,
उगलो जहर, होठ पर रख दो रख दो कहता हूँ मैं
जीभ खून की प्यासी अपनी ! आओ बैठो मेरे आगे
जैसे बैठी होती बाघिन, बहुत दिनों की भूखी बाघिन,
लाल आंख सूरत भयावनी, जैसे हो प्रत्यक्ष मृत्यु,
लगता हो अब झपटे, मानो अब निगले। (नई दिशा . आओ मेरे बैठो, पृ० ६८-६९)

[1] फिर देखो, तुम मेरी हालत में क्या करता हूँ तत्क्षण,
मैं तुम्हें देखता रह जाता हूँ और जरा सा हंस देता हूं। (वही, पृ० ६९)

[2] नई दिशा : निश्चय तुझे करूँगा अपनी, पृ० १०

[3] वही, पृ० ११.

[4] नई दिशा : कितना अच्छा होता वह दिन, पृ० ३५.

(Frustration) आक्रमण (aggression) मे परिवर्तित हो जाती है। आरसी-प्रसाद की यह मानसिक दशा 'पूनो'[1] और "माघ शुक्ला त्रयोदशी" नामक कविताओ मे पूर्णतया स्पष्ट होती है। ये कविताये एक सपूर्ण भावना के दो खड प्रतीत होते हैं, जो एक दूसरे के पूरक हैं। 'पूनो' मे कवि कहता है :—

"आज कितनी शान्ति जीवन में मनोरम शान्ति !
रश्मि बन बिखरी पडी मेरी प्रिया की कान्ति ॥
चांदनी में आज सहसा खुल पडे हैं !
प्राण के जल जात,
क्यो न यो ही चादनी मुझको करेगी प्यार ?
चल न सकता आयु भर क्या यह अथक अभिसार
सोचता हूँ मैं यही फिर बारबार;
इस विजय के अन्त में क्या बच रहेगी हार
आह कितना क्षुद्र हूं मैं क्षुद्र यह ससार।
मृत्यु की मेरी अमा मुझको रही ललकार
चार दिन की चांदनी है, फिर अधेरी रात।
आयेगी अधेरी रात।
इस तरह तैयार जाने के लिये क्यो हो गयी तू।

× × ×

क्या न इतना भी तुझे मेरे लिए अवकाश
क्या बुझा सकती न मेरी एक छोटी प्यास।"[2]

और "माघ शुक्ला त्रयोदशी" मे अपूर्त इच्छा के क्रोध को प्रकट करता है :—

"एक क्षण चौबीस घटो में अगर मैं
प्यार कर लेता किसी को,
कौन-सा अप राध करता बोल तो,
जिदगी के एक क्षण में
एक क्षण याद कर लेता किसी को,
क्या बिगड जाता कही ? जो
तू नशीली रात रानी,
हे रसीली ! रूप गर्वीली हुई है !
जिस जवानी पर तुझे यो नाज है
जानता हू, राज जो दिल के सभी,
जो मधुर सौंदर्य तेरा आज है,

---

[1] नई दिशा . पृ० १८, तथा पृ० ३१
[2] वही, पृ० १८—१९.

आज ही ढल जायगा
ढल जायगी तेरी जवानी,
जिस तरह बरसात की यह
झूमती जाती रवानी।
बाढ़ का मुँहजोर पानी।

× × ×

हाथ धोकर क्यों किसी की जान लेने
मौत-सी तू आज पीछे पड गई है!

× × ×

लोग कहते, तू भली है!
ज्यों चमेली की कली है!
और मैं तो देखता हूँ तू भयानक
नाग, सिनकोना मिली
सुकुमार मिसरी की डली है।[1]

प्रथम प्रकार की भावना व्यक्त करने वाले कवियों का (आ) वर्ग, जिसमें केदारनाथ अग्रवाल, गिरिजाकुमार, अचल के नाम अग्रगण्य हैं, नारी को केवल काम की दासी के रूप में पाता है। जैसा फ्रायड ने कहा था, इस वर्ग की धारणा है कि नारी का एक मात्र विचार-केन्द्र काम है। वह नारी भर है, योनिमात्र है। इसका यह रूप कवि के सम्मुख कामकाजी पुरुष के कार्य की बाधा बन कर आता है। फलतः वह नारी को पापाचार-लिप्त गदा पाता है, और उसे देवी के आसन से हटा देना चाहता है।[2] वह उससे कहता है.—

"छाओ मत आंखों में कोहरे के परदे-सी,
जीने दो पुरुष को
जीवन के कार्य-क्षेत्र में।"[3]

उसका विचार है कि जब तक कवि—पुरुष —भोला था, जब तक उसने नारी रूप को न देखा था, वह सतुष्ट और सुखी था। किन्तु नारी मायाविन है, वह 'जीवन सग्राम' के सैनिक पुरुष को न जाने कैसे मदहोश बना देती है, चक्रव्यूह में बाँध लेती है। कवि नारी रूप को सत्य नहीं मानता, वह एक निष्ठुर षडयत्र है।[4] नारी के प्रेम व्यापार में

---

[1] वही, पृ० ३१—३२.
[2] केदारनाथ अग्रवाल—नारी से, हंस, दिसबर १९४२.
[3] गिरिजाकुमार माथुर—मजीर. "प्रेम से पहले", पृ० ६०, ६२.
[4] अरे यह रूप राशि, इतना सौंदर्य कोष
केवल है निष्ठुरता जिसमें है सत्य की पड़ी परछांई भी नहीं।

+ + +

भी वह छल ही देखता है। 'प्रणय की खेलाडिन' के 'नशीले चोचला' के थोथेपन से वह प्रचुर परिचित दिखाई पडता है।[1] इसीलिए कुछ-कुछ भक्तिकालीन कवियों के समान वह कहता है .—

"रूप सुधा तुम खूब पिलाती बन फूलो की राजकुमारी,
यौवन रस की विषमय प्याली सदा रही है सुन्दर नारी।
पर छवि का वरदान हाय अभिशाप बन गया इस जीवन का,
कौन भांप पाया है अब तक सब रहस्य नारी के मन का।"[2]

(ख) द्वितीय प्रकार की भावना में कवि व्यक्तिगत कामवासना का मुक्त प्रकाशन करता है और नारी को उसकी पूर्ति का साधन बना लेता है। इस भावना को अभिव्यक्ति करने वाले अकेले अचल हैं।

यहां अचल की नारीभावना का अध्ययन करते समय हमारे ध्यान का केन्द्र विशेष रूप से उनकी 'मधूलिका' और 'अपराजिता' रहेंगी। बाद की रचनाओं में कवि ने प्रयत्नत. समाजवादी झुकाव दिखाया है और अपनी नारी भावना को परिवर्तित करने का प्रयास किया है, किन्तु जैसा कि हम देखेंगे, अचल की यह मूल नारी-भावना बाद में भी बनी ही रही है। स्वय कवि ने, यद्यपि सन १९८१ में लिखा है—"प्रगतिशील कविता उन बलीवा के लिए एक आग भरी हाहाकार है जो नारी का यौनिमात्र या एक 'बायोलोजिक' आवश्यकता भर समझते हैं और इससे अधिक इसका सामाजिक और माननीय मूल्य ही नहीं आँकते"। किन्तु इन्हीं शब्दों में स्वय "अचल" के ही प्रति कितना व्यग भरा है, लिखने से पूर्व कवि ने न सोचा होगा।

श्री नददुलारे वाजपेयी के शब्दों में 'रामेश्वर शुक्ल "अचल" नवीन हिन्दी का एक क्रांतिदूत है।.. क्रांति उसने की है,छायावाद की मानवीय किन्तु अधिकाश अशरीरी कल्पना के स्थान पर अपनी मासल कल्पना द्वारा। इस क्रांतिदूत का सदेश है तृष्णा,

और यह नारी रूप
छल का दूसरा है सुदर सा नाम एक
जिसने युगो से नर को छकाया खूब (वही, पृ० ६३)

[1]किन्तु नारी, सिर्फ नारी हो तुम्हे मै जानता हूँ,
तुम प्रलय की हो खेलाडिन मैं तुम्हे पहचानता हूँ।
+ + +
तुम वही हो जो जगाती है हृदय की कोपलो को
जानता हूं मैं तुम्हारे इन नशीले चोचलो को।
तुम दिखा देती बिना आंसू रुलाई के नजारे,
पर न होते शेष चल पडते अगर आंसू तुम्हारे।
रामेश्वर शुक्ल "अचल"—लाल चूनर : नारी, पृ० २४.

[2]गिरिजा कुमार माथुर—मजीर—जौहर की ज्वाला, पृ० ४४.

लालसा, प्यास, तृष्णा सौंदर्य की, लालसा रूप की, प्यास प्रेम की। सौंदर्य नारी का, रूप व्यक्त, प्रेम विनाशी या जो विनष्ट हो चुका है।"[1] अचल उद्भ्रान्त यौवन के ज्वलनशील विद्रोही कवि हैं। प्रो० विनयमोहन "शर्मा" बताते है कि "अचल" का विद्रोह वैयक्तिक जीवन की निराशाओं (Frustration) का फल है।"[2] असफलता ने "अचल" को उच्छृंखल, असंयमशील भोगवादी तथा पापपुण्य की सीमाओं के प्रति अत्यंत असहिष्णु बना दिया है। वह तो यौवन, केवल यौवन के प्रति जाग्रत है। उसका प्रबल यौनोत्पीडन (Sex-obsession) कवि की असाधारणता का तो परिचायक है ही, साथ ही एक निराले प्रकार के काव्य में एक निराली नारी-भावना की सृष्टि करता है।

'अचल' का काव्य तृष्णा और वासना का काव्य है, उसके उद्गार ज्वाला और लालसा को ही लेकर चलते हैं। कवि स्वयं ही पुकार-पुकार कर अपनी तृष्णा की तीव्रता का बताता हुआ अपनी परिभाषा इस प्रकार देता है .—

"मैं इच्छा के मरुपथ का यात्री चचल
प्रज्ज्वलित पिपासा से मेरा अंतस्तल
मैं अर्थ बताता द्रोह भरे यौवन का
मैं नग्नवासना की गीता उच्छृंखल।"[3]

अस्तु, 'प्रज्ज्वलित पिपासा' और 'नग्नवासना' की पृष्ठभूमि में 'अचल" नारी के यौन-सबंध के अतिरिक्त कोई अन्य सामाजिक संबंध स्थापित नहीं कर पाये है। उनकी कल्पना में नारी एक ओर तो उनकी पुरुष की— तृष्णा की उत्तेजना और वासनापूर्ति का साधन है और दूसरी ओर अपने निजी रूप में स्वतंत्र वासनादीप्त है। हम आगे दोनों पक्षों को देखेंगे।

जब प्रकृति में यौवन का विलास मुखरित हो उठता है तब कवि के एकाकी हृदय में स्त्री के अभाव की भावना प्रखर प्यास को जागृत कर देती है।[4] यह प्यार की तृष्णा

[1] रामेश्वर शुक्ल "अचल"—अपराजिता प्रवेश.
[2] रामेश्वर शुक्ल "अचल"—मधूलिका आरम्भ
[3] मधूलिका उच्छ्वास, तथा—
मैं नवयुग की हलचल लाया मस्ती लाया, यौवन लाया
मेरा ज्वाला सा वक्षस्थल उन्माद भरा उच्छृंखल
किसकी मृदु पगध्वनि का पागल मैं दुर्दिन का गायक आया।
(अपराजिता · झलक, पृ० ८६)
[4] उधर नीप द्राक्षा कुंजों में स्वर्ण मेघ घिर आये
इधर नीड में नग्न माधुरी लख पक्षी भरमाये
तब यह चिरवंचित प्राणी भी बेसुध-सा उन्मत्त सा
विटप-विटप में बोल उठा रुग्णित मधुओं का प्यासा।
(मधूलिका : तृष्णा, पृ० ४)

यौवनातप से झकृत है।[१] "अचल" का 'अपावन प्रेम' सौदर्य का दास है।[२] फलत. नारी का एक पल का दर्शन, एक क्षणिक नैकट्य, एक सूनी-सी दृष्टि, एक पगध्वनि, स्पर्श का लघुगीत कवि के अगों मे विकट ज्वाला जागृत कर देता है,[३] स्त्री की वेणीमात्र कवि को प्रमत्त बनाने के लिए प्रचुर उत्तेजना है :—

"ज्यो मधप मदिरा को लख हो जाते हैं मतवाले,
वैसे आज सरस वेणी पर पागल हू मैं बले।"[४]

यद्यपि कवि स्वय यह नही जानता कि इन यौवन की परियों का देख कर उसके तृष्णा से बेसुध प्राण क्यो उन्मन हो जाते हैं,[५] किन्तु इतना निश्चित है कि 'रूप निशा मे विसुध पड़ी' "शीतल विद्युत-सी ज्वलत सौदर्यमयी सुकुमारी" कवि को अतृप्त लालसा से उद्-भ्रान्त कर देती है और उसके हृदय मे प्रखर दुर्दात अतर्पिपासा भर कर हूक जलती है। एक तो कवि यों ही "अनियत्रित सत्ता से लक्ष्यपथ ध्यानी" है और जब स्मृति पट पर कुसुम परी छा जाती है तब तो वह धू-धू कर जल उठता है।[६] नारी से उसका सबध इतना ही है —

---

[१]झकृत है आतुर वक्षस्थल, हैं कितना आतप यौवन में
मैं तुमको कितना प्यार करूँ कितनी तृष्णा मेरे मन में।
(वही अतर्गीत, पृ० २)

[२]दास है सौंदर्य का यह प्रेम मेरा तो अपावन। (वही, पृ० १२)

[३]एक पल हो के दरस में जग उठी तृष्णा अधर में
एक पल की ही निकटता लालसा उमडी प्रलय सी,
एक सूनी सी नजर उफना उठी ज्वाला हृदय की,
एक पगध्वनि ने मुझे उन्मत्त रूपाकुल बनाया -
स्पर्श के लघुगीत ने कितना अनल मडल सजाया,
गीत की सागर, तुम्हारा स्वप्न सा मधु स्पर्श नारी।
जल रहा परितप्त अगो मे पिपासाकुल पुजारी
है तृषा कितनी विपुल, कितना बनूँगा अब विकल मैं?
एक पल ही के दरस में जग उठी तृष्णा अतल में। (वही, पृ० ९)

[४]वही : वेणी, पृ० १९

[५]किस तृष्णा से बेसुध हो करते प्राणों के अभि गुजन
क्यो इन यौवन की परियो को लख हो जाते हैं उन्मन (वही—??? पृ० ६)

[६]पर आह न पूछो जब उनकी सुधि आती
वह मधु ज्वाला मालच जलाती आती
सच कहता हूँ मैं धू धू कर जल उठता
जब हुलती उर में कुसुम परी छा जाती" (वही : उच्छ्वास, पृ० ४५)

"मैं रूप शशी लावण्य पुष्प पुंजों की
मैं चिर मधुप सा देखो फिर मदमाता।"[1]

इस प्रकार नारी का रूप अंचल की "सीमाहीन पिपासा" का उद्दीपक है।[2] अंचल उसको केवल रूप उपभोग के दृष्टिकोण से देखते हैं।[3] नारी उनकी दृष्टि के सम्मुख "नग्न मुखर मधुधारा" के रूप में आती है, अधरों की मदिरा दान करने वाले साकी[4] के रूप में आती है। वह नारी से अधरों में महासागर भर कर उसकी उफनाती हुई प्यास को शान्त करने की ही प्रार्थना कर सके हैं।[5] अंचल की इस तृप्तिहीन पिपासा में यौवन का आग्रह विशेष है, इसलिए वे भविष्य से भयभीत 'आज' के ही प्रेमी हैं,[6] इस भावना ने कवि को और भी अधीर बना दिया है और वह नारी को बड़े प्रयत्न से मनाता हुआ दिखाई पड़ता है :—

"पल भर का संकोच न पूछो कितना वेदनमय सजनी।
गंध अंध दक्षिण बतास से बनी मंजरी यह रजनी।

\+ \+ \+

यह मुहूर्त शुभ पर्व पड़ा है इसे मना लें आज सखी।
तब सरि की कैसी लाज सखी।"[7]

इस भावना की वीभत्सता की चरम सीमा वहाँ देखी जाती है जहाँ कवि निरंकुश भावना के प्रवाह में मातृत्व की भी उपेक्षा कर बैठता है।[8] कवि नारी से "खुली डगर

---

[1]वही,

[2]कौन सलोनी परी मुझे कर देती है पागल सा
कौन अनंगवती रंग रंग में भरती प्रबल पिपासा (वही. आत्मप्रणय)

[3]तुम मेरी बस, विश्व विमोहन यह सौंदर्य तुम्हारा,
पी पी मोह लुटा मैं जाता तुम मेरी ध्रुवतारा।" (वही : मैं तो सदा तुम्हारा)

[4]मधूलिका. मेरे भोले साकी।

[5]भर लो आज महासागर अधरों में ओ सपनों वाली
उफनाती है प्यास न जाने कब से मेरी मतवाली (अपराजिता, पृ० ५२)

[6]आज आज के दौर चलें अब कल की अभिलाषा कैसी।
कल आयेगा यह क्या निश्चय, यह कल की आशा कैसी॥
(मधूलिका. सखी, पृ० ८४, तथा
"निर्मल .. .. मदभरी जवानी" (वही, रूपवती, पृ० ७)

[7]मधूलिका : सखी पृ० २४.

[8]आज निरंकुश गमन गैल में यही जलन की तो बेला
माना कटि प्रदेश में गुरुता पर मुहूर्त यह अलबेला
(अपराजिता : मुहूर्त, पृ० ४०)

पर पी की मर्म पुकार" करने को कहता है, शृगार न सभाल कर मग मे अर्धनग्न लहरने को कहता है, घोर तपिश के दिन मे रूप लुटाने को कहता है।[1]

"किरण बेला","करील" और "लाल चूनर" मे समाजवाद की ओर झुकाव दिखा कर अचल ने वासनापूर्ण नारी भावना को परिवर्तित करने का प्रयत्न किया है। यह प्रयत्न केवल प्रयत्न है, मूलतः कवि मे विशेष अतर नहीं दिखाई पडता। कवि विवश-सा स्वय स्वीकार करता है :—

"किसी के रूप की आसक्ति जीवन से नही जाती।"[2]

"किरण वेला" मे भी कवि ने नारी को देख कर अगों मे गहन व्यथा का अनुभव किया है,[3] और "लालचूनर" मे भी उसे "रूप की एक मोहक खान" कहा है।[4] अचल जब शोषण के बीच पली मजदूरिन या भिखारिन को देखते है तो नारी के जननी रूप के प्रति घृणा ही प्रकट करते हैं, उसकी बेडौल आकृति उन्हे भद्दी लगती है,[5] "क्योंकि उन्मुक्त रोमास की कल्पना की नारी सदैव अप्सरा जैसी सुन्दरी और यौवन मदमाती होती है।"

यही पर हम नारी भावना के दूसरे पक्ष—नारी पक्ष—पर पहुँच जाते है। कवि ने अपने दृष्टिकोण से ही प्रेरित होकर नारी को भी तीव्र वासनामयी के रूप मे देखा है। वह भी शून्य मदिर की पिपासिन पुजारिन के रूप मे अवतरित होती है, यौवन की निष्फलता के बाद "वन्या नग्न तृष्णा-सी विकल" दृष्टिगोचर होती है।[6] "मनुहार" मे वह चचल और कामातुर दिखाई पडती है।[7] उसकी तृष्णा स्वय कवि की तृष्णा के समान तृप्तिहीन दिखाई पडती है। फल यह होता है कि वह सोचती है—

---

[1] वही, पृ० ४०—४३.

[2] लालचूनर —मनुहार, पृ० १०.

[3] किसके जीवन के तरु की तुम निस्सगिनि रगरेली
इस अभाव पूजक की पलकें भरने चली अकेली
और अवश अगो में कैसी गहन व्यथा भर आती
जग में अतहीन अनियम मैं केवल, प्यास न जाती
(किरणवेला . पुकार, पृ० २६)

[4] लालचूनर—तुम ! पृ० ५—६.

[5] क. पेट में भरा एक दूसरा मास पिड हड्डियो का निचोड
(किरणवेला . दानव, पृ० ६३)

ख उलटा टगा है अति पीड़क झुकावन
काल का कठोर अत्याचार इसकी कमर में।
(किरणवेला : दानव, पृ० ६९)

[6] अपराजिता—अंतर्गीत, पृ० ६५.

[7] मधूलिका।

"आज सोहाग हरूँ मै किसका लूटूँ किसका यौवन
किस परदेशी को बदी कर सफल करू यह वेदन"[1]

आगे चल कर जब कवि का ध्यान समाज की यथार्थताओं पर आकृष्ट हो गया है वहाँ भी कवि ने वासनोन्मद रूप को उपस्थित किया है।[2] वहाँ कवि की इच्छा की तृप्ति तो है ही किन्तु साथ मे एक गहरा सामाजिक व्यग भी है जो पूर्ववर्ती उद्धरणो मे नहीं है।

इस प्रकार अचल ने नारी के साथ अनियत्रित निर्बंध और उद्दाम यौन सबध का आदर्श रखा है। वह कवि के किसी अन्य कार्य मे सहयोग देती नही दीखती। नारी योनि मात्र है। वह पुरुष वासना की उत्तेजना और वासना की पूर्ति का साधन है। स्वय मे भी वह वासना पूर्ण है। उसका कोई सामाजिक व्यक्तित्व नही है। प्राय. नारी का शरीर पक्ष ही कवि के मस्तिष्क मे रहा है। वह चाहता है कि नारी उसकी वासना के उमडते हुए समुद्र म छोटी-सी नौका का भाँति उछलती फिरे। वह उसके सौदर्य पर अपने मन के भावो को तरगो स अविराम आघात करता रहे। यही कारण है कि आगे चल कर अचल की नारी भावना मे एक प्रतिक्रिया हुई है, जो ऐसी परिस्थितियो मे स्वाभाविक है। नारी के मादक, मोहक और आकर्षक रूप का वर्णन करते करते वह उसमे भ्रमात्मकता और छलपूर्णता भी देखने लगता है। उस सुन्दर तथा दिया को जोत-सी मानते हुए भी वह कहता है —

"किन्तु नारी, सिर्फ नारी हो तुम्हें मै जानता हूँ,
तुम प्रणय की हो खेलाड़िन मै तुम्हे पहचानता हू।
× × ×
तुम वही हो गा जगाती जो हृदय की कोपलो को,
जानता हूँ मै तुम्हारे इन नशीले चोचलो को।"[3]

अब वह नारी के आँसुओ म छल, उसके प्रेम मे प्रवचना, पुरुष को आकर्षित करने मे उसकी शक्तियो का प्रयोग देख कर क्षुब्ध होता है। अब उस नारी पर विश्वास नहीं है,

---

[1] मधूलिका · 'आज तो" ...,
देखिए —किरण वेला —"तुम्हे न जाने दूगी" पृ० ६४.

[2] कल ! कल की कल से है
पर मैं आज न जाने दूगी।
मोह रही कैसी मादकता
आज तुम्हे हर लूँगी।
× × ×
भ्रमित मृगी सी भटक रही मै
तृषा दग्ध चाहो में
अब तो कस लो धृष्ट ! मुझे,
अपनी गोरी बाहो में। (वही)

[3] लालचूनर—नारी, पृ० २८.

वह नारी को बधनों की पिटारी के रूप में पाता है। किन्तु जो स्वयं कवि की ही "प्यास का प्रतिबिंब बन कर रह गई" है वह किस प्रकार नवयुग का संदेश दे सकेगी। नारी के "नशीले चोचलों" का वर्णन करता हुआ कवि अपनी ही नारी-भावना की दुर्बलता को अनावृत कर रहा है।

(ग) तृतीय प्रकार की भावना में कवि पुरुष के ही नहीं नारी के भी दृष्टिकोण से नारी के मनोविज्ञान को परखता है। यह संतुलित यथार्थवादी दृष्टिकोण हम अज्ञेय में पाते हैं। अज्ञेय नवीन मनोविश्लेषण-विज्ञान से कितने अधिक प्रभावित हैं यह तो उनके उपन्यास "शेखर एक जीवनी" से ही स्पष्ट है। "चिन्ता" काव्य में भी उनका "उद्दिष्ट यही रहा है कि क्षेत्र विशेष में मानव के अंतर्भावों का यथासंभव स्वाभाविक और निराडंबर प्रतिचित्रण कर दिया जाय।" चिन्ता की भूमिका में उन्होंने अपना दृष्टिकोण स्पष्ट किया है—"पुरुष और स्त्री का संबन्ध पति और पत्नी का नहीं, चिरन्तन पुरुष और चिरन्तन स्त्री का सम्बन्ध, अनिर्वायत एक गतिशील (डाइनैमिक) संबन्ध है। ..पुरुष और स्त्री की परस्पर अवस्थिति एक कर्षण की अवस्था है। वह शक्ति आकर्षण का रूप ले ले अथवा विकर्षण का, अथवा आकर्षण विकर्षण की विभिन्न प्रवृत्तियों के सन्तुलन द्वारा एक ऐसी अवस्था प्राप्त करले, जिसमें बाह्यरूप से कोई गति प्रेरणा नहीं है, किन्तु किसी न किसी प्रकार आंतरिक खिचाव बना रहना अनिवार्य है। नाटकीय भाषा में हम इसे पुरुष और स्त्री का चिरंतन संघर्ष कह सकते हैं।"[1] इससे स्पष्ट है कि कवि का नारी सम्बन्धी दृष्टिकोण मनोविज्ञान के सिद्धान्तों को लेकर निर्मित है। कवि अपना व्यक्तिगत निर्णय देने में विश्वास नहीं करता है। नारी की जो सहज प्रवृत्तियाँ हैं, वे अच्छी हैं या बुरी, उनसे युक्त नारी सत् है या असत् पूजापात्र है या घृणास्पद यह कवि नहीं स्पष्ट करता है। पुरुष के संपर्क में उसका क्या स्वरूप है इसे भली भाँति अभिव्यक्ति करता है।

"चिन्ता" में नारी सम्बन्धी दो कोण दिखाई पड़ते हैं. एक तो पुरुष की नारी संबंधी विचारधारा जो उसकी प्रेरणाओं और आकांक्षाओं से निश्चित हुई है। यह पुस्तक के प्रथम भाग "विश्वप्रिया" में मिलती है। और दूसरी स्वयं नारी की निजी भावधाराएं जो उसके स्वभाव को सामने लाती हैं—यह पुस्तक के द्वितीय भाग "एकायन" में प्राप्त है।

"विश्वप्रिया" की भावनायें वर्तमान युगीय कवियों की भावना से बहुत मिलती जुलती है, ऐसा प्रतीत होता है कि यह 'पुरुष' आधुनिक कवियों का मनोविश्लेषण है।

अस्तु, पुरुष सामाजिक व्यवधानों के कारण सहचरी स्त्री के भलीभाँति समीप नहीं पहुँच पाता, किन्तु उसके हृदय में जिज्ञासा है, भूख है। उसका एकाकी रिक्त अंतर इस अपरिचित को प्यार करना चाहता है, किन्तु उसके प्यार में अपनाव नहीं, दान है। वह प्यार का बंधन रूप नहीं बनाना चाहता क्योंकि :—

---

[1] अज्ञेय—चिंता : भूमिका, पृ० ५.

"प्रेमी प्रिय का तो संबंध
स्वयं है अपना विच्छेदी-
भरी हुई अंजलि में हूँ तुम
विश्व देवता को वेदी।"[1]

स्वप्निल जाग्रति में जब वह नारी की ओर आकृष्ट हो जाता है तो नारी को अबला असहाय समझ कर अपना कर बढ़ा देता है।।[2] वह अपने सामर्थ्य दर्प से उन्मत्त रहता है किन्तु नारी की दीप्ति, रूप और सम्मोहन के आगे वह हतसंज्ञ और नतशिर हो जाता है। तभी उसे अनुभव होता है।

"मुझको बांधे ये कैसे अस्पृश्य किन्तु दृढ़ बंधन"[3]

उसे आश्चर्य होता है कि :—

"तेरी आंखों में क्या मद है जिसको पीने आता हूँ
जिसको पीकर प्रणय पाश में तेरे मैं बंध जाता हूँ
तेरे उर में क्या सुवर्ण है जिसको लेने आता हूँ
जिसको लेते हृदय द्वार की राह भूल मैं जाता हूँ
तेरी काया में क्या गुण है जिसका लखने आता हूं
जिसको लख कर तेरे आगे हाथ जोड़ रह जाता हूं"[4]

आकर्षण और आकांक्षा तीव्रतर होती जाती है, उसे प्रतीत होता है कि यह प्रणय व्यापार जीवन की सीमाओं के परे है, नारी उसकी अनंत प्रणयिनी है। नारी अपना रूप दिखाकर उसे आकर्षित करती है, किन्तु अप्राप्य निधि बनी रहती है। इस प्रकार पुरुष जन्म जन्मान्तर की अपूर्ण तृष्णा है और नारी उसकी असंभव पूर्ति। नारी पुरुष के अंतर का दुर्बलता और अभिमान को नत करने में समर्थ है, पुरुष उसके सम्मुख दीन याचक की भांति रह जाता है।[5] पुरुष नारी की उपासना में तल्लीन होता है, उसे देवी रूप में पुकारता है[6] और वरदान की आकांक्षा करता है —

"सुमुखि मुझको शक्ति दे वरदान तेरा सह सकूं मैं।"[7]

किन्तु वह पुरुष है, उसकी "तनी हुई शिराएँ इससे कहीं अधिक मादक अनुभूति की इच्छुक है। उसकी चेतना को इससे कहीं अधिक अशान्तिमय उपद्रव की आवश्यकता है।"

---

[1] चिंता . विश्व प्रिया, पृ० १६, ३.
[2] मैंने सहसा यह जाना तू है अबला असहाया।
तेरी सहायता के हित अपने को तत्पर पाया। (वही, पृ० २०, ४)
[3] वही, पृ० २१, ४.
[4] वही, पृ० २१,-२२, ६.
[5] वही, पृ० ३६, २५.
[6] वही, पृ० ३६, २६.
[7] वही, पृ० ४०, २९.

वह आत्माभिमानी है। वह जानता है कि जो वस्तु प्रारंभ हुई है उसका अंत भी होगा, और वह यह भी जानता है कि नारी "वह तेजोराशि वह ज्योतिर्माला" है, जो अप्राप्य है उसे अपने नीड से दूर ले जाने वाला किन्तु कभी न प्राप्त होने वाला आकर्षण है। उसका अभिमान जाग्रत होकर कह उठता है

"दूर रहने की हृदय मे ठानती क्या हो।
तुम पुरुष की वासना को जानती क्या हो।
मत हँसो नारी, मुझे अपना वशीकृत जान।
तोड दूँगा मै तुम्हारा आज यह अभिमान।"[1]

इस अपनी शक्ति को बाधने मे वह तत्पर होता है। किन्तु वह देखता है कि नारी वह तितली है जो सुदर है, किन्तु चचल और अस्थिर है, "जिसकी रसना एक ही रस के पान से तृप्त नहीं होती" 'जिसके लिए एक व्रत असभव है। किन्तु पुरुष भी अभिमानी है। वह समझता है कि वह स्वय ही नारी के जीवन का सूर्य है, नारी उसकी रोशनी मे इठलाती फिरती है। पुरुष का नारी के प्रति प्रेम सामयप्रर्ण दया भाव मात्र है, इसलिए वह नारी के उल्लसित स्वतत्र रूप मे स्नेह नहीं करता वरन उसे दीन दु खी और तिरस्कृत रूप मे देखना चाहता है। नारी से प्यार करता हुआ वह अपने अस्तित्व को प्यार करता है।[2] अब वह जानता है कि नारी देवी नहीं है, और पुरुष उसका आराधक नही है। दोनों निरीह पथिक है जो काल चक्र स गतिशील हैं। फिर भी पुरुष नारी मे एक ऐसा तत्व पाता है, क्रूर और कठोर तत्व, जिससे वह घृणा करता है। वह उसे "निर्दय लालसाओ की एक सहत राशि" कहता है। अब वह सत्य पर पहुँच गया है। अब वह जान पाता है कि "मै तुम्हारा बलि हूँ।" पुरुष और नारी "दानो एक दूसरे के आखेट हैं और अनिवार्य, अटल सघातो मे एक दूसरे का पीछा कर रहे है।"[3] प्रेम का खोखलापन उसे स्पष्ट हो जाता है।[4] वह अब जान पाता है कि उसने वज्र खड के सम्मुख मस्तक झुकाया था,[5] आज नारी उसके लिए प्राणभूता तडपन है, "पुष्पवृन्त तुल्य रम्य लौह-शृखला" है। इस निराशा और आघात के बाद वह चाहता है कि नारी उसके जीवन मे से चली जाय। किन्तु एकाकीपन के कारण दूसरे ही क्षण पछताता है :—

[1]वही, पृ० ४७, ३४

[2]तेरी विरह जलन के पीछे सोई थी जो मेरी छाया,
आज उसी को लेकर मैंने अपना आप भुलाया,
अपने से अपना था प्रणय मिलन
किया था किसका मैंने चुम्बन,
(वही, पृ० ५१, ४०)

[3]वही, पृ० ५४, ४४, ६.

[4]वही, पृ० ५६, ४८.

[5]वही, पृ० ५७, ५०, १.

"बाहर रूठ चला मै आया अब जाना धोखा था खाया।
अब, जब एक असीम रिक्तता प्राणो के मदिर में खटकी।"[1]

फिर भी इस असफलता के बाद भी पुरुष के हृदय म एक शून्यता छा जाती है, वह निर्विकार और निर्लिप्त हो जाता है।[2]

किन्तु प्रकृति मे मधुमास लौट आया "तरुपर कुहुक उठी पकुलिया" और सहसा अनजाने नारी का स्नेह दान पाकर पुरुष कृतार्थ हो उठता है —

"छोडने भव को चला था लौट घर परिणीत आया।"[3]

और नारी क सपर्क से उसमे पुन. परिवर्तन होता ह, उसके जीवन मे पुन. सरसता छा जाती है :—

"यह तुम्हारा स्पर्श या सजीवनी मै पा गया हूँ—
असह प्राणान्मेष से व्याकुल हुई यह जीर्ण काया
होठ सूखे थे, तभी था घुमडता अवसाद मन में,
पर तुम्हारे परस ने प्रिय, भर दिया आह्लाद मन में।
टिमटिमाने में बुझॉ जो दीप मेरा दे रहा था
उमड उसके तृपत उर में स्नेह पारावार आया।
मै अनाथ भटक रहा हूँ किन्तु आज सनाथ आ या।"[4]

किन्तु प्रणय के कहरे मे छिपा है नारी की कठोरता। वह निर्भीक होकर पुरुष की अवहेलना करती है। वह इतनी प्रभावशालिनी ह कि पुरुष को पीडित कर सकती है, और पुरुष उसे "वह घृणामर्या" प्रतिमा कहता है। किन्तु उसका रूप उसका 'जीवन' चिरतन है, और पुराना है उस रूप और जीवन के प्रति पुरुष का आकर्षण।[5] नारी पुरुष के

---

[1] वही, पृ० ६१, ५३.

[2] नहीं कांपता है अब अतर।
नहीं कसकती अब अवहेला, नही सालता मौन निरतर।
तुझसे आख मिलाता हू अब तो भी नहीं हुलसता है उर।
किन्तु साथ ही कभी राग की देख नही आता हूँ आतुर।
नही चाहता अब परिचय तेरे पर कुछ अधिकार दिखाना।
नहीं चाहता तेरा होना, यह प्रतिदान दया का पाना।
देख तुझे पर, पूर्व प्रेम की प्रतिक्रिया से होकर विचलित।
नही फणी सा रुक जाता हू पीड़ा से अब होकर स्तभित।
(वही, पृ० ८०, ७१)

[3] वही, पृ० ८६, ८०

[4] वही, पृ० ८८, ८०.

[5] जब तक तुझमें जीवन है मुझ में उसका आकर्षण,
जब तक तू रूप शिखा सी मैं विकल आत्म आवेदन। (वही, पृ० ६१, ८७.)

"जीवन आकाश में मँडराता हुआ एक छोटा-सा मेघ पुंज है"। वह सुख का साधन है।

किन्तु धीरे-धीरे पुरुष की विचारधारा सात्विक होती जाती है, लालसाएं स्थिर होती हैं, और तब वह नारी के सत्य स्वरूप को देखता है। अब वह नारी को "उर की आलोक किरण" के रूप में पहचानता है, जो उसे वासना के गर्त में गिरने से बचाती रही है।[1] अब वह जानता है कि नारी के अनेक रूप है, जिनकी उपासना जगत् करता है किन्तु जो वास्तविक रूप है, अस्तित्व का सार है, उसे कोई देखता या जानता नहीं। "जो तुम्हारे उस रूप को पहचान सकता है, उसके तुम सम्पूर्णतः वश हो जाओगी। जो तुम्हारे उस नाम का उच्चारण कर सकता है, वह तुम्हारा सखा, पति, राजा, देवता और ईश्वर है।"[2] इसीलिये पुरुष अंत में यही कह पाता है :—

"इस अपूर्ण जग में कब किसने प्रिय, तेरा रहस्य पहचाना।"[3]

नारी पुरुष की दृष्टि में चाहे जो कुछ भी रही हो, उसका निजी रूप तो "एकायन"—एक ही मार्ग, एक ही आसक्ति में ही मुखरित होता है। पुरुष की दृष्टि में तथा नारी के वास्तविक रूप में बहुत अंतर है। साथ ही पुरुष और नारी में प्रेम संबंधी दृष्टिकोण में भेद है। नारी निष्क्रिय है, उसके पास एक ही द्वार है। उस द्वार को पुरुष खटखटाता है। नारी आतुर हो पुरुष का स्वागत करती है और उसे बंदी बना कर रखना चाहता है, किन्तु स्वतंत्र पुरुष मुक्त पक्षी की भांति उड़ जाता है, और नारी रह जाती है अपनी स्मृतियां, व्यथायें और अनंत उपासना लिए हुए।

नारी में जब प्रेम जाग्रत होता है तो पूजा के रूप में और वह अनजान (अननोटिस्ड) रूप में ही अपना अर्घ्यदान करना चाहती है।[4] उसके आत्म-समर्पण में दंभ नहीं है और प्रेम की अनुभूति पूर्ण है। उसके जीवन में प्रेम की अनुभूति है सबसे अधिक मूल्यवान है। उसे अपने सुदीर्घ जीवन में प्रणय संयोग की दो घटनाओं प्रथम मिलन और परस्पर आत्म समर्पण के अतिरिक्त कुछ भी याद नहीं रहता।[5] उसके

---

[1] वही, पृ० ९८, ९९.

[2] वही, पृ० ९९, ९९, २.

[3] वही, पृ० १००, १००

[4] ध्यान मत दो तुम मेरी ओर न पूछो क्या लाई हूं साथ।
गान से भरा हुआ यह हृदय अर्घ्य को चिर तत्पर ये हाथ। (पृ० १११, ७)

[5] मेरे इस लंबे जीवन में
दो स्मृतियां हैं, प्राण तुम्हारी :
उनसे पहले, उनसे आगे
एक निविड़ रजनी है सारी
—एक जब कि पहले पहले हो
सहसा चौंक मुझे लखते ही
मानो झुक कर मानो झुक कर
अपने ही में सिमट सभल कर

आत्म समर्पण मे कहीं रिक्त स्थान नहीं रहता , वह अपनी गति, अपनी क्षमतायें, अपना विश्वास, हृदय की तृष्णा, अपना अभिमान, और अपने को भी प्रिय के चरणों में समर्पित कर देती है ।[1] साथ ही उसे प्रतिदान की आकांक्षा नहीं, "भेंट का साफल्य उसे दे देने मे ही है, उसकी स्वीकृति मे नहीं ।" पुरुष अपनी विजय लालसा मे यदि नारी की भेंट को ठुकराता है तो उस क्षोभ स्पर्श नहीं करता ।[2] नारी जानती है, या अपने पूर्ण प्रेम के कारण स्वीकार करती है, कि उसके गीतों का भाव जगाने वाला, उसकी गति का सचालक, उसकी वीणा मे सजीवन ध्वनि उपजाने वाला पुरुष है । इतना ही नहीं .—

"तुहिन बिन्दु मैं किन्तु किरण तू
उसको चमकाने वाली—
मै प्रेरणा तू जीवनदाता
मै प्रतिमा, निर्माता तू ।"[3]

उसकी प्रणय-कल्पना युगो की सीमाओं मे जाती है, और अनत आराधना मे लय होती है ।[4] उसके प्रेम मे एक निष्ठा है, उसकी हृदय पारिधि मे प्रिय का अटल आसन है । उसके प्रेम मे वैयक्तिक पार्थक्य के लुप्त होने की आकांक्षा है,[5] जिसे पुरुष ने असभव पाया था । नारी मे कल्पना की तीव्रता है और इसलिए वह सोचती है .—

"क्यो न हमारा प्रणय रहेगा स्वप्निल
छायाओं का शुभ्र चिरतन दर्पण ।"[6]

बैठ रहे थे तुम नीरव, नत मस्तक ।
मै हा मै, भी बोल नहीं पाई थी कब तक ?
—और दूसरी जब मैने कौशल से
छिपे छिपे आ निकट तुम्हारे, छलसे
वे दो वाक्य सुने जाने किसके प्रति उच्चारित
किन्तु जिन्हें सुन मेरा कण कण हुआ कठकित पुलकित ।
मैं तेरा हूँ—तू मेरा है
कैसा यह प्रेम घनेरा है, (वही, पृ० ११७, ११८ १०)

[1] वही, पृ० ११६, १३.
[2] वही, पृ० १२०, १४
[3] वही, पृ० १२३, १६
[4] प्रणय अक तेरे में खोने मै युग युग बहती ही बहती
अथक स्वरों में अनगिन दिन तक वही बात बस कहती रहती ।
(वही, पृ० १२४, २०)
[5] किस अनिर्वच, सुख से आखें मींचे
हम खो जावें, वैयक्तिक पार्थक्य मिटा कर । (वही, पृ० १२८, २६)
[6] वही, पृ० १२८, २६.

समस्त नश्वरताओं को भुला कर, सदेहों को दूर कर वह केवल एक प्रेम प्रवाह की अजस्रता को देखती है, और उसी मे परम सुख का अनुभव करती है, मिलन सुख के सम्मुख उसके हृदय मे अमरत्व का आकर्षण बहुत ही कम रह जाता है।[1] उसमे एक सतोष की अवस्था है। उसकी दृष्टि में पुरुष स्त्री का प्रणय सम्बन्ध एक अबाध किन्तु अथक स्नेह से पूर्ण सखा सखी भाव है, जिसमे परस्पर पूजा भाव है, परस्पर आत्मार्पण है और अति नैकट्य है।[2] उसमे प्रेम पात्र को सुख ही देने की आकाक्षा है, व्यक्तिगत दुःख को सामने रखने का उत्साह नही है .—

"मेरी पीड़ा मेरी ही है तुम्हें गीत ही मै दूगी,
यदि असह्य हो, क्षण भर चुप रह यति में उसे छिपा लूँगी।"[3]

पुरुष का निर्दय आघात भी उसके प्रेम का अत करने मे असमर्थ रहता है। मन आहत होकर भी रोष नही करता है .—

"तर्क सुझाता घृणा करूँ, पर यही भाव रहता है घेरे,
तुम इस नयी सृष्टि के स्रष्टा क्रूर, क्रूर, पर प्रणयी मेरे।[4]

नारी पुरुष की सामर्थ्य, शारीरिक शक्ति की उपासना करती है। वह इतना ही चाहती है कि उस सामर्थ्य का अवलब, और उसकी अभयद छाया पाले .—

"ईश्वर बन कर मत्र शक्ति से छू दे मेरा भाल—
दानव होकर चूर चूर कर दे मेरा ककाल—

---

[1]वही, पृ० १२६-१३०, २८.

[2]मै तुम क्या ? बस सखी सखा !
तुम होओ जीवन के स्वामी, मुझसे पूजा पाओ—
या मै ही होऊँ देवी जिस पर तुम अर्घ्य चढ़ाओ,
तुम रवि जिसको तुहिन बिन्दु सी मै मिटकर ही जानूँ
या मै दीपशिखा जिस पर तुम जल कर जीवन पाओ,
क्यो यह विनिमय जब हम दोनो ने अपना कुछ नही रखा।
मै तुम क्या ? बस सखी सखा !
क्यों तुम दूर रहो जैसे संध्या से संध्या-तारा ?
मैं क्यो बद्ध अलग, जैसे वारिधि से अलग किनारा ?
हमें बाँधने का साहस क्यो मधुर नियम भी पाए ?
तुम अबाध मै भी अबाध हो अनथक स्नेह हमारा !
प्रिय प्रेयसि रहकर किसने उसका सच्चा रूप लखा !
मै तुम क्या ? बस सखी सखा। (वही, पृ० १३० १३२, ३१)

[3]वही, पृ० १३३, ३३.

[4]वही, पृ० १३३, ३७.

मात्र पुरुष रह बाँध भुजों से मर्माहत कर डाल !
मुझे सिखा दे सुनना केवल तेरा ही निर्देश—
तेरे अभयद कर की छाया में करना उन्मेष,
अपना रहना अपनेपन को देकर तेरा वेष।,"[1]

केवल प्रेम नारी जीवन की निधि है जिसे लेकर उसे किसी अन्य वस्तु की आकाक्षा नही रह जाती। इस एक अकेली ज्योतिकिरण से उसकी काया पुलक उटती है, और राह की विघ्न बाधाएँ नगण्य हो जाती है। उसके जीवन मे प्रिय मिलन ही जब सब कुछ है तो वियोग मे भी वह यही कहती है :—

"आओ प्रियतम, आओ प्रियतम !
पवन तरी है मेरा जीवन,
तुम उसके सौरभ नाविक बन,
दसो दिशा छा जाओ प्रियतम।"[2]

नारी मे स्वमहत्वस्थापन (**सेल्फ एसर्शन**) की मात्रा पुरुष से बहुत कम है। अपनी तुच्छता को स्वीकार करते हुए उसे लज्जा नही होती। फिर भी वह इतना जानती है कि वह अपने अस्तित्व के प्राण पुरुष की शक्ति की सरक्षिका है। नारी का लक्ष्य पुरुष की कृतित्व शक्ति का विकास करना है।[3] किन्तु नारी का जीवन अधिकांश विरह पूर्ण है। जब पुरुष का प्यार उचाट हो जाता है तो नारी का मानो ससार ही नष्ट है :—

"तम ने चारों ओर घेरा,
उचट गया जब प्यार तेरा।
टूटा जीवन दीप मेरा
कुचल दो इसको, धूल में मिला दो।"[4]

किन्तु उसका आक्रोश प्रिय के प्रति नही होता (जैसा पुरुष का होता है)। वह नीरव, मौन पीडा को सहन करती है। उसमे सहन शक्ति है, अपूर्व अभियोजन शक्ति है।[5] उसके हृदय का उत्ताप छिपा पडा रहता है—"मुझ मे भी उत्ताप है, मुझमे भी दीप्ति है, मैं भी एक प्रखर ज्वाला हूँ। पर मैं स्त्री भा हूँ, इसलिए नियमित हूँ तुम्हारी सहचरी हूँ, इसलिए

---

[1]वही, पृ० १३४, ३५.
[2]वही, पृ० १४१, ४५.
[3]वही, पृ० १४६—७, ५३.
[4]वही, पृ० १५०, ५८.
[5]रहने दे इनको निर्जल ये प्यासी भी जी लेंगी,
युग युग से स्नेह-लाछायित पर पीड़ा भी पी लेंगी। आदि।
(वही, पृ० १५५,६१)

तुम्हारी मुखापेक्षी हूँ, तुम्हारी प्रणयिनी हूँ इसलिए तुम्हारे स्पर्श के आगे विनम्र और कोमल हूँ।"[1] उसके एकनिष्ठ प्रेम पर ससार की रौरवता भी अपना प्रभाव डालने मे असमर्थ रहती है,[2] किन्तु "इस सब उपासना और प्रेम का अतिम लक्ष्य पुरुष नहीं", उस प्रेम व्रत के सम्यक् उद्यापन की कामना मे निरत मेरी उग्र शक्ति ही है।" पुरुष ने प्रेम को नश्वर कहा था, किन्तु नारी उसे अनश्वर मानती है, और उसे दिव्य बनाने मे प्रयत्नशील रहती है। उसके प्रयत्न मे आशा है, और उसकी भावना की चरम परिणति यही है .—

"आशा, मधुद्वार प्रणय का इससे आगे क्या गाऊ।
आशा के उठते स्वर पर मैं मौन, प्राण, रह जाऊ।"[3]

इस प्रकार अज्ञेय ने पुरुष-प्रकृति और नारी-प्रकृति के अतर की रूपरेखाये स्पष्ट करते हुए अपना यथार्थवादी किन्तु पक्षपातहीन दृष्टिकोण उपस्थित कर दिया है। "एकायन" मे उन्होंने नारी का जो रूप उपस्थित किया है वह छायावादी कवियो की नारी से मिलता जुलता है। अज्ञेय ने मनोविश्लेषण विज्ञान द्वारा उपस्थित की गई नारी चरित्र की वीभत्सताओ को सामने लाने का प्रयत्न नहीं किया है।

चतुथ प्रकार की भावना प्रकृतिवादी उदासीन है। इस भावना के आधार-स्तभ भगवतीचरण वर्मा हैं। नारी के प्रति निरपेक्ष (उदासीन) दृष्टिकोण के विचार से वर्मा जी अज्ञेय के समकक्ष रखे जा सकते हैं। किन्तु अतर यह है कि अज्ञेय की विचारधारा मनोविज्ञान पर आधारित है और वर्मा जी की प्रकृतिवाद और परिस्थितिवाद पर। अज्ञेय मनोविज्ञान के सिद्धान्तों के आधार पर सतुलित दृष्टिकोण का निर्माण करते हैं, किन्तु वर्मा जी नारी-प्रकृति की नग्न यथार्थताओ को लेकर पारिस्थिति चक्रो मे उनका उद्घाटन करते हैं। वर्मा जी पाप पुण्य, सत् असत् की परिभाषाओ को लेकर नहीं चलते। ससार के सबध मे कवि का दृष्टिकोण यह है :—

"भला बुरा कुछ नहीं यहाँ पर, यह केवल अनुमान।"[4]

कवि की अटल धारणा है कि मनुष्य परिस्थितियों का अनिवार्य दास है, उसकी व्यक्तिगत इच्छायें कुछ भी करने मे असमर्थ है,[5] और "पतन ही है जीवन का सार"। कवि के मत

---

[1] वही, पृ० १६०, ६६

[2] पर प्रियतम! जिन प्राणो पर पड़ चुकी कभी भी तेरी छाया
उन्हे खींच लेने की शक्ति कहाँ से लावे उसकी माया।
नीरव उर मदिर में यह मन तेरा ध्यान किया करता है—
यद्यपि सदा रौरव जग का मेरा आह्वान किया करता है। (वही, पृ० १६६, ७६)

[3] वही, पृ० १७६, ८४

[4] भगवतीचरण वर्मा—मधुकण : ससार, पृ० ५३.

[5] इच्छाएँ हैं प्रबल, किन्तु हैं असफल सकल उपाय,
भटकते हैं हम सब असहाय,

में उच्चाकांक्षायें ढोंग हैं और धर्म भ्रम तथा अप्राकृतिक भाव है।[1] उत्थान और पतन प्रकृति का अटल नियम मानकर कवि ने लिया है।[2]

इस परिस्थिति में कवि नारी को सत् असत् की कसौटी पर नहीं कस सकता। यह कवि नारी के सतीत्व, पतिव्रत, पवित्रता, एकनिष्ठ प्रेम आदि भावों पर तो ध्यान देता ही नहीं, साथ ही, नारी पुरुष के लिए अनिवार्य आकर्षण शक्ति है, तृष्णा उत्तेजक है, गर्त में गिराने वाली है, वासना की साकार मूर्ति है—इन भावनाओं को भी अवहेलना करता है। उसकी दृष्टि में परिस्थितियां ही महत्व रखती हैं, व्यक्तिगत गुण या कर्म नहीं। "तारा" नामक गीतिनाट्य में कवि ने इस भावना का भलीभांति प्रतिपादन किया है।

तारा महर्षि बृहस्पति की पत्नी है। उसके हृदय में तपस्या और साधना के प्रति आशंका उठती है, वह यौवन का उपभोग चाहती है —

इस उमंग के स्रोत की
किस सुख की आशा से गति अवरुद्ध है[3]

वह वृद्ध बृहस्पति के प्रति भक्ति भाव रख सकती है किन्तु प्रेम नहीं, और उसे :—

"चाह है रस की पावन प्रेम की,
उस विस्मृति की, उस अनंत संगीत की
जिसमें निज ममत्व को सहसा भूल कर
हो जाऊँ मैं मग्न, और कर दे मुझे
प्रबल प्रेरणा प्रथम प्रेम की प्रवाहित
मादकता के विस्तृत तीव्र प्रवाह में।"[4]

बृहस्पति प्रकृति का दमन करने का प्रयत्न करते हैं, संसार की अस्थिरता का ज्ञान कराते हैं,

---

परिस्थितियों की विस्तृत परिधि, प्रेरणाओं का है समुदाय,
गिरे नीचे नीचे दिन रात, क्षणिक हैं सारे क्षीण उपाय,
(मधुकण नूरजहां की कब्र पर, पृ० ७८)

[1]उच्च आकांक्षा का उच्छ्वास,
ढोंग है, यह है आडंबर।" **(वही : घृणा, पृ० १०१)**
तथा—
धर्म भ्रम है अप्राकृतिक भाव,
अंधविश्वास पूर्ण अविचार। **(वही, पृ० १०३)**

[2]उठते गिरते ही रहते हैं, राजा हो या रंक।
अमिट हैं ये विधिना के अंक।
(मधुकण : नूरजहां की कब्र पर, पृ० ८७)

[3]मधुकण : तारा, पृ० १०७-१०८.

[4]तारा, पृ० १०८.

वासना के दमन का उपदेश देते हैं। किन्तु तारा का मनोवृत्ति प्रेरित मस्तिष्क चिल्ला उठता है "कर्मक्षेत्र है शुष्क, नर्क भ्रम जाल है।"

दूसरी ओर वृहस्पति का तरुण जिज्ञासु शिष्य चद्रमा है। उसे भी वृहस्पति वासना जो प्रकृति का अश है, के दमन का उपदेश देते हैं, वासना को अभिशाप बताते हैं। किन्तु वृहस्पति के उपदेश युवती तारा और युवक चन्द्र की प्रकृति को कुठित करने मे असमर्थ रहते हैं। युवती तारा चन्द्रमा को देखकर आकर्षित हुए बिना नहीं रहती और उसी प्रकार चद्रमा। इस समय उनका गुरु पत्नी और शिष्य का सबध कोई मूल्य नहीं रखता, वे रह जाते हैं मात्र नारी और नर। तारा को चद्रमा का 'माता' सबोधन अभिशाप प्रतीत होता है। तारा पर चद्रमा के दर्शन से जो प्रभाव हुआ उसका विश्लेषण करने मे वह स्वय असमर्थ है। चद्रमा को वह अपना परिचय इस प्रकार देती है :—

"नही जानती हाय स्वय मैं कौन हू, मैं जग के विरोध की भाषा मौन हूँ।
मैं समाज निर्मित समाज की दोष हू, स्वय घुला देने वाली मैं रोष हू।

\+ \+ \+

विकसित यौवन की मैं दबी उमग हू।
रूप राशि हूँ रूप राशि की चाह हूँ।
उठे और मिट जाय वही रस रग हूँ।"[1]

चन्द्रमा के हृदय मे तारा का सौदर्य भीषण उथल-पुथल मचा देता है और वह उसे "झझा-वात भयानक क्राति" के रूप म देखता है। किन्तु कवि निष्पक्ष रूप से परिस्थितियों के विकास मे सलग्न है। वृहस्पति के प्रस्थान के बाद चद्रमा आश्रम-रक्षा का भार लिए हुए तारा से मिलने का सयोग पाता है। वह सगम प्रस्ताव करता है, और तारा कह उठती है :—

"यदि है धर्म मार्ग पर ही करुणा व्यथा,
तो फिर आओ चलें पतन को ही चलें"[2]

वृहस्पति अदृश्य चद्रमा के साथ तारा का शाप देते हुए पतिता और दुराचारिणी कहते हैं, किन्तु कवि तारा और चद्रमा के कृत्य को प्रकृति के परिस्थिति सहयुक्त विकास के रूप मे ही देखा है। इस घटना को लेकर कवि नारी के सबध मे अपना कोई फैसला नहीं देता।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रगतियुग के कवि मनोविज्ञान तथा मनोविश्लेषण विज्ञान से, कभी अधिक कभी कम, प्रभावित रहे हैं। इस विज्ञान के प्रभाव से कुछ कवियों ने नारी की नग्न प्रकृति का दर्शन करके कुछ घृणात्मक भावना का निर्माण किया, कुछ ने उसमें परिष्कार करते हुए नारी को देखा, कुछ ने निरपेक्ष भाव से नारी चरित्र को उपस्थित कर दिया और कुछ ने अपनी वासनाओं की अभिव्यक्ति को स्वाभाविक मान कर नारी को शारीरिक भूख की तृप्ति का साधन बना लिया। इस प्रकार की विविधता इस बात की

---

[1] वही, पृ० १२०-१२१.
[2] वही, पृ० १२४.

द्योतक है कि आधुनिक कवि का मस्तिष्क अस्थिर और अनिश्चित अवस्था मे है। वह अनेक प्रयोग कर रहा है, किंतु किसी एक निष्कर्ष पर पहुँचने मे अपने को असमर्थ पा रहा है।

१. क्षयी रोमांसवादी नारी-भावना

परिवर्तन युग मे सामाजिक कुंठाओं जनित निराशा ने छायावादी कवियों को काल्पनिक सुख का खोजी, और अतीन्द्रिय सौन्दर्य का प्रेमी बना दिया था, और इस प्रवृत्ति ने रोमासवादी नारी भावना के मध्य "प्रेयसी" और "प्रणयिनी" की सृष्टि की थी। उस रोमासवादी भावना का अत उस युग के साथ नही हुआ, समाजवादी और क्रान्तिवादी प्रवृत्तियाँ भी बहुत समय तक उसके प्रवाह को न रोक सकी। उसी धारा के मध्य जो नए विकास इस युग (प्रगतियुग) मे हुए उन पर हमे दृष्टिपात करना है।

इस युग के कुछ कवि नरेन्द्र, अंचल, बच्चन, निराशावाद जनित रोमास के कवि हैं। इस युग का निराशावाद गतयुग के निराशावाद से अधिक भीषण है और अपने पार्श्वों मे नियतिवाद और भाग्यवाद को लेकर अधिक कटु हो जाता है। बाह्य और आतरिक असतोष के कारण कवि की प्रवृत्तियाँ अतर्मुखी हो गई है, कवि अपने कल्पना जगत मे सुख की खोज करने लगा, अपने आदर्श का निर्माण करने लगा। फलत जिस प्रकार गतयुग मे रोमासवादी कवि ने "प्रेयसी" और "प्रणयिनी" की मधुमयी कल्पना करके मानसिक तृप्ति लाभ की थी, उसी प्रकार इस युग के रोमासवादी कवि ने "पथिक प्रिया" और "मधुबाला" की सरस कल्पना द्वारा सुख प्राप्ति का प्रयत्न किया है। किन्तु दोनों युगों की रोमासवादी नारी भावना की विभिन्नतायें स्पष्ट हैं। गत युग के कवि की भावना अधिक सूक्ष्म और स्वस्थ थी, किन्तु इस युग का रोमासवादी कवि क्षयग्रस्त युवक है, उसकी भावना मे स्वास्थ्य के लक्षण कम हैं, सभवत निष्फलता की भीषणता के कारण। और साथ ही वह अधिक मासल भूमिपर है। गत युग के कवि ने रीतिकालीन अतिशृगारमयी, वासनापूर्ण, ऊहात्मकता युक्त नारी भावना के प्रति विद्रोह किया था और नारी के भावक्षेत्र का दर्शन सुसस्कृत रीति से किया था। उसका विशेष ध्यान नारी की कर्तव्यबुद्धि और विशेषरूप से ऐंद्रिक-वासना-हीनता दिखाने की ओर था। सामाजिक कुण्ठाओं के प्रति हृदय मे विद्रोह लिए हुए भी वह प्राय. समाज प्रदत्त समस्याओं के मध्य ही लड़खड़ाते "प्रणयिनी रूप" को देख सका, केवल निराला ने कुछ दूसरे ढग का प्रयास किया था। इस युग का कवि, सभवत' मनोविज्ञान से प्रभावित होकर या व्यक्तिगत दुर्बलतावश, कुछ अधिक साहसी है, वह मनुष्य की वासना-हीनता को एक पाखंड समझता है और उसकी नैसर्गिक भावधाराओं को व्यक्त करना दोष नहीं मानता। फलत. वह सूक्ष्म से उतर कर स्थूल मासल भूमि पर आ गया है। इसके अतिरिक्त वह रोमांस के क्षेत्र मे जानबूझ कर समाज को भुला कर अपनी कल्पना के पंख को फैलाता हुआ दिखाई पड़ता है।

अस्तु, क्षयी रोमास ने दो नई सृष्टियाँ की—१. पथिकप्रिया २. मधुबाला। प्रथम की सृष्टि का श्रेय विशेष रूप से नरेन्द्र को और द्वितीय का बच्चन को है। पथिक

प्रिया वह नारी है जो नियति के शाप से बँधे चिर पथिक पुरुष की सध्याओं को साश्रय बना कर उसके हृदय की तृषा को अपने मधुदान से तृप्त कर देती है, और इस घटना से पूर्व उत्सुक कुमारी तथा उसके बाद चिर प्रोषितपतिका बनी रहती है। "ग्राम गीतों में मानव जीवन के उन प्राथमिक चित्रों के दर्शन होते हैं जिनमें मनुष्य साधारणत' अपनी लालसा, वासना, प्रेम, घृणा, उल्लास-विषाद को समाज की मान्य धारणाओं से ऊपर नहीं उठा सका है और अपनी हृदय भावनाओं को प्रकट करने में शिष्टाचार के प्रतिबन्ध भी नहीं मानता है।" ग्रामगीतों मे नारी प्रायः विदेशगत प्रिय की विरहोत्कठिता नवयौवना प्रिया के रूप में अवतरित होती है जो कभी भौरे, कभी मेघ, कभी पवन आदि के द्वारा फागुन या पावस के आगमन की सूचना के साथ पूर्ण सदेश प्रिय को भेजती देखी जाती है। नरेन्द्र की "कामिनी" का भी उत्तरार्ध मे कुछ कुछ यही रूप है।

अस्तु, पथिक प्रिया मिलन की लालसा लिए विह्वल प्रगल्भ नायिका है और विरह की आकुल प्रोषितपतिका। जिस कामुकता और प्रगल्भता की कल्पना भी गतयुग के कवि अपनी नारी मे नहीं करना चाहते थे उसके दर्शन इस युग के कवि ने पथिक प्रिया मे किये हैं। चचल यौवन के सार्थक उपयोग के सबध मे वह बहुत चिंतित दिखाई पडती है।[1] जब कवि स्वय प्यासे यौवन मे कल से विनिमय करने के पक्ष मे नही है[2] तो उसकी नारी का यह रूप अस्वाभाविक नहीं। "विह्वल तन, पागल मन लेकर"[3] वह प्रिया की आशा मे प्रतीक्षाकुल दिखाई पडती है, और मिलन रात्रि के प्राप्त होनें पर अत्यन्त मुखर हो उठती है :—

"बाध रेशमी डोरियो में मैं तुम्हे सब दिन
रखूँगी पास, निश दिन पा, अपने पास।"[4]

मादक लालसाओ की पूर्ति का साधन बटोही को पाकर वह अत्यन्त चचल और वासना-कुल हो उठती है —

"नाच रही सागर की लहरें उष्ण रक्त से मेरे,
डोल रही उर में अरण्य की व्याकुलता अति घेरे।

---

[1] उड न जाय यह चचल यौवन !
छू दो अपने कोमल कर से सजग मजरित हो तद्रिल तन,
स्नेह परस से जाग पुलक दल पल भर को कम ले नवयौवन।
(नरेन्द्र – कर्णफूल, पृ० ४०) तथा
देखिए—अचल—किरण वेला . तुम्हें न जाने दूँगी, पृ० ६५.

[2] आज करूँ क्यों कल से विनिमय !
कल जाने कैसी होगी कल
कल कैसी प्यासे यौवन में (नरेन्द्र— कर्णफूल, पृ० ८७)

[3] वही, अनंत प्रतीक्षा, पृ० ११.

[4] नरेन्द्र—कामिनी : अतिथि, ५ पृ० २४

आज जलेगी जब तक मेरे इस यौवन की ज्वाला।
कुसुम मुकुल सा पूर्ण सुखातुर अध हृदय मतवाला।"[1]

उसकी वासनायें पूर्ण तृप्ति चाहती हुई निद्रा के व्यवधान को भी सहन करने मे असमर्थ हैं।[2]

किन्तु पुरुष, इन कवियों की दृष्टि मे, अतत. बटोही या पथिक ही है। (इस युग के कवि की यह भी पुरुष सबन्धी एक नई ही भावना है)। नरेन्द्र ने अपने 'स्वच्छन्द गीत' मे इस परिस्थिति को समझाने का प्रयत्न किया है.—

"नित्य नूतन नयन प्याले किन्तु आसव एक सा है,
नित्य नूतन नयन प्यालों से जिसे मन पी रहा है,
सब दिन, कहो कैसे लुभाएँ, एक दिन के फूलप्याले की
सजीली मोह माया!
बाले! मुझे तो प्रेम का प्रिय-पथ भाया!!
प्रेम का प्रिय पंथ मेरा पथ है तो पथ में चलना सदा है।
विश्राम कैसे लूँ, प्रिये जब भाग्य में ही भूलना,
फिर खोजते रहना बदा है?"[3]

इस परिस्थिति मे नारी के जीवन की रूप रेखाये यह हो जाती हैं.—

"जब दूर दूर वे, मैं उदास फिर वे उदास जब मैं न पास,
जो रहे पास तो रस विलास, ओझल होते ही विरह त्रास।"[4]

नरेन्द्र ने 'कामिनी' मे इन निखरे सिद्धान्तो का एक पूर्ण चित्र उपस्थित कर दिया है। पथिक पुरुष की दृष्टि मे नारी-पुरुष "प्यास मन की बुझाने को परस्पर मधुपात्र" भर है, और वह दिन भर की थकान के बाद सन्ध्या समय को कामिनी की स्नेह छाया में विश्राम और सुख पाता है, किन्तु स्थिर रहना उसका स्वभाव नहीं है। फलत. सूर्य की किरण कामिनी के लिए चिर वियोग का सदेश लेकर आती है। नारी के जीवन में "दो घडी का मिलन फिर आजन्म विरह बिछोह" ही है। वियोग काल की कामिनी की मूर्ति गतयुग के कवि की श्रद्धा, या गोपी या अनारकली मे अपना साम्य नहीं पाती, इसका कारण दोनों की प्रेमानुभूति का अन्तर न होकर प्रेमानुभूति की अभिव्यक्ति का अन्तर है, और अभिव्यक्ति का आधार कवि की भावना है। नरेन्द्र की नारी भावना ग्राम-गीतों के भावों का सग्रह कर अधिक नैसर्गिक और सामाजिक चेतना से अश्लिष्ट हो गई है। कवि का दृष्टिकोण स्त्री-पुरुष के प्रकृत सबध के मध्य नारी के पार्ट का देखना रहा है। इसलिए जहा मिलन मे उसने प्रकृत-प्रेरणाओं पर ही ध्यान दिया है वहा वियोग में भी कवि नारी को

---

[1] अंचल—किरण वेला : तुम्हें न जाने दूँगी, पृ० ६४.
[2] नरेन्द्र—कर्णफूल : आज न सोने दूँगी बालम, पृ० ७६-८२.
[3] वही : पृ० ५४-५६.
[4] वही : प्रियतम मेरे, मैं प्रियतम की, पृ० ५२

"घायल हिरनी सी घबराती", "बिछुडे सारस सी डकराती",[1] "पटबिजना सी आस" का सबल लिए दर्शन की अभिलाषा मे दुःखी दिन व्यतीत करती, खजन और हस के साथ नेत्रों और प्राणों को भेज कर मनभावन की खोज करना चाहती,[2] चौबारे पर चौमुख दिवला बार कर अपने राजकुमार की प्रतीक्षा करती[3] ही देख सका है। उसके सम्मुख नारी सुकुमार भोले स्नेहमय रूप मे आती है। नारी का विश्वास और पूर्ण आत्मसमर्पण तथा एकनिष्ठ प्रेम उसमे है। किन्तु इन विशेषताओं के अतिरिक्त जिन अन्य गुणों को गतयुग के कवि ने अपनी नारी मे देखा था, उन्हे इस युग के कवि ने अपनी "पथिकप्रिया" में खोजने का प्रयत्न नही किया है।

"पथिक प्रिया" की भावना परिवर्तन युगीय कवियों की "प्रणयिनी भावना" से अधिक वासनापूर्ण है, किन्तु रीतिकालीन कवियों की नारी भावना से कम विलासमय है। एक और भी विशेषता रीतिकालीन नारी भावना से इसका अन्तर स्पष्ट करती है। कवि ने स्त्री--पुरुष को "प्यास मन की बुझाने को परस्पर मधुपात्र" अवश्य कहा है, नारी के वासना-कुल रूप को अवश्य सामने रखा है, किन्तु साथ ही उसने "प्रेयसी से उच्च मा का स्थान" माना है। स्त्री-पुरुष के प्रकृत आकर्षण के फल की उपेक्षा उसने नहीं की है। मिलन रात्रि ऐन्द्रिक सुख की तृप्ति अवश्य थी किन्तु—

"नियत क्षण का पराभव जिससे नई उत्पत्ति,
तत्व दो मिल डूबते होती प्रकट नव शक्ति।"[4]

इस तथ्य को कवि ने नही भुलाया है। यद्यपि कामिनी यौवनमद से उन्मत्त दिखाई पडती है किन्तु प्रात. काल आदितेजस् सूर्य भगवान की प्रार्थना मे नत होकर वह यही वरदान माँगती हुई दीखती है .—

"मञ्जरी मुरझी लगा जब डाल पर फल आम,
क्या न सार्थक हुई मै भी दे उन्हे मधुदान
सफल हूँ, फलवती हूँ मै, दो मुझे वरदान,
सूर्य तेजस्वी! अहे, चर अचर के भगवान।"[5]

यद्यपि उसके विरहगीतों मे गत प्रिय का ही ध्यान विशेष है, भावी शिशु के स्वप्न (श्रद्धा के समान) नही है, किन्तु कवि यह कहना नहीं भूला है :—

"भार कितना मधुर सुखमय मधुर कितना भार।
और कुछ दिन, मिलेगा जब मातृपद अधिकार।"[6]

---

[1] नरेन्द्र—कामिनी—निशिवासर, ६ पृ० ५१.
[2] वही, ७, पृ० ५३.
[3] वही, १५, पृ० ६१.
[4] वही, पृ० ४३
[5] वही—फूल और पत्र पृ० ३३.
[6] वही, पृ० ६०.

और पुस्तक का अवसान कामिनी की गोद मे नवेन्दु के उदय होने के साथ ही होता है।

इस युग के छायी रोमासवादी कवियों ने नारी को कामोन्मत्त विलासिनी रूप मे देखा है। किन्तु उनके इस दृष्टिकोण मे वितृष्णा का भाव उदय नही हुआ है। हाँ, कुछ कवियों मे, जैसे अचल, वासनामयी नारी भावना के कारण ही, उसकी नीव पर घृणात्मक नारी भावना उठ खडी होती है। ऐसा होना मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अस्वाभाविक नही है। नरेन्द्र ने भी आगे चल कर रोमासवादी नारी भावना का परित्याग कर दिया है, यद्यपि वितृष्णा भाव का उदय हम उनमे नही पाते।

छायी रोमास की दूसरी सृष्टि है "मधुबाला"। निराशा और विद्रोह का द्वंद्व इस भावना की मूल है। वाह्य जीवन की निष्फलताओं से प्रताडित कवि ने अपने दु:ख को डुबाने के लिए, सुख की खोज मे, हाला और मधुबाला से युक्त मधुशाला की सृष्टि की है.—

"दुनिया भर की ठोकर खा कर पाई मैंने मधुशाला।"[1]

मधुशाला का निर्माण करने वाले कवि का विक्षिप्त मानसिक अवस्था "मधुबाला" के प्रलाप मे स्पष्ट है। कवि ने समझा था कि जीवन पूर्ण है, किन्तु उसने पग पग पर पाई कठिनाइयाँ, पीडायें, दु:ख और दोष। "जल गई उगलियाँ, जल गया शरीर और जल गया हृदय। जान लिया उसने कि जग और जीवन अपूर्ण है। पर उसने इस अपूर्णता के सामने शीश न झुकाया। मन मे योवन था, तन मे यौवन था, राम रोम मे यौवन था। जलते हुए हृदय की ज्वालाओं से भी विश्व के अधकार मे यदि कोई मार्ग दिखाई पडे तो वह उसकी ओर पाँव बढाने को तैयार था। उसके दग्ध हृदय के प्रकाश मे सोने की मधुशाला चमक उठी, उसने मधु घट से प्याला मे गिरती मदिरा की कल-कल छल-छल, सुनी, उसने मधु वितरण करन वाली मधुबाला के पग पायलों की रुन-झुन रुन-झुन सुनी।. उसने अपने चारों ओर कल्पना का विस्तृत ससार बसा लिया। सुषमा ने अनेक मधुबालाओं के रूप मे मूर्तिमान होकर उसे घेर लिया।"[3] चाहते हुए भी जीवन की वास्तविकताओं से प्रेम न कर सकने वाले, "असम्भव स्वप्नों से विक्षिप्त" कवि ने अपने मानसिक जगत मे "मिट्टी की देह धारण करने वाली स्त्री" का प्रतिरूप

---

[1] मधुशाला, ६२.

[2] हरिवंश राय "बच्चन"—कृत.

[3] बच्चन—मधुबाला : प्रलय पृ० १.

इसी भाव को "बच्चन" ने बुलबुल नामक कविता मे भी व्यक्त किया है :—

"हमारा अमर सुखो का स्वप्न, जगत का, पर, विपरीत विधान,
हमारी इच्छा के प्रतिकूल पडा है आ[illegible]म पर अनजान।
झुकाकर इसके आगे शीश नही मानव ने मानी हार।
मिटा सकने में यदि असमर्थ भुला सकते हम यह ससार।

(मधुबाला, पृ० ५९)

मधुबाला में देख कर तृप्ति पाई है। जिस प्रकार निराशाग्रस्त, पलायन प्रिय, छायावादी कवियों ने "प्रेयसी" का चित्र आँका था उसी प्रकार "हालावादी" कवियों ने जीवन की यथार्थताओं से पीड़ित हो, उन्हें भुलाने के लिए, "मधुबाला" की सृष्टि की है। जब कवि को "अपूर्ण संसार नहीं भाता और वह स्वप्नों का संसार लिए फिरता है",[1] और जब उसका "ध्येय विस्मृति ही है",[2] तो मदिरा सुख शांति का केन्द्र है और मधुबाला इच्छित स्वर्गों की साकार प्रतिमा हो जाती है।[3] मधु और मधुबाला का संयोग प्राप्त करके कवि के मन में "उस पार" का विशेष आकर्षण नहीं रह गया है, बल्कि भय ही है, क्योंकि :—

"तुम देकर मदिरा के प्याले मेरा मन बहला देती हो,
उस पार मुझे बहलाने का उपचार न जाने क्या होगा।
इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो,
उस पार न जाने क्या होगा।"[4]

अस्तु, "भावुकता की हरियाली" में सरस कल्पना के सुमनों को बिखरा कर कवि ने जग जीवन को भुलाने के लिए जिस मादक जगत मधुशाला की सृष्टि की है उसका केन्द्र है मधुबाला। मधुबाला के बिना मधुशाला निर्जीव थी, संसार में अंधकार था, भय था, भ्रम था, शोक और दुःख था। मधुबाला ऊषा की ज्योति लेकर उदित हुई, जग के अणु-अणु में जीवन का संचार हुआ।[5] मधुबाला जीवन का प्रमुख आकर्षण है। वह मादक है उसकी चितवन और वाणी में मधु है, उसमें मदमत्त और पागल बनाने की शक्ति है।[6] इसीलिए :—

"मेरा रूप देखा करती है मधुप्यासे नयनों की माला।"[7]

उसके नीले अंचल की छाया में "जग ज्वाला का झुलसाया" व्यक्ति शीतलता पाता है, हृदय के क्षणों को वहाँ मधु मरहम मिलता है।[8] उसकी नूपुर ध्वनि में जग का क्रन्दन लय हो जाता है, और मानव जीवन मादक सुख की प्राप्ति करता है।[9]

---

[1] मधुबाला : आत्मपरिचय, पृ० ८५
[2] वही, पांचपुकार, पृ० ७१.
[3] सुख शांति जगत की सारी छनकर मदिरा में आई,
इच्छित स्वर्गों की प्रतिमा साकार हुई सखि, तुम हो,
(मधुबाला : पांचपुकार, पृ० ७५)
[4] मधुबाला : "इस पार", पृ० ६७.
[5] वही, "मधुबाला", ५-८, पृ० ३-४.
[6] वही : ४ और १०, ८- २ और ४.
[7] वही : १ पृ० १.
[8] वही : २, पृ० २.
[9] वही : ३, पृ० २.

इस प्रकार "मधुबाला" भावना का मूलाधार रोमांस है। यद्यपि कवि ने उसे प्रतीकों में ढँकने का प्रयत्न किया है,[1] किन्तु वास्तव में मधुशाला प्रणय की है, जिसमें प्रेयसी साकीबाला है, यौवन मधुरस हाला है और अधरों का प्याला है।[2] कवि का विश्व विधान से असंतोष, जग की "क्रूर कारा" को भूलने के लिए प्रेयसी के चुंबन की आकांक्षा तथा छायावादी कवियों की सी पलायन प्रवृत्ति "निशा निमंत्रण" के इस गीत में स्पष्टतः दिखाई पड़ती है :—

"हो मधुर सपना तुम्हारा।
पलक पर यह स्नेह चुंबन।
पोंछ दे सब अश्रु के कण।
नींद की मदिरा पिलाकर दे भुला जग क्रूर कारा।
हो मधुर सपना तुम्हारा।
दे दिखाई विश्व ऐसा,
है रचा विधि ने न जैसा,
दूर जिससे हो गया है बहिर् अंतर्द्वंद्व सारा।"[3]

"बच्चन" ने निराशाओं और निष्फलताओं के मध्य नारी के जिस मादक रूप के दर्शन किये हैं वह मौलिक नहीं है, उस उन्होंने फारस के कवि उमर खय्याम से पाया है। उमर खैय्याम के काव्य में हम निराशावाद, भाग्यवाद और भोगवाद का योग पाते हैं। निराशावाद का भोगवाद में परिवर्तित हो जाना, मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से कोई आश्चर्य की बात नहीं है। श्री रौथफील्ड के कथनानुसार "मनुष्य सदैव अवसाद और निराशा को लिए बैठा नहीं रह सकता। उसके सम्मुख सदैव ही ऐन्द्रिक सुखों का एक आकर्षण रहता है, उनका तत्काल उपभोग इस प्रकार जीवन का पूर्ण रूप से लाभ उठाना ही ठीक है। इस प्रकार निराशावाद भोगवाद की सीमाओं में पहुँच जाता है।"[4] निराश मनुष्य जिस सुखातिरेक के नशे में अपने द्वंद्वों को तथा संसार को जो व्यक्ति का स्वच्छंदताओं में सदैव ही बाधक रह कर दुःख मूल रहता है, भूलना चाहता है। उसके प्रमुख साधन रहे हैं स्त्री और मद्य। हम भूलें न कि नशेमात्र की दशा को प्राप्त करने के लिए, भौतिक संसार से दूर किसी आध्यात्मिक जगत का निर्माण करने वाले, प्रवृत्तिमार्गी महायान और शाक्त सम्प्रदायों ने तथा निवृत्तिमार्गी संतों ने—रूपक रूप में—इन दोनों साधनों को अपनाया था। उमर खैय्याम तथा उनके अनुयायी बच्चन ने निराशाओं के मध्य सुख का साधन, हाला और मधुबाला या साकीबाला में पा लिया है। यह निराशायें कम से कम बच्चन के केस में, अधिकांशतः रोमांस जनित हैं।

---

[1] मधुशाला : १४, ७३.
[2] "आज सजीव..... मधुशाला"—(मधुशाला, १३)
[3] हरिवंश राय "बच्चन"—निशा निमंत्रण, पृ० ४६, २४.
[4] ओ० रौथफील्ड—उमर खैय्याम एंड हिज़ एज, पृ० ८०-८१.

इस प्रकार बच्चन ने नारी को एक मादक आकर्षण के रूप में देखा है, जो जग-ज्वाला से दग्ध मनुष्यों के दुःखों को प्रणय के मधुदान से शात कर देती है। ससार तो विषपूर्ण घट के समान है, किन्तु पुरुष इसका अनुभव करता हुआ भी नारी रूपी मधु के ही कारण उसे नष्ट भ्रष्ट नहीं करता। इस मधु के लालच में वह हलाहल को भी पी जाता है।[1] बच्चन की नारी सबन्धी मधुबाला भावना कई विशेषताओं मे छायावादी कवियो की प्रेयसी भावना का स्पर्श करती है किन्तु अपनी मादकता और मासलता में वह द्वितीय से भिन्न है।

---

[1] जगत घट को विष से कर पूर्ण किया जिन हाथों ने तैयार,
लगाया उसके मुख पर, यार, तुम्हारे अधरों का मधुसार।
नहीं तो कब का देता तोड़ पुरुष यह विषघट ठोकर मार
इसी मधु का लेने को स्वाद हलाहल पी जाता ससार॥
(बच्चन—हलाहल, १)

*

उपसंहार

बीसवीं शताब्दी के प्रथम ४५ वर्षों के हिन्दी काव्य का अध्ययन करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उसमे नारी भावना का विकास गत्यात्मक रहा है। इससे पूर्व वह स्थिर ढ ग का था। वीरगाथाओं के समय से १९ वीं शताब्दी तक—लगभग ७ शताब्दियों तक एक ही सी नारी भावना काव्य में अभिव्यक्त होती रही थी। धार्मिक और काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों के आधार पर कवियों ने निश्चित आदर्शों को बना कर नारी को देखा था, व्यक्ति या समाज की इकाई के रूप मे नहीं। भारतेन्दु काल में समाज सुधार के दृष्टिकोण से कुछ ऐसा काव्य रचा गया जो मध्ययुगीय काव्य से भिन्न प्रकार का था, उसमे हमे २० वीं शताब्दी होने वाले नारी भावना सम्बन्धी परिवर्तन की पूर्व सूचना मिलती है। परिवर्तन की वास्तविक रूप रेखायें तो बीसवी शताब्दी मे ही स्पष्ट हुई, और इसके पैंतालीस वर्षों मे नारी भावना ने कई करवटें बदल ली। इस गतिशीलता का मूलकारण देश की राजनैतिक परिस्थितियों की गतिशीलता के साथ ही होने वाला देश का मानसिक विकास है। मानसिक विकास मे प्रमुख रूप से सहायक हुई पाश्चात्य शिक्षा और विविध देशों के सपर्क से ज्ञान का प्रसार। शिक्षा और ज्ञान-प्रसार ने वैज्ञानिक और उदार दृष्टिकोण को जन्म दिया। इसके फल स्वरूप भारतीय नवयुवक परम्परागत सिद्धान्तों और रूढिगत नियमों के प्रति विद्रोही हो उठे, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे यह विद्रोह प्रतिलक्षित हुआ। राजनैतिक क्षेत्र मे राष्ट्रीय आदोलन आदि हुआ, सामाजिक क्षेत्र मे समाज सुधार सबधी आदोलन हुए, धार्मिक क्षेत्र मे क्रातिकारी परिवर्तन हुए। इन सब के फल स्वरूप काव्य मे भाव और शैली दोनों मे परिवर्तन हुए। फलतः कवि ने नारी को वैराग्य मार्ग की बाधा या "नायिका" के रूप मे देखना छोड कर जीवन की सहचरी, समाज की इकाई, सृष्टि की अनिवार्यता आदि के रूप मे देखना प्रारम्भ किया।

गत पैंतालीस वर्षों मे होने वाला नारी भावना सम्बन्धी विकास विचित्र रहा है। प्रारम्भ मे तो कवि अग्रेजी रोमाटिक काव्य की कौतूहल आश्चर्य और महत् कल्पना की प्रवृत्तियों से बहुत प्रभावित हुए और नारी को अलौकिक देवी के रूप मे देखने लगे, किन्तु कुछ समय पश्चात् मार्क्स तथा मनोविश्लेषण विज्ञान ने उनकी इस प्रकार की भावना को चूर कर दिया। प्रतिक्रिया ने एक अन्य प्रकार की नारी को उपस्थित किया जो हिन्दी-साहित्य के लिए सर्वथा नवीन थी।

नवीनता के पथ में, नारी भावना के दृष्टिकोण से, प्रथम पग था सक्रातिकालीन आदर्शवादी भावना जिसके अतर्गत नारी को राष्ट्रीय आवश्यकताओं की दृष्टि से देखा गया। इस काल में उपयोगितावाद और इतिवृत्तात्मकता की प्रधानता रही, भावुकता का अभाव-सा रहा। अगले पग—परिवर्तनकालीन स्वच्छदतावाद—ने इस कमी की पूर्ति की। प्रकृति के साथ नारी का सामजस्य करके, सौंदर्य दृष्टि को सूक्ष्मता और विविधता प्रदान करके छायावादी कवियों ने नारी भावना को रहस्यमय बना दिया, "यहाँ तक कि जीवन

की यथार्थ सीमारेखायें धुँधली और अस्पष्ट हो गई ।" कवियों ने नारी को मानवी से देवी बना दिया । तृतीय चरण प्रगतिकालीन यथार्थवाद ने इस भावना के विरुद्ध प्रतिक्रिया की । उन्होंने एक ओर तो समाजवाद से प्रभावित होते हुए नारी को योनिमात्र समझी जाने की प्रथा का अंत करना चाहते हुए शोषिता के चित्रों को उपस्थित किया, दूसरी ओर व्यक्तिगत नग्न वासना की अभिव्यक्ति करते हुए उसे वासना का साधन बनाया और मनोविज्ञान से प्रभावित हो नारी को "नागिन" और "बाघिन" के रूप में देखा । "यथार्थ-वादी नारी भावना में समष्टिगत चेतना और संवेदनीय अनुभूति की न्यूनता है । सिद्धान्तों के आधार पर बनी यह नारी भावना हृदय पक्ष से हीन है । परिवर्तन-युग की नारी भावना यदि विश्वास की भूमि पर निर्मित है तो प्रगतियुग की कोरी बौद्धिक भूमि पर ।"

पूर्ण विकास और सुव्यवस्थित निर्माण की दृष्टि से यदि देखें तो परिवर्तनयुगीय नारी भावना का स्थान सर्वप्रथम होगा । प्रगतिकालीन नारी भावना अपनी रूप रेखा ठीक-ठीक निश्चित नहीं कर पाई है । उसके अंतर्गत समाजवादी भावना तो निश्चित मार्ग पर किसी सीमा तक है भी, किन्तु अन्य प्रकार की भावनायें अपना पथ निश्चित नहीं कर पाई हैं । वास्तव में कवि का मस्तिष्क एक डावाडोल परिस्थिति में है, कभी तो वह नव निर्माण की आकांक्षा से प्रेरित होकर नवीन सिद्धान्तों में आकर्षण पाता है, कभी नारी का मनोविश्लेषण करके उसके फ्रायडादि कथित दुर्गुणों में घृणा करने लगता है, किन्तु अगले ही क्षण उसके आकर्षण की अनिवार्यता पा पुनः रोमांस में लीन हो जाता है और छायावादी कवियों की भाँति स्वप्नों में लीन हो जाता है । इस प्रकार की अस्थिर और अस्वस्थ मनोदशा का कारण जीवन की द्वितीय महायुद्धकालीन अव्यवस्था और विशृंखलता, अथवा भारत का चारित्रिक पतन हो सकता है ।

किन्तु ऐसी परिस्थिति अब बहुत दिन तक नहीं रह सकती । युद्ध का अंत हो चुका है और सर्वोपरि बात यह है कि अब भारत स्वतन्त्र है । स्वतंत्र होने पर देशवासियों को अपनी जिम्मेदारियों का अनुभव अधिक तीव्रता से होता है, उनके कार्य राष्ट्रनिर्माण की ओर लक्ष्य करते हैं । अतिवाद नहीं यदि भारत में भी स्वतन्त्र होने के बाद एक चेतना और उत्तरदायित्व का ख्याल पैदा हो गया हो । इसलिए अपने काव्य में हम देखते हैं कि नारी को वासना का साधन मानने वाली भावना का लोप हो रहा है । कवि शरीर की वासनाओं के ऊपर समाज को प्रतिष्ठित करना चाहता है । जिस भावना का बीजारोपण छायावाद काल में हुआ था उन्हें ही अधिक परिष्कृत करके, अर्थात् क्षयी रोमांस का परित्याग करके, कवि अपना रहे हैं । भविष्य में, प्रतीत होता है दो भाव धारायें साथ-साथ विकसित होंगी—एक तो समाजवादी नारी भावना की जिसमें अभी बहुत परिष्कार होना है—और दूसरी रचनात्मक आदर्शवादी (यूटोपियन आईडियलिज्म) से प्रेरित नारी भावना का ।

*

उपसंहार

बीसवीं शताब्दी के प्रथम ४५ वर्षों के हिन्दी काव्य का अध्ययन करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उसमे नारी भावना का विकास गत्यात्मक रहा है। इससे पूर्व वह स्थिर ढ ग का था। वीरगाथाओं के समय से १९ वी शताब्दी तक—लगभग ७ शताब्दियों तक एक ही सी नारी भावना काव्य मे अभिव्यक्त होती रही थी। धार्मिक और काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों के आधार पर कवियों ने निश्चित आदर्शों को बना कर नारी को देखा था, व्यक्ति या समाज की इकाई के रूप मे नहीं। भारतेन्दु काल मे समाज सुधार के दृष्टिकोण से कुछ ऐसा काव्य रचा गया जो मध्ययुगीय काव्य से भिन्न प्रकार का था, उसमे हमे २० वीं शताब्दी होने वाले नारी भावना सम्बन्धी परिवर्तन की पूर्व सूचना मिलती है। परिवर्तन की वास्तविक रूप रेखायें तो बीसवी शताब्दी मे ही स्पष्ट हुई, और इसके पैंतालीस वर्षों मे नारी भावना ने कई करवटें बदल ली। इस गतिशीलता का मूलकारण देश की राजनैतिक परिस्थितियों की गतिशीलता के साथ ही होने वाला देश का मानसिक विकास है। मानसिक विकास मे प्रमुख रूप से सहायक हुई पाश्चात्य शिक्षा और विविध देशों के सपर्क से ज्ञान का प्रसार। शिक्षा और ज्ञान-प्रसार ने वैज्ञानिक और उदार दृष्टिकोण को जन्म दिया। इसके फल स्वरूप भारतीय नवयुवक परम्परागत सिद्धान्तों और रूढिगत नियमों के प्रति विद्रोही हो उठे, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे यह विद्रोह प्रतिलक्षित हुआ। राजनैतिक क्षेत्र मे राष्ट्रीय आदोलन आदि हुआ, सामाजिक क्षेत्र मे समाज सुधार सबधी आदोलन हुए, धार्मिक क्षेत्र मे क्रातिकारी परिवर्तन हुए। इन सब के फल स्वरूप काव्य मे भाव और शैली दोनों मे परिवर्तन हुए। फलत. कवि ने नारी को वैराग्य मार्ग की बाधा या "नायिका" के रूप मे देखना छोड कर जीवन की सहचरी, समाज की इकाई, सृष्टि की अनिवार्यता आदि के रूप में देखना प्रारम्भ किया।

गत पैंतालीस वर्षों मे होने वाला नारी भावना सम्बन्धी विकास विचित्र रहा है। प्रारम्भ मे तो कवि अग्रेजी रोमाटिक काव्य की कौतूहल आश्चर्य और महत् कल्पना की प्रवृत्तियों से बहुत प्रभावित हुए और नारी को अलौकिक देवी के रूप मे देखने लगे, किन्तु कुछ समय पश्चात् मार्क्स तथा मनोविश्लेषण विज्ञान ने उनकी इस प्रकार की भावना को चूर कर दिया। प्रतिक्रिया ने एक अन्य प्रकार की नारी को उपस्थित किया जो हिन्दी-साहित्य के लिए सर्वथा नवीन थी।

नवीनता के पथ में, नारी भावना के दृष्टिकोण से, प्रथम पग था सक्रातिकालीन आदर्शवादी भावना जिसके अतर्गत नारी को राष्ट्रीय आवश्यकताओं की दृष्टि से देखा गया। इस काल में उपयोगितावाद और इतिवृत्तात्मकता की प्रधानता रही, भावुकता का अभाव-सा रहा। अगले पग—परिवर्तनकालीन स्वच्छदतावाद—ने इस कमी की पूर्ति की। प्रकृति के साथ नारी का सामजस्य करके, सौदर्य दृष्टि को सूक्ष्मता और विविधता प्रदान करके छायावादी कवियों ने नारी भावना को रहस्यमय बना दिया, "यहाँ तक कि जीवन

३. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'—(क) चुभते चौपदे (प्र० स० १९२४), (ख) चोखे चौपदे (प्र० स० १९२४), (ग) कल्पलता (प्र० स० १९३७), (घ) वैदेही वनवास (द्वि० स० १९४६), (च) पद्य प्रसून (प्र० स० १९२५), (छ) रस-कलस (द्वि० स० १९३१)

४. आनंदी प्रसाद श्रीवास्तव—झाँकी (प्र० स० १९३०)

५. आरसी प्रसाद सिंह कलापी (प्र० स० १९३८)

६. इलाचंद्र जोशी—विजनवती (१९३७)

७. उमा शंकर वाजपेयी—ब्रज भारती (१९३६)

८. गयाप्रसाद 'त्रिशूल'—(क) राष्ट्रीय वीणा-भाग १ (च० स० १९२१), भाग २ (प्र० स० १९२२), (ख) राष्ट्रीय मंत्र (प्र० स० १९२१)

९. गुलाब रत्न वाजपेयी—लतिका (प्र० स० १९२९)

१०. गुरुभक्त सिंह 'भक्त'—(क) नूरजहाँ (च० स०) (ख) कुसुम कुंज (प्र० स० १९२६), (ग) सरस सुमन (प्र० स० १९२९)

१२. गोपाल सिंह 'नेपाली'—(क) पछी (प्र० स० १९३५), (ख) उमग (प्र० स० १९३४), (ग) नीलिमा (१९४४)

१३. गोपाल शरण सिंह—(क) मानवी (१९३८), (ख) माधवी (१९३८), (ग) सचिता (१९३९), (घ) सागरिका (प्र० स० १९४४) (च) कादंबिनी (१९३७)

१४. चंद्रभानु सिंह—अर्चना (प्र० स० १९३६)

१५. जयशंकर प्रसाद—(क) आँसू (प्र० स० १९३५), (ख) झरना (द्वि० स० १९२७), (ग) लहर (प्र० स० १९३५), (घ) कामायनी (च० स० १९४३)

१६. जनार्दन द्विज—अनुभूति (प्र० स० १९३३)

१७. जीतमल लूणिया (द्वारा संपादित)—स्वतंत्रता की झंकार (द्वि० सं० १९२१)

१८. तारा पांडेय—(क) शुक पिक (१९३७), (ख) वेणुकी (१९२९)

१९. तोरन देवी लली—जागृति (१९३९)

२०. द्वारका प्रसाद 'रसिकेन्द्र'—सती सारधा (प्र० स० १९२४)

२१, दुलारे लाल भार्गव—दुलारे दोहावली (तृ० स० १९३४)

२२. नगेन्द्र—वनबाला (प्र० स० १९३८)

२३. नरेन्द्र शर्मा—(क) शूल फूल (प्र० स० १९३३) (ख) मिट्टी और फूल (प्र० स०-१९४१), (ग) कर्ण फूल (प्र० स०-१९३६), (घ) प्रवासी के गीत (तृ० स० १९४५) (च) पलाशवन (प्र० स० १९४०)

२४. ठाकुर भगवत सिंह—वीरांगना वीरा (प्र० स०)

२५. पद्मकान्त मालवीया—त्रिवेनी (प्र० स० १९२९)

२६. प्रताप नारायण 'कविरत्न'—नल नरेश (प्र० स० १९३३)

२७. बालकृष्ण राव—(क) आभास (१९३५) (ख) कौमुदी (१९३१)

२८. बलदेव प्रसाद मिश्र—साकेत संत (प्र० स० १९४६)

२६. भगवती चरण वर्मा—प्रेम संगीत (१६३७)
३०. भवानी प्रसाद गुप्त (द्वारा संपादित)—स्वतन्त्रता की पुकार (प्र० स० १६२३)
३१. महादेवी वर्मा—(क) नीरजा (प्र० स० १६३४), (ख) नीहार (द्वि० स० १६३०), (ग) रश्मि (१६३२), (घ) दीप शिखा (द्वि० स० १६४६), (च) साध्यगीत (१६३६)
३२. माखनलाल चतुर्वेदी—हिमकिरीटिनी (प्र० स० १६४१)
३३. मैथिलीशरण गुप्त—(क) साकेत (प्र० स० १६३१), (ख) यशोधरा (द्वि० स० (१६३५), (ग) द्वापर (प्र० स० १ ३६), (घ) झंकार (प्र० स० १६२६), (च) कुणाल गीत (प्र० स० १६४२), (छ) अर्जन और विसर्जन (प्र० स० १६४१), (ज) काबा और कर्बला (प्र० स० १६४१), (झ) शक्ति (प्र० स० १६२७), (ट) त्रिपथगा (प्र० स० १६२७), (ठ) स्वदेश संगीत (प्र० स० १६३५), (ड) हिन्दू (द्वि० स० १६३८) (ढ) मंगलघट (प्र० स०), (त) अनघ (प्र० स० १६३५), (थ) सिद्धराज (प्र० स० १६३८), (द) पंचवटी (प्र० स० १६३३)
३४. मोहनलाल महतो 'वियोगी'—निर्णय (प्र० स० १६२५)
३५. रामचन्द्र शर्मा 'विद्यार्थी'—राष्ट्रीय संदेश (प्र० स० १६३५)
३६. रामचरित उपाध्याय—राष्ट्र भारती (प्र० स० १६२१)
३७. रामकुमार वर्मा—(क) चित्तौड़ की चिता (प्र० स० १६२६), (ख) जौहर (प्र० स० १६ ६), (ग) वीर हमीर (प्र० स० १६२३), (घ) निशीथ (प्र० स० १६३३), (च) रूपराशि (प्र० स० १६३३), (छ) चित्ररेखा (प्र० स० १६३५), (ज) अभिशाप (प्र० स०)
३८. रामेश्वरी देवी 'चकोरी'—किंजल्क (प्र० स० १६३३)
३६. रामचन्द्र शुक्ल—बुद्ध चरित (१६२२)
४०. रामधारी सिंह 'दिनकर'—(क) रसवन्ती (द्वि० स० १६४४) (ख) रेणुका (१६३५)
४१. श्री रामनाथ 'सुमन'—विपंची (प्र० स० १६२६)
४२. राजाराम शुक्ल—विधवा (प्र० स० १६२४)
४३ राजेश्वर गुरु 'मानव'—शेफाली (प्र० स० १६३८)
४४ रायकृष्णदास—भावुक (प्र० स० १६३८)
४५. रूपनारायण पांडेय—पराग (प्र० स० १६२१)
४६. लक्ष्मणसिंह चौहान (द्वारा संपादित)—त्रिधारा (प्र० स० १६३५)
४७. वागीश्वर विद्यालंकार—नीराजना (प्र० स० १६३७)
४८. शम्भूनाथ सिंह—रूपरश्मि (प्र० स० १६४१)
४६. शांतिप्रिय द्विवेदी—हिमानी (१६३४)
५०. श्यामनारायण पांडेय—जौहर महाकाव्य (प्र० स० १६४५)
५१. शिवदास गुप्त—कीचक वध (प्र० स० १६२१)

५२. शिव रत्न शुक्ल—भरत भक्ति (प्र० स० १६३२)

३३ श्रीनाथ सिंह—सती पद्मिनी (प्र० स० १६२५)

५४. सर्वदानन्द वर्मा—अर्घ्यदान

५५. सुरेन्द्रनाथ तिवारी—वीरांगना तारा (प्र० स० १६२४)

५६. सोहनलाल द्विवेदी—(क) भैरवी (द्वि० स० १६४०), (ख) पूजा गीत (१६४६), (ग) वासवदत्ता (१६४२), (घ) चित्रा (१६४२),

५७. सुभद्रा कुमारी चौहान—मुकुल (च० स०)

५८. सियारामशरण गुप्त—(क) अनाथ (प्र० स० १६२१), (ख) दूर्वादल (प्र० स० १६२६), (ग) विषाद (प्र० स० १६२६), (घ) आत्मोत्सर्ग (प्र० स० १६३३), (च) मृण्मयी (प्र० स० १६३६), (छ) आर्द्रा (प्र० स० १६३७)

५६. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—(क) अनामिका (प्र० स० १६३८), (ख) परिमल (प्र० स० १६२६), (ग) गीतिका (प्र० स० १६३८), (घ) तुलसीदास (प्र० स० १६३८)

६०. सुमित्रानन्दन पंत—(क) ग्रंथि (१६२६), (ख) वीणा (प्र० स० १६२७); (ग) पल्लव (प्र० स० १६२६), (घ) गुन्जन (प्र० स० १६३२), (च) ज्योत्स्ना (द्वि० स० १६३६)

६१. हरिकृष्ण प्रेमी—(क) अनंत के पथ पर, (ख) जादूगरनी (प्र० स० १६३२); (ग) स्वर्ण विहान, (घ) आँखों में (प्र० स० १६२८),

६२. हरिप्रसाद द्विवेदी 'वियोगी हरि'—वीर सतसई (प्र० स० १६२७)

प्रगति युग (१९३७—१९४५)

१. आरसीप्रसाद सिंह—(क) सचयिता (प्र० स० १६४२); (ख) आरसी (प्र० स० १६४२), (ग) नई दिशा (प्र० स० १६४४)

२. उदयशंकर भट्ट—विसर्जन (प्र० स० १६३८)

३. गिरजाकुमार माथुर—मंजीर (१६४१)

४. जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिंद'—नव युग के गान (प्र० स० १६४२)

५. नरेन्द्र शर्मा—कामिनी (प्र० स० १६४३)

६. भगवतीचरण वर्मा—(क) मधुकण (प्र० स० १६३२), (ख) मानव (प्र० स० १६४८)

७. मंगल मोहन—नई धारा (प्र० स० १६३६)

८. रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'—(क) मधूलिका (प्र० स० १६३८), (ख) अपराजिता (प्र० स० १६३६), (ग) किरण वेला (प्र० स० १६४१), (घ) लालचूनर (प्र० स १६४४)

६. शिवमंगल सिंह 'सुमन'—(क) प्रलय सृजन (१६४४), (ख) जीवन के गान (१६४०)

१०. सुधीन्द्र—प्रलय वीणा (१६४१)

११. स्वयंभू—रमणी निर्माण (१६३७)

१२. सच्चिदानन्द हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'—(क) इत्यलम् (प्र० स० १९४६); (ख) चिन्ता (द्वि० स० १९४६)

१३. सुमित्रानन्दन पंत—(क) युगान्त (प्र० स० १९३६), (ख) युगवाणी (प्र० सं० १९३९), (ग) ग्राम्या (द्वि० स० १९४२)

१४. हरिवंशराय 'बच्चन'—(क) मधुशाला (च० स० १९४०), (ख) मधुबाला (तृ० स० १९४०), (ग) मधुकलश (द्वि० स० १९३९), (घ) निशा-निमंत्रण (द्वि० स० १९१०), (च) सतरंगिनी (द्वि० स० १९४८), (छ) हलाहल (प्र० स० १९४६)

१५. हरिकृष्ण प्रेमी—अग्नि गान (१९४१)

२—अन्य पुस्तकें

१. अज्ञेय—आधुनिक हिंदी साहित्य

२. अल्टेकर—पोजीशन आव विमन इन हिन्दू सिविलीजेशन

३. अन्डरहिल—मिस्टिसिज्म

४. आर० डब्ल्यू० फ्रेजर—इंडियन थौट

५. इंडियन कल्चर, ८ वीं पोथी

६. ई० आर० गूड्स—दी फैमिली एंड इट्स सोश्यल फक्शंस

७. उपाध्याय—विमन इन ऋग्वेद

८. उमेश मिश्र—विश्वकवि रवीन्द्रनाथ

९. ए० लुडोविसि—वुमैन, एजिडोकेशन

१०. एस० जानसन—आरियटल रेलिजंस एंड देयर रिलेशन टू यूनिवर्सल रेलिजन, प्रथम पोथी

११. ए० युसुफ अली—ए कल्चरल हिस्ट्री आव इंडिया

१२ एच० सी० ई० जाचारियाज—रिनासेंट इंडिया

१३. ओस्वाल्ड स्पैंगलर—दि डिक्लाइन आव दि वैस्ट

१४. कल्चरल हैरिटेज आव इंडिया, तीसरी पोथी

१५ के० एम० रामास्वामी शास्त्री—दि इवोल्यूशन आव इंडियन मिस्टिसिज्म

१६. काउंट एच कीसर्लिङ्ग—दि बुक आव मैरिज

१७. क्लेरिसे बेडर—वुमन इन एन्सियंट इंडिया

१८. कालिदास (क) कुमारसंभव
(ख) अभिज्ञान शाकुंतल

१९. गुरुमुख निहालसिंह—लैंडमार्क्स इन इंडियन कांस्टीट्यूशनल एंड नेशनल डैवलपमेंट

२०. गंगाप्रसाद उपाध्याय—दि ओरिजिन, स्कोप एंड मिशन आव दि आर्य-समाज

२१- चैपमैन कोहन—रिलिजन एंड सैक्स

२२. चदबरदायी—पृथ्वीराज रासो , विवाह समयो
२३. जे० सी० ओमैन—दि मिस्टिक्स, एसेटिक्स, एड सेन्ट्स ऑव इडिया
२४. जी० मैक्ग्रिगर—एस्थैटिक एक्सपीरियस इन रैलीजन
२५ जौजैफ वारैन बीच—दि कसैप्ट आव नेचर इन नाइटींथ सैंचुरी इग्लिश पोयट्री
२६. जायसी—पद्मावत (जायसी ग्रन्थावली, ना० प्र० स० स०)
२७. टाल्सटाय—ह्वाट इज आर्ट एड एसेज आन आर्ट
२८ ड्यूश—दि साइकौलौजी आव विमन, प्रथम पोथी
२९. डी० एन० राय—दि स्पिरिट आव इडियन सिविलीजेशन
३० डेविस—ए शार्ट हिस्ट्री आव वुमन
३१ तुलसीदास—रामचरित मानस (तुलसी ग्रथावली, प्रथम खड, ना० प्र० स० सं०)
३२. दास—शक्ति दि डिवाइन पावर
३३. दत्त और सरकार—ए टैक्स्ट बुक आव मार्डन इडियन हिस्ट्री, पोथी २, भाग २,
३४. धूर्जटीप्रसाद मुकर्जी—मार्डन इडियन कल्चर
३५. नरपति नाल्ह—बीसलदेव रासो (सपादक, सत्यजीवन वर्मा, ना० प्र० स० स०)
३६ नगेन्द्र—(क) विचार और अनुभूति, (ख) आधुनिक हिन्दी साहित्य
३७ प्रसाद—(क) चन्द्रगुप्त, (ख) अजात शत्रु, (ग) ध्रुवस्वामिनी, (घ) स्कद गुप्त, (च) कामना, (छ) राज्यश्री
३८. पट्टाभि सीतारमैया—कांग्रेस का इतिहास (१८८५—१९३५)
३९. पी० आर० देसाइ—साश्यल बैकग्राउड आव इडियन नेशनैलिज्म
४०. पी० टामस—विमन एड मैरिज इन इडिया
४१. बर्नड शा—(क) प्रिफेसेज (होम लाइब्रेरी क्लब सीरीज)
(ख) मैन एड सुपरमैन
४२. बेनीप्रसाद—हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता
४३. बटरड रसैल—मैरिज एड मोरल्स
४४ बड्थवाल—निर्गुण स्कूल आव हिन्दी पोइट्री
४५. भडारकर—वैष्णविज्म एड शैविज्म एड अदर माइनर सैक्ट्स
४६. भूषण ग्रथावली (सपादक, प० राजनारायण शर्मा)
४७. महादेवी वर्मा—शृखला की कडिया
४८. मेयर—सैक्सुअल लाईफ इन एसियट इडिया, प्रथम और द्वितीय पोथियाँ
४९. मार्गरट ई० कजिन्स—इडियन वुमनहुड टुडे
५०. मोहनदास कर्मचद गाधी—स्त्रियों की समस्यायें
५१. मतिराम ग्रथावली (सपादक, कृष्णबिहारी मिश्र)

५२. यशपाल—मार्क्स वाद
५३. रवीन्द्रनाथ ठाकुर—(क) सचयिता, (ख) विचित्र प्रबन्ध, (ग) पर्सनैलिटी
५४. राधाकृष्णन्—रिलिजन इन ट्रांजिशन
५५. रामचंद्र शुक्ल—काव्य में रहस्यवाद
५६. रहीम रत्नावली (सपादक, प० मायाशकर याज्ञिक, साहित्य सेवा सदन)
५७ लिगाइ एड काजामिया—ए हिस्ट्री आव इगलिश लिटरेचर
५८. वायला क्लीन—फैमिनिन कैरेक्टर
५९ वैलैन्टाइन – दि न्यू साइकोलोजी
६०. विनयकुमार सरकार—क्रियेटिव इडिया
६१. वाइ० एम० रीग—ह्विदर वुमन ?
६२. विहारी रत्नाकर (सपादक, जगन्नाथ दास रत्नाकर)
६३. शचिन सेन—पोलिटिकल फिलासफी आव रवीन्द्रनाथ
६४. श्यामकुमारी नेहरू—आवर काज
६५. शरत् साहित्य—११ वा भाग
६६. शंकराचार्य—सौन्दर्य लहरी (शाकर ग्र थावली, पोथी १७)
६७ श्यामसुन्दरदास—कबीर ग्रन्थावली (ना० प्र० स० स०)
६८ शिवदान सिंह चौहान—प्रगतिवाद
६९. शिवचन्द्र—प्रगतिवाद की रूप रेखा
७० शिवस्वामी ऐयर—इवोल्यूशन आव हिन्दू मोरल आइडियल्स
७१ सर जान वुडरौफ—इज इडिया सिविलाइजड्
७२. सी० एस० श्री निवासाचारी—सोश्यल एड रिलिजस मूवमैंट्स इन दि नाइंटींथ सैंचुरी।
७३ सिडमड—(क) इट्रोडक्टरी लैक्चर्स आन साइकोएनालिसिस; (ख) सिविलीज़ेशन एड इट्स डिस्कंटैंट
७४ सी० वाइ० चिन्तामणि—भारतीय राजनीति के अस्सी वर्ष
७५ सूरदास—(क) सूरसागर (ना० प्र० स० स०) (ख) सूर सुधा [सपादक—मिश्रबधु, मनोरजन पुस्तक माला ४०)
७६. सतबानी सग्रह, भाग १ और २, (सपादित—बेल्वेडियर प्रेस)
७७. सुधाशु—जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धांत
७८. सुमित्रानदन पत—(क) स्वर्ण धूलि, (ख) स्वर्ण किरण
७९. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—(क) चाबुक; (ख) प्रबन्ध पद्म, (ग) नए पत्ते, (घ) बेला
८०. स्पैंसर—वमन्स शेयर इन सोश्यल कल्चर